TULSI HIGH SCHOOL COURSE

तुलसी-हाईस्कूल-कोर्स

हाईस्कूल परीक्षा के लिये गोस्वामी तुलसीदास के अयोध्याकाण्ड, पार्वती-मंगल, जानकी मंगल आदि ग्रन्थों का सटीक संग्रह।

२०८४

हरिशङ्कर शर्मा, "कविरत्न"

प्रकाशक—
लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, बुकसेलर
आगरा।

मूल्य १।)

मुद्रक—
सत्यव्रत शर्मा
शान्ति प्रेस, शीतलागली–आगरा।

प्रस्तावना



महाकवि तुलसीदास

कवि कुल कमल दिवाकर सु दिव्य देव,
राम गुण गान कर जग को जगा गया।
जीवन को उच्चता की चोटी पै चढ़ावैं कैसे,
भाषा बोल-चाल की में सबको सिखा गया॥
बाँच बाँच कथा लोग लाते हैं, लाखूखा रुपे,
सम्पति का स्रोत प्रेस वालों पै बहा गया।
छोड़ गया विमला विभूति अवनीतल पै,
तुलसी अमर हो परमपद पागया॥

संसार में, प्रथम तो मनुष्य-जन्म पाना ही दुर्लभ है, अगर वह मिल भी गया तो विद्या कठिनता से प्राप्त होती है, किसी प्रकार विद्योपार्जन भी हो गया तो कवि बनना सहज नहीं, और यदि कविता करनी भी आगई तो उसमें चमत्कार या शक्ति का आना तो अत्यन्त ही मुश्किल है। किसी ने ठीक कहा है—'कवि उत्पन्न होते हैं, बनाये नहीं जाते।' स्वभाव-सिद्ध कवियों के काव्य में ही वह अपूर्वता होती है, जिसके कारण कवि 'कवि' बनता और उसकी कृति काव्य' का रूप धारण करती है। बहुत से कवि छन्द शास्त्र या अलंकार ग्रन्थों में पारंगत होते हैं, शब्द-कोष के भी स्वामी समझे जाते हैं, परन्तु उनकी कविता में लोकोत्तरानन्ददायक

चमत्कार दिखाई नहीं देता, अर्थ-वैचित्र्य और भाव गाम्भीर्य के चिन्ह दृष्टिगत नहीं होते, इसलिए उसमें कुछ आनन्द भी नहीं आता। वस्तुत कविता वही है जिसके श्रवणमात्र से सहृदय श्रोता का सिर हिल जाय और वह उस पर जादू का असर डाल दे। वह कविता और वह तीर ही क्या जो दूसरे के हृदय में लग कर उसका सिर न घुमादे। निसन्देह ऐसी कविता करना सबका काम नहीं है, उसे वही कवि कर सकता है जिस पर परम कारुणिक भगवान् की अपार अनुकम्पा होती है। अगाध विद्वत्ता या प्रचण्ड पाण्डित्य प्राप्त करने से ही कोई कवि नहीं हो सकता, कवि वही होगा जिसमें कविता करने की अद्‌भुत शक्ति विद्यमान है।

खोजने पर आपको विदित होगा कि ससार में विद्वानों और पण्डितों की कमी नहीं रही, परन्तु कवि बहुत थोड़े हुए हैं, मौलिक कवि उँगलियों पर गिने जाने योग्य हैं। संस्कृत की बात जाने दीजिए, हिन्दी को ही लीजिए, जब से हिन्दी के इतिहास का पता चलता है, तब से अब तक न मालूम कितने कवि नामधारियों ने कविता की होगी परन्तु वे सब काल के गाल में सदा-सर्वदा के लिए विलीन हो गये, आज उनका कोई नाम भी नहीं जानता। हिन्दीजगत् में सूर, केशव, तुलसी, बिहारी, देव, पद्माकर, भूषण इत्यादि कवियों की कविताओं का बड़ा आदर है। इनमें से भी तुलसीदासजी की रामायण जितनी लोकप्रिय हुई है, उतनी और किसी कवि की पुस्तक नहीं। इसका मुख्य कारण रघुकुल-कमल दिवाकर मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र का आदर्श चरित्र और गोस्वामीजी की अद्‌भुत कवित्व-शक्ति ही है। सोना और सुगन्ध दोनों का एक स्थान पर समावेश होजाना

इसी को कहते हैं। रामायण के चरितनायक का चरित्र तथा अन्य पात्रों का वर्णन जितना शिक्षाप्रद, आदर्शरूप एवम् अनुकरणीय है उतना ही कवि का कवित्व परिमार्जित, मौलिक, सरस, सरल तथा चमत्कार युक्त है। यदि रामायण का रामचन्द्र से कोई सम्बन्ध न होता, अथवा तुलसीदास की लेखनी में ही जादूबयानी न होती तो इस ग्रन्थ के इतना लोकप्रिय होने में सन्देह था। कवि सूक्ष्मदर्शी होते हैं, राष्ट्र या जाति के उत्थान पतन का उनसे घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। आदि कवि महात्मा वाल्मीकिजी यदि अपनी प्रतिभा द्वारा रामचरित्र प्रकाशित न करते तो सम्भव है आज लोग राम का नाम भी न जानते और गोस्वामी तुलसीदासजी को अपनी कविता के लिए कोई दूसरा ही विषय चुनना पड़ता। किसी देश, किसी राष्ट्र अथवा किसी भाषा को देख लीजिए, सबके इतिहास के निर्माता और गौरव के संरक्षक कवि लोग ही होते आये हैं। कवि न हों तो संसार से साहित्य-सूर्य का लोप हो जाय और जगत् में अँधेरा ही अँधेरा दिखाई देने लगे। किसी ने ठीक कहा है—

'जहा न पहुँचे रवि—वहा पहुचे कवि'

अनुप्रास युक्त वाक्य लिखने वाला ही कवि नहीं होता प्रत्युत वे गद्य लेखक भी कवि कहलाते हैं, जिनकी कृति में काव्य अपेक्षित गुण और चमत्कार पाये जाते हैं। गद्य और पद्य दोनों का रचयिता कवि हो सकता है, यदि उसमें वास्तविक कवित्व यथोचित मात्रा में विद्यमान हो। तुलसीदासजी ने जितनी पुस्तकें लिखीं उन सबमें 'रामचरित-मानस ही सर्व श्रेष्ठ ग्रन्थ माना जाता है। धर्म, नीति, सदाचार और समाज शास्त्र का ऐसा कोई तत्त्व नहीं जिसका

विशद वर्णन उसमें न किया गया हो। उसे अलकारों का आकर, प्रसादगुण का प्रासाद और छन्दों की छावनी कहना अनुचित न होगा। रामायण में रसों की विमल धारा इस विचित्रता से बहाई गई है कि सहृदय-समाज उसमें बलात् बहा चला जाता है। मनुष्यों के स्वभाव, स्थानों का सौंदर्य, ऋतुओं की शोभा और प्राकृतिक सुखमा का वर्णन करने में, गोस्वामीजी की, नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा शक्ति का प्रत्यक्ष चमत्कार रामायण के पृष्ठों पर भली भाँति दिखाई देता है। घटनाओं का विचित्र वर्णन आपने इस अनोखे ढग से किया है कि वे पढने या सुनने वालों के सामने साक्षात् घटित होती सी दिखाई देने लगती हैं। जहा जिस घटना का जैसा वर्णन करना पडा है, वहीं आपने प्रसगानुसार कठोर या कोमल शब्दों का आश्रय लिया है। वीररस का प्रसग पढ़ते ही पाठक का हृदय बल्लियों ऊँचा उछलने लगेगा। करुणरस की कथा भक्तों के नेत्रों से, अश्रुधारा बहाये बिना न रहेगी। किसी रस को ले लीजिए सब में उसके स्वरूपानुरूप सामयिकता और स्वाभाविकता दिखाई देगी। शृङ्गार रस इस खूबी से वर्णन किया है कि उसमें अश्लीलता का लेश भी नहीं आने पाया। आबाल वृद्ध स्त्री पुरुष सब ही इस ग्रन्थ को निःसकोच भाव से पढ सकते हैं। पितृआज्ञा पालन, भ्रातृ-स्नेह, एक पत्नीव्रत, पातिव्रत्य, पुत्रप्रेम, मातृ भक्ति, दुष्टदलन स्वामि-सेवक सम्बन्ध, सच्ची मैत्री इत्यादि किसी बात को भी लीजिए सबकी शिक्षा आपको रामचरित मानस में मज्जन करने से मिल सकेगी।

सदाचार सम्बन्धिनी ऐसी कौनसी बात है जिसका रामायण में वर्णन नहीं किया गया। "बालक वृद्ध जरठ नर-नारी"

कोई भी क्यों न हो, सब ही इस मानसरोवर का अमृत जलपान कर कृतकृत्य हो सकते हैं। कदाचित ही ऐसा कोई शिखा-सूत्रधारी होगा जिसे रामायण से प्रेम न हो और जिसने उसकी दो चार चौपाई कण्ठ न कर रक्खी हों। मुसलमान और अंग्रेज तक तुलसीकृत रामायण पर इतने मुग्ध हैं कि उर्दू और अंग्रेजी मे भी उसका पद्यात्मक अनुवाद हो चुका है। बंगला कविता में भी उसका उल्था किया गया है। कुछ लोगों ने तुलसीदास की कविता में क्षेपक मिला कर बड़ा अनर्थ किया है, वे जिस उद्देश्य से मिलाये गये हे वह पूरा हुआ या नहीं, इसे हम नहीं जानते, परन्तु इतना अवश्य है कि मिलावट करने वालों ने गोस्वामीजी की कविता देवी के साथ न्याय से काम नहीं लिया। लाख छिपाने पर भी भद्दी कविता के क्षेपक नहीं छिपते। वे उसी प्रकार बदनुमा मालूम होते हैं जिस प्रकार रेशमी वस्त्र में गजी का पैवन्द बुरा लगता है। सहृदय-समाज का कर्त्तव्य है कि वह रामचरित-मानस से क्षेपकों का कूड़ा करकट दूर करदे और उसके सुधा समान सुमधुर सलिल का सानन्द रसास्वादन करे।

रामायण के सुन्दर शरीर को पाठ भेद के रोग ने भी बुरी तरह क्षत-विक्षत कर रक्खा है। अनेक स्थलों पर, अनेक पाठ-भेद होने से ग्रन्थ का गौरव गिर जाता और उसकी दुरूहता बढ़ जाती है। रामचरित मानस के जितने संस्करण आप देखेंगे प्राय सब में कुछ न कुछ पाठ भेद दिखाई देगा, इसका कारण मूल की शुद्धता पर विशेष ध्यान न देना ही हो सकता है। सन्तोष की बात है कि काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों की सहायता से रामायण का पाठ-भेद दूर करने की बहुत चेष्टा की है, और उसमें उसे सफलता भी प्राप्त

हुई है। आजकल उपर्युक्त सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण ही अधिक विश्वस्त समझा जाता है जो सर्वथा समुचित है।

तुलसीदासजी ने रामायण रचकर हिन्दू जाति का बड़ा उपकार किया है, यदि वह देश को प्रचुर धनराशि प्रदान कर जाते तो उससे इतना लाभ न होता जितना इस एक पोथी ने कर दिया। अब तक रामायण की कथा बाँचकर लोगों ने लाखों रुपये पैदा किये, छापेखाने वालों ने पुष्कल कमाई की, असंख्य पाठकों का पूरा मनोरंजन हुआ तथा करोड़ों लोगों के जीवन सुधर गये। और अभी क्या रामायण का काम समाप्त हो गया है ? हमारा विश्वास है कि ज्यों ज्यों हिन्दी भाषा का प्रचार तथा गौरव बढ़ता जायगा त्यों त्यों रामायण भी अधिक लोकप्रिय होती जायगी और आने वाली शताब्दियों में, इस ग्रन्थ द्वारा असीम उपकार होगा। रामायण के कारण पाठकों के हृदय में तुलसीदासजी की चरित्र सम्बन्धिनी बातें जानने की जिज्ञासा उत्पन्न होना स्वाभाविक है, अतएव यहा हम इस विषय में कुछ बातें लिख देना आवश्यक समझते हैं।

जन्म और गृह-त्याग

हिन्दी का उत्पत्ति-काल ८०० से १२०० ई० तक माना जाता है। १५०० ई० से लेकर १७०० ई० तक के समय को हिन्दी का 'प्रौढ़काल' कहते हैं, क्योंकि सबसे अधिक और सबसे उत्कृष्ट कवि इसी काल में हुए हैं। हिन्दी के 'प्रौढ़काल' में भारत का शासन-सूत्र मुगलों के हाथ में था। सम्राट् अकबर राजसिंहासन पर आसीन थे। यवन शासन-काल में हिन्दी का इतना विकास होना अवश्य ही आश्चर्य की बात है। मुगल दरबार से हिन्दी कवियों को आश्रय तथा प्रोत्साहन भी खूब

मिलता था । एक ही काल में ऐसे अच्छे और इतने अधिक कवियों के उत्पन्न होने का मुख्य कारण यही मालूम देता है। एक बात और थी, इन दिनों वल्लभीय और रामानुज सम्प्रदाय का बड़ा जोर था और राम तथा कृष्ण की भक्ति के गीत अधिकता से गाये जाते थे। इस भक्ति-भागीरथी के प्रबल प्रवाह द्वारा नये-नये कवियों की प्रसुप्त प्रतिभा शक्ति का जागृत होना भी एक साथ बहुत से कवि पैदा होने का कारण कहा जा सकता है। सूर, तुलसी, केशव, बिहारी, भूषण, मतिराम, देव, रसखान आदि अनेक महाकवि इस प्रौढ़ काल में ही हुए हैं। महाकवि तुलसीदास जिनकी पुण्यमयी कविता की धवल धारा आज सारे देश म प्रवाहित हो रही है, १५८९ सवत् में पैदा हुए थे। इनके जन्म-स्थान के सम्बन्ध में कहीं कोई लिखित प्रमाण नहीं मिलता। कोई किसी स्थान में गोस्वामी जी की जन्म-भूमि बताता है और कोई किसी को। परन्तु अब तक की खोज का जो परिणाम निकला है, उससे उनका जन्म-स्थान बाँदा जिले का राजापुर नामक स्थान ही ठीक ठहरता है। वहा इनकी कुटी तथा मन्दिर आदि भी बने हुए हैं। गोस्वामीजी का जन्म सरयूपारीण ब्राह्मण कुल में हुआ था, परन्तु मिश्रबन्धु ऐसा नहीं मानते। उनके मत में गोस्वामीजी सरवरिया नहीं बल्कि कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। गोस्वामीजी ने स्वय अपने माता-पिता का नाम कहीं नहीं लिखा, परन्तु यह बात प्रसिद्ध है कि इनके पिता का नाम आत्माराम और माता का हुलसी था। तुलसीदासजी का असली नाम तुलाराम था। ये चार भाई थे और दो इनकी बहिनें थीं। तुलसीदासजी का एक नाम 'रामबोला' भी था। जन्म का नाम बदल कर गुरु ने इनका नाम तुलाराम रक्खा जो पीछे भक्ति के आवेश के कारण तुलसीदास के रूप में परिणत हो गया।

कहते हैं, तुलसीदासजी का जन्म अभुक्त मूल में होने के कारण उन्हें उनके माता पिता ने छोड़ दिया था, और वह अनाथ की तरह इधर-उधर मारे-मारे फिरे थे। किसी किसी का यह भी मत है कि तुलसीदासजी बचपन में नहीं बल्कि बड़े होने पर अपने माता-पिता से स्वय वियुक्त हुए, जो हो। गोस्वामीजी के गुरु नरहरिदास थे। इनका उल्लेख तो उन्होंने स्वय भी किया है—

"बन्दउँ गुरुपद कंज, कृपासिन्धु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुंज, जासु वचन रविकर निकर।"

गोस्वामीजी का विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ था, जिससे तारक नामक पुत्र हुआ जो अल्पायु में ही काल कवलित हो गया। कहते हैं, गोस्वामीजी बड़े भार्या-भक्त थे। एक बार इनकी स्त्री इनकी इच्छा के विरुद्ध अपने पिता के घर चली गई। गोस्वामीजी इस वियोग को सहन न कर सके और सीधे ससुराल पहुँचे। वहा रत्नावली ने अपने पति की ऐसी अनुचित अनुरक्ति देख कर कहा—

"लाज न लागत आपको दौरे आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को कहा कहहुँ मैं नाथ॥
अस्थि चरम मय देह मम ता में जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ होत न तौ भव भीति॥"

स्त्री की उपर्युक्त झिड़की भारी पंक्तियां तुलसीदासजी के बाण के समान लगीं और उन्हें उसी समय विरक्ति हो गई। स्त्री ने बहुतेरा समझाया-बुझाया और आग्रह किया परन्तु फिर वह अपने स्वामी को गृहस्थ की ओर आकृष्ट न कर सकी। विरक्त होकर गोस्वामीजी काशी पहुँचे और अयोध्या में भी

विश्राम किया । मथुरा, वृन्दावन, चित्रकूट, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, सोरों आदि तीर्थ स्थानों में भी आप भ्रमण किया करते थे । कुछ लोगों का मत है कि गोस्वामीजी का विवाह नहीं हुआ था, परन्तु निर्धारित धारणा इस विचार के विरुद्ध है।

काशीवास

काशी में गोस्वामीजी अधिकतर असी घाट पर रहे थे, इसके अतिरिक्त उन्होंने कुछ दिनों तक और भी कई घाटों पर निवास किया था। मृत्यु भी उनकी काशी में ही हुई थी । तुलसीदासजी के सम्बन्ध में एक दन्त-कथा प्रसिद्ध है कि ये हनुमान के बड़े भक्त थे, हनुमान की कृपा से इन्हें श्रीरामचन्द्रजी ने दर्शन दिये इत्यादि। गोस्वामीजी ने काशी की रामलीला को बिलकुल नई रंगत दे दी थी आप कृष्णलीला भी कराते थे । ये दोनों लीलाएं अब तक बराबर होती हैं, और तुलसीदासजी के नाम से ही प्रसिद्ध हैं।

दोहार्द्ध की पूर्ति

अकबर के प्रसिद्ध सचिव खानखाना भी तुलसीदासजी के समकालीन थे। ये बड़े कविताप्रेमी और साहित्यिक सज्जन थे। गोस्वामीजी का इनके साथ बड़ा स्नेह था। इनमें परस्पर छेड़छाड़ भी खूब रहती थी। एक बार कोई ब्राह्मण तुलसीदासजी के पास आकर धन की याचना करने लगा। तुलसीदासजी ने एक परचे पर नीचे लिखा दोहार्द्ध लिखकर ब्राह्मण को दे दिया और कहा—इसे खानखाना के पास ले जाओ—

'सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सब चाहत अस होय'

खानखाना सहृदय तो थे ही यह तुलसीदासजी के अभिप्राय को समझ गये और उन्होंने उस ब्राह्मण को अच्छी आर्थिक सहायता देकर विदा किया तथा उक्त दोहे की पूर्ति भी करके तुलसीदासजी के पास भेज दी। खानखाना ने दोहे की पूर्ति में लिखा था—

'गोद लिये हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय'

दोहे के इस चरण में हुलसी शब्द दो अर्थों का वाचक है। पहला अर्थ प्रसन्नता का द्योतक है और दूसरा गोस्वामीजी की माता हुलसी का व्यंजक। तुलसीदासजी खानखाना की इस पूर्ति को पढ़कर बड़े प्रसन्न हुए और उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। आमेर (जयपुर) के राजा मानसिंह भी तुलसीदासजी के बड़े भक्त थे, वह बहुधा उनसे भेंट करने आया करते थे। लोग तुलसीदासजी को बड़ा करामाती समझते थे। कहते हैं कि इनके चमत्कारों की कथा सुनकर एक बार बादशाह जहाँगीर ने इन्हें पकड़ बुलाया और उस समय तक न छोड़ा जब तक इन्होंने उन्हें अपनी कुछ करामात न दिखादी। 'रासपञ्चाध्यायी' के लेखक नन्ददासजी तथा 'भक्त माल' के रचयिता नाभाजी इनके बड़े मित्र थे।

मीराबाई को उपदेश

मेवाड़ की प्रसिद्ध भगवत् परायणा मीराबाई जब अपने कुटुम्बियों के अत्याचार से तंग आ गई तब उसने एक पद्यात्मक पत्र लिखकर तुलसीदासजी से पूछा था कि बताइये ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में मैं क्या करूँ? मीराबाई लिखती है—

"स्वस्ति श्री तुलसी गुण दूषण हरण गुसाई।
बारहिं बार प्रणाम करहुँ अब हरहु शोक समुदाइ॥

घर के स्वजन हमारे जेते सबनि उपाधि बढ़ाई।
"साधु संग अरु भजन करत मोहि देत कलेस महाई॥
बाल पने ते मीरा कीन्हीं गिरिधरलाल मिताई।
सो तो अब छूटत नहिं क्योंहूँ लगी लगन बरियाई॥
मेरे मात पिता के सम हौ हरि भक्तन सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबो है सो लिखिए समुझाई॥"

मीरा भगवत् भक्ति में इतनी लीन है कि उसे उसके आगे कुछ अच्छा नहीं लगता। राणाजी मीरा की इस वैराग्य वृत्ति से अत्यन्त दुखी हो रहे हैं, वे इस विरति को अपने अपमान का कारण समझते हैं और इसीलिए मीरा के प्राण लेने के लिए अनेक उपाय सोचे जाते हैं, परन्तु परम पिता परमात्मा की दया से उस ईश्वरनिरता अबला का कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। अन्त में वह सती साध्वी देवी तंग आकर तुलसीदासजी की शरण में आती है, और अपनी सारी कष्ट-कथा उनके आगे रख कर उचित उपदेश चाहती है। गोस्वामीजी भी मीराबाई के हृदय की बात जान कर उसे अपने ध्रुव धर्म पर अचल रहने का उपदेश देते हैं और कहते हैं कि जो कुटुम्बीजन परमात्मा के भक्त नहीं हैं, उन्हें वैरी समझ कर त्याग देना चाहिए और ईश्वर-चिन्तन में किसी के विरोध की तनिक भी परवा न करनी चाहिए। तुलसीदासजी उपर्युक्त चिट्ठी का उत्तर कैसे सुन्दर शब्दों में देते हैं वह पढ़ने लायक है—

जिन के प्रिय न राम वैदेही।
तजिए तिन्हें कोटि वैरी सम जद्यपि परम सनेही॥
तात मात भ्राता सुत पति हित इन समान कोउ नाहीं।
रघुपति विमुख जानि लघु तृन इव तजत न सुकृत डेराहीं॥

तज्यो पिता प्रह्लाद विभीषन बन्धु भरत महतारी।
गुरु बलि तज्यो कन्त ब्रज बनितन भे सब मंगलकारी॥
नातो नेह राम को मानिय सुहृद सुसेव्य जहाँ लों।
अंजन कौन आँखि जो फूटै बहुतै कहो कहाँ लों॥
तुलसी सोइ सब भाँति आपनो पूज्य प्रानतें प्यारो।
जातें होइ सनेह राम सों सोइ मतो हमारो॥"

कुछ लोगों का कथन है कि मीराबाई तुलसीदास के समय में नहीं हुई, अतएव यह पत्र-व्यवहार मन गढन्त मात्र हैं, परन्तु प्रसिद्ध ऐसा ही है। जो हो, उपर्युक्त दोनों पदों से कर्त्तव्य बोध की अच्छी शिक्षा मिलती है। एक धर्मभीरु अबला—भले ही वह मीराबाई हो अथवा और कोई-सङ्कट काल में अपना कर्त्तव्य जानना चाहती है, उत्तर में तुलसीदासजी वही बात बताते हैं जिससे कर्त्तव्य की मर्यादा सुरक्षित रहे और मनुष्य अपने प्राणाधिक धर्म से विचलित न हो। भला! ऐसे अंजन को लेकर कोई क्या करे जो आँखों को फोड़ दे और पलकों को तोड़ दे। वे कुटुम्बी या मित्र मिलापी किस काम के जो भगवद्भक्ति में बाधक सिद्ध हों और व्यर्थ ही कर्त्तव्य पथ से विचलित करने का प्रयत्न करें। ऐसे धर्मविमुख लोगों को त्याग देने में ही भलाई है। वह सोना भाड़ में जाय जिससे नाक छीजे। कैसे ऊँचे विचार और कितनी उत्तम शिक्षा है।

हिन्दी-प्रेम

तुलसीदासजी संस्कृत के बड़े विद्वान् थे, परन्तु उन्होंने अपने ग्रन्थ भाषा में ही लिखे हैं। इसका कारण यह न था कि वह संस्कृत में कविता करने की योग्यता न रखते थे।

/

रामचरित-मानस के प्रत्येक काण्ड के प्रारम्भ में गोस्वामीजी ने जो श्लोक लिखे हैं वह उनके संस्कृत काव्य-पाण्डित्य के पूरे परिचायक हैं। भाषा में ग्रन्थ लिखने का अर्थ यही था कि उनकी पुस्तकों का अधिकाधिक प्रचार हो और लोग भक्ति-भाव का वास्तविक अर्थ समझ सकें। एक बार एक पण्डित ने गोस्वामीजी से पूछा कि आप संस्कृत के इतने बड़े विद्वान् होते हुए गँवारी भाषा (हिन्दी) में क्यों कविता करते हैं? उस समय तुलसीदासजीने उसे निम्न लिखित उत्तर दिया था—

"का भाषा का संसकित प्रेम चाहिए साँच।
काम जो आवइ कामरी का लै करै कमाच॥"

अवसान

जहाँगीर के समय में महामारी (प्लेग) का प्रबल प्रकोप था, सारे देश में प्रलयकारी हाहाकार मचा हुआ था। तुलसीदासजी ने भी अपनी कवितावली में इस रोग की भयङ्करता का अनेक स्थलों पर विषादपूर्ण वर्णन किया है। वे स्वयम् भी इसी रोग का शिकार बने और काशी में प्राण त्याग कर परमपद को प्राप्त हुए। उन्होंने प्राण त्यागते समय अपने रोग का जो वर्णन किया है और बाह के दर्द तथा बगल की गाँठ की जो पीड़ा बताई है, उससे स्पष्ट विदित होता है कि उन्होंने प्लेग पिशाच के चंगुल में फँस कर ही प्राणोत्सर्ग किया था। कहते हैं, गो० तुलसीदासजी ने शरीर छोड़ते समय भी एक दोहा कहा था और वही उनकी अन्तिम कविता है, वह दोहा इस प्रकार है—

"रामनाम जस बरनि कै, भयउ चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिए, अबहीं तुलसी सोन॥"

तुलसीदासजी की मृत्यु असी घाट पर १६८० विक्रमी में हुई थी, उनके देहावसान के सम्बन्ध में नीचे लिखा दोहा प्रसिद्ध है—

"सवत सोरह सौ असी असी गग के तीर।
सावन शुक्ला सतमी तुलसी तज्यो शरीर ॥"

ग्रन्थ

गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरित मानस के अतिरिक्त और भी कई ग्रन्थ लिखे हैं। नीचे लिखे इनके १२ ग्रन्थ तो बहुत ही प्रसिद्ध हैं। दोहावली, गीतावली, विनयपत्रिका, कवित्त रामायण, रामाज्ञा, रामचरितमानस, रामलला नहछू, बरवै रामायण, जानकीमगल, वैराग्य सन्दीपनी, पार्वती-मगल, और कृष्ण गीतावली। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त गोस्वामीजी के लिखे दस ग्रन्थ और बताए जाते हैं, जिनमें से कई तो मिलते नहीं और कई दूसरे ग्रन्थों के अशमात्र हैं। उपर्युक्त बारह ग्रन्थों में क्या विषय है, इसका सकेत रूप से नीचे दिग्दर्शन कराया जाता है—

१-दोहावली—इसमें ५७३ स्फुट दोहे हैं। अधिकतर दोहे उपदेश तथा भगवद्भक्ति से सम्बन्ध रखने वाले हैं।

२-कवित्त रामायण—इसका दूसरा नाम 'कविता-वली' है। इसमें कवित्त, सवैया, घनाक्षरी और पटपदी छन्द हैं। कुल छन्द-सख्या ३६७ है। विषय रामायण।

३-पार्वती-मगल—इसमें शिव और पार्वती के विवाह का वर्णन है। छन्द सख्या १६८ है।

४-जानकी मंगल—इसमें सीताजी के विवाह की कथा कही गई है। इसमें २१६ छन्द हैं।

५-रामाज्ञा—यह ग्रन्थ शकुन विचारने के लिए बनाया गया है। इसमें उननचास उननचास दोहों के सात अध्याय हैं। विषय रामायण।

६-गीतावली—इस पुस्तक में राग-रागनियों का समावेश है। कथा-प्रसग रामायण से मिलता जुलता है। इसमें सात काण्ड और ३३० छन्द हैं।

७-कृष्ण-गीतावली—इस ग्रन्थ में कृष्ण-कथा का वर्णन है। कुल मिलाकर ६१ पद हैं।

८-राम-चरित-मानस—'रामायण' नाम से तुलसीदासजी का यह ग्रन्थ सबसे अधिक प्रसिद्ध है।

९-बरवै रामायण—इसमें बरवा छुन्द मे रामचरित लिखा गया है। सात काण्ड और ६९ छन्द हैं।

१० वैराग्य-सन्दीपनी—यह ६२ छन्दों का छोटा सा ग्रन्थ है, इसमें सन्त-महन्तों के लक्षण दिये गये हैं। वैराग्य मुख्य विषय है।

११- रामलला-नहछू—२० सोहर छन्दों का छोटा सा ग्रन्थ है। पूर्वीय प्रान्त में बारात के पूर्व, चौक बैठने के समय नाइन द्वारा नह छूने या महावर देने की प्रथा प्रचलित है, इस छोटी सी पुस्तक में उसी लीला का वर्णन किया गया है।

१२- विनय-पत्रिका—इसमें राग-रागनियों द्वारा देवी-देवताओं के विनय सम्बन्धी पद लिखे गये हैं। इसकी

रचना बड़ी उत्कृष्ट समझी जाती है। इसमें तीनसौ के लगभग पद हैं।

तुलसीदासजी ने अपने सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ रामचरित-मानस का प्रारम्भ सवत् १६३१ की चैत्र शु० ९ को अयोध्या में किया था, इस विषय में उन्होंने लिखा भी है—

"सवत सोरह सै इकतीसा। करहुँ कथा हरिपद धरि सीसा ॥
नौमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा ॥"

कहते हैं, तुलसीदासजी ने रामचरित-मानस की रचना का विचार बचपन से ही अपने मन में स्थिर कर लिया था। जिस समय उन्होंने शूकरक्षेत्र (सोरों) में गुरुमुख से राम की आदर्श कथा सुनी तभी से वे उसे 'भाषाबद्ध' करने की फिक्र में थे। रामायण के प्रारम्भ काल का तो पता चलता है परन्तु उसकी समाप्ति कब और कहा हुई इसे कोई नहीं जानता। मालूम होता है, गोस्वामीजी ने रामायण के विविध काण्डों की रचना विविध स्थानों में रह कर की। वे विरक्त थे, अतएव जहा जी चाहता वहा ही रह कर अपने सुन्दर काव्य की विमल धारा बहाने लगते थे। रामायण के बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, लङ्का और उत्तर ये सात काण्ड प्रसिद्ध हैं।

अयोध्याकाण्ड

अयोध्या काण्ड जिसके सम्बन्ध में यह पंक्तिया लिखी जा रही हैं, कदाचित् सब काण्डों से बड़ा है। मंगलाचरण, राजा दशरथ द्वारा रामचन्द्र को युवराज पद दिये जाने का विचार, मन्थरा का कैकई को उलटी पट्टी पढ़ा कर मंगल में अमंगल कराना, कैकई का कुपित हो कर वेढंगे वर मागना, राम-लक्ष्मण और सीता का वन जाना, निषाद से मिलना,

वनवासियों तथा पुरवासियों की भक्ति, सुमन्त्र की वापसी, केवट का पाँव पखारना तथा पार उतारना, प्रयाग पहुँच कर भरद्वाज मुनि से भेंट करना, वाल्मीकिजी के आश्रम में आना, चित्रकूट निवास, सुमन्त्र मन्त्री का रामहीन अयोध्या में लौटना, दशरथ-मरण, भरत का ननिहाल से आना, विलाप करना, अपनी माता को खरी-खोटी सुनाना तथा पिता के शव का संस्कार करना, राजपरिवार सहित भरत का राम से मिलने चित्रकूट जाना, रामचन्द्र से वापस चलने के लिए आग्रह पूर्वक प्रार्थना करना, जनक का रामचन्द्र के पास पहुँचना, रामचन्द्र का सब को समझा-बुझाकर वापस करना, भरत का रामचन्द्र की खड़ाँउओं को राजसिंहासन पर रखकर राज-काज सँभालना और स्वयं तपस्वी के वेश में रह कर विशेष उदासीनता पूर्वक जीवन बिताना—इत्यादि बातों का वर्णन अयोध्याकाण्ड में किया गया है। इस काण्ड में प्रायः आठ चौपाइयों पर एक दोहा और पचीस चौपाइयों पर एक छन्द तथा सोरठा का क्रम रक्खा गया है। एक आध स्थान पर इसका अपवाद भी हो सकता है।

भाषा

तुलसीदासजी के समकालीन कवियों ने अधिकतर ब्रज-भाषा में कविता की है। परन्तु इन्होंने अपनी कविता में अवधी, ब्रजभाषा आदि कितनी ही भाषाओं का सहारा लिया है। कहीं कहीं तो गाँव की भाषा का प्रयोग करने में भी इन्होंने कोई हानि नहीं समझी। इसका कारण यह नहीं है कि तुलसीदासजी ब्रजभाषा के पण्डित न थे, नहीं, वह तो अपने काव्य को लोकप्रिय और सरलता पूर्वक सबकी समझ में आने लायक बनाना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने इस खिचड़ी भाषा

का प्रयोग किया जिससे रामायण किसी प्रान्त विशेष की वस्तु न बन कर हिन्दी भाषी मात्र की चीज़ कहा सके। गोस्वामीजी का लक्ष्य भाषा के टकसालीपन की ओर उतना न था जितना कवित्व और भावुकता की ओर। यही कारण है कि उनके रामायणादि ग्रन्थों में शब्दों की तोड़-मरोड़ करने में किसी विशेष पद्धति का अनुसरण नहीं किया गया। अनुप्रास या छन्द-रचना के लिए जहां जिस शब्द को जिस प्रकार तोड़ने-मरोड़ने की आवश्यकता हुई, वहीं वह उस प्रकार तोड़ मरोड़ दिया गया है। परन्तु मजाल क्या जो यह तोड़ मरोड़ कविता पयस्विनी की विमल धारा में चूड़ा करकट सिद्ध हो सके। वही भाषा सोष्ठव और वही सरसता, वही प्रसादगुण और वही रमणीयता। किसी चौपाई को भी पढ़िये, अद्भुत आनन्द प्राप्त होगा। अर्थ न समझ सकने पर भी उसकी मधुर ध्वनि कानों में समा जायगी और हृदय में हर्ष की हिलोर पैदा कर देगी। रामचरित-मानस को संस्कृत महाकाव्य वाल्मीकि रामायण का अनुवाद बताया जाता है, परन्तु सर्वांश में यह बात ठीक नहीं है। तुलसीदासजी ने उक्त महाकाव्य का अनुवाद भी किया है और अपनी रुचि के अनुसार काव्य, पुराणादि अन्य संस्कृत ग्रन्थों से भी अपेक्षित स्थलों को अनूदित कर दिया है। कहीं-कहीं तो उन्होंने संस्कृत कवियों के भावों को ज्यों का त्यों रख दिया है और कहीं उनकी उपमाओं तथा रूपकों को ले लिया है।

रामायण की महत्ता

कविता, भाव, रूपक, अलंकार, कथा किसी भी दृष्टि से देखिये रामचरित मानस एक अपूर्व ग्रन्थ है। उसकी चौपाई पाठक या श्रोता के हृदय को पकड़ कर जकड़ लेती हैं। रामायण जहां काव्य का अनुपम ग्रन्थ है वहां धर्म और

सदाचार की शिक्षा देने वाला शास्त्र भी है। न जाने इसके द्वारा अब तक कितने मनुष्यों के जीवन-जन्म का सुधार हुआ, और कितने लोगों ने इसे अपने उद्धार का साधन समझा। रामचरित-मानस की रचना जिस युग में हुई, वह यवन-प्रधान युग था, मुसलमानों के शासन प्रभाव से आर्य्य सभ्यता और हिन्दू संस्कृति शिथिलता को प्राप्त होती जाती थी। वैदिकधर्म का प्रचार करना सरल काम न था। अपनी जाति और धर्म की ऐसी मन्ददशा देख कर गोस्वामीजी को दुःख हुआ और उन्होंने रामचरित-मानस की सृष्टि रची। आदर्श रामचरित्र को लक्ष्य में रखकर रामायण के मिस तुलसीदासजी ने परोक्ष रीति से अपने समय की परिस्थिति की जो तीव्र आलोचना की है वह तनिक ध्यान देने से ही अच्छी तरह समझ में आ सकती है। रचना-काल से लेकर अब तक रामायण हिन्दुओं के कण्ठ का कण्ठा बनी रही और इसने उनका उपकार भी बहुत किया। डा० ग्रियर्सन ने तुलसीकृत रामायण को हिन्दुओं का 'बाइबिल' बताया है। रामचरित मानस में तुलसीदासजी ने अपने पूर्ववर्ती या समसामयिक किसी कवि का नामोल्लेख नहीं किया और न उन्होंने अपने किसी अमीर-गरीब इष्ट मित्र का नाम आने दिया है। सारी रामायण पढ़ जाइये परन्तु उसके पाठ से यह ज्ञात न होगा कि इस ग्रन्थ की रचना उस काल में हुई जब भारत में मुगल साम्राज्य का झण्डा फहरा रहा था और चारों ओर मुसलमानों का ही आतङ्क छाया हुआ था। रामायण के पाठ से यही विदित होता है कि वह ऐसे अनुकूल समय में लिखी गई है जब सारे संसार में भगवान् रामचन्द्र की भक्ति का समुद्र उमड़ रहा था। यह गोस्वामीजी का ही अपूर्व कौशल था कि उन्होंने अपनी कृति पर तत्कालीन

प्रतिकूल परिस्थिति का प्रभाव न पड़ने दिया और न उस पर मुसलमानी असर की छाप लगने दी। ऐसा करना साधारण काम नहीं है। रामचरित-मानस को सरल बनाने में तुलसी दासजी ने पूरा ध्यान रक्खा है, परन्तु फिर भी उसके अनेक स्थल ऐसे दुरूह हैं कि उनका वास्तविक अर्थ समझने में बड़े बड़े विद्वानों की बुद्धि चक्कर जाती है। चौपाइयों के अर्थ गाम्भीर्य पर जितना ही अधिक विचार किया जाता है उतनी ही उसमें नवीनता और मौलिकता दिखाई देती है।

तुलसीदासजी रूपकों, उपमाओं और अलकारों के बड़े प्रेमी थे। रामायण पढ़ते समय पद पद पर आपको उनकी यह विचित्रता दिखाई देगी। वे जिस विषय का रूपक बाधते हैं, कमाल कर देते हैं, जो बात कहते हैं, अनूठे ढग से कहते हैं। यहा तक कि आपने अपने ग्रन्थ का नाम भी काव्य मय ही रक्खा है। राम चरित-मानस को मानसरोवर मान कर बालकाण्ड में गोस्वामीजी ने जो अद्भुत रूपक बाँधा है वह उन्हीं का भाग है। भारत भूमि और भारत-भाषा का सौभाग्य था जब इस देश में तुलसीदास सरीखे प्रतिभाशाली कवि जन्म ग्रहण कर अपना अपूर्व यश अनन्तकाल तक जीवित रहने के लिए छोड़ जाते थे। किसी ने ठीक कहा है, जिसकी कीर्त्ति जीवित है उसे मरा हुआ नहीं समझना चाहिए। जिस महाकवि की कविता, आज सैकड़ों वर्ष बीत जाने पर भी, ससार को धर्म और सदाचार का प्रसाद बाट रही है, असख्य पाठकों के हृदय को असीम आह्लाद प्रदान कर रही है, भगवान् रामचन्द्र की विमल कीर्त्ति-कौमुदी को छिटकाने में सहायक हो रही है, वह कभी मर नहीं सकता, सदैव अजर, अमर रहेगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

कवि-कीर्त्तन

दोहा

मोह-महातम तें जबहिं, सुपथ सुबोध न होत।
उदय होहिं सूरज सुकवि, चहुँ दिसि करत उदोत ॥

कवि कुल कमल दिवाकर ताता। प्रगट कीन्ह यहि धरा विधाता ॥
राम चरित मानस मनभावन। सुचि सोपान सुरम्य सुहावन ॥
मज्जन करि सब होहिं सुखारी। "बालक, जुवा, जरठ, नरनारी"॥
रघुवर चरित परम सुखदायक। विश्वविदित सद्बोध विधायक॥
भ्रातृ-भक्ति, पति-प्रीति अनूपा। पत्नी प्रेम सत्य सुखरूपा ॥
सबहिं विसद उपदेस सुनाये। ब्रह्म-विवेक सहजु समुझाये ॥
स्रवण सुखद सुन्दर कविताई। अलङ्कार बहु भांति सुहाई ॥
सरल शब्द बरनत बहु भावा। मुदित होत मन सुनत सुनावा ॥
मौलिक अति प्रसाद गुन पावन। कवि-कौसल विचित्र सरसावन॥
सिखा-सून जुन को जग माहीं। गावत चारु चौपई नाहीं॥
कर महान उपकार गुसाईं। परम कृपालु गुरुन की नाईं ॥
सरस्वुति सुअन राम कह प्यारा। कवि-किरीट सुरधाम सिधारा॥

षट्पदी

धर्मवीर, व्रतशील सकल गुण-गरिमा सागर।
कवि कुल-कमल दिनेश अलङ्कारों का आकर ॥
राम भक्ति शुचि भवन सूक्ष्मदर्शी सुज्ञानी।
पावन पुण्यश्लोक सुकृत सुखमा सुखदानी ॥
जो आय यश परलोक में प्रिय दर्शन की आस है।
इस आर्यजाति की नाव का खेवा तुलसीदास है ॥

रामायण के पात्र

रामचरित-मानस का महत्त्व ससार में इतना अधिक क्यों है? इस प्रश्न का उत्तर प्रस्तावना के प्रारम्भ में ही दिया गया है। उसी बात को फिर यहा दुहराते हुए कहना पड़ेगा कि रामचन्द्र का आदर्श चरित्र और फिर उसके वर्णन करने वाले महाकवि तुलसीदासजी ' बस यही दो बातें ऐसी हैं जिन्होंने इस ग्रन्थ का इतना प्रचार कराया तथा उसे ऐसा महत्त्व दिया।

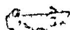
प्रात काल राज्याभिषेक होने वाला है, सब समारोह हो चुके हैं, पुर-परिवार में आनन्द मनाया जा रहा है। अवधेश दशरथ की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं है, इतने ही में कुबडी की कुटिलता भयङ्कर कूटनीति का रूप धारण कर कैकई की बुद्धि पर अज्ञान का परदा डालती है और वचनबद्ध पिता अपने प्राण प्यारे पुत्र को वनगमन का आदेश करते हैं—

"तापस वेश विशेष उदासी।
चौदह बरस राम वनवासी॥"

रघुकुल शिरोमणि राम देश निकाले की आज्ञा सुनते ही तुरन्त वन जाने के लिए तय्यार हो जाते हैं। उनके हृदय में न इससे पूर्व राजतिलक की तय्यारी देख कर आनन्द की गंगा उमडी थी और न अब वनवास के समाचार से दुःख की आग धधकने लगी है। राम को न हर्ष है, न विषाद। अगर उनके मन में इस समय कोई बात है तो वह है पिता की आज्ञा का पालन करना और अपने ध्रुव धर्म पर अटल रहना। वन में जा कर रामचन्द्र ने क्या क्या अद्भुत कार्य किये इसका वर्णन दस-बीस पंक्तियों में नहीं किया जा सक्ता, उसके लिए रामायण का

अध्ययन अनिवार्य है । परन्तु इस बात को कौन नहीं जानता कि रामचन्द्रजी ने वन में रह कर 'बेसरोसामानी' की हालत में, वह काम किया जिसे बड़े बड़े सत्ताधारी सम्राट् भी न कर सके थे । राक्षसराज रावण का वध करना कोई साधारण बात न थी, परन्तु वनवास की हालत में उन्होंने उसे ही कर दिखाया । रामचन्द्र शान्ति और गम्भीरता की मूर्ति थे, उनमें सचाई कूट-कूट कर भरी थी, वे सदैव धर्म की रक्षा में प्रवृत्त रहते थे, धर्म भी उनकी रक्षा करता था । एक ओर सकल साधन सम्पन्न लङ्कापति रावण और दूसरी तरफ तापस वेशधारी वन-वन भटकने वाले विपन्न राम । कितना विकट वैषम्य और कैसा प्रतिकूल प्रसग था । परन्तु राम को इन बातों की क्या चिन्ता थी, वह परिस्थिति के दास नहीं बल्कि उसके निर्माता और उत्पादक थे । परिणाम यह होता है कि विभीषण अपने अन्यायी भाई रावण से असहयोग कर राम का साथ देता है और उनका आजन्म भक्त बन जाता है ।

सीता



सती-साध्वी सीता का विमल चरित्र, ससार भर की स्त्रियों के लिए आदर्श और अनुकरणीय है । बहुतेरा समझाया-बुझाया जाता है, वन की भयङ्करता दिखाई जाती है और परिस्थिति की प्रतिकूलता का दिग्दर्शन कराया जाता है, परन्तु सती सीता प्राणपति का साथ कब छोड़ने वाली है, वह ऐसे सकट-काल में महलों में रह कर आनन्द का जीवन व्यतीत करना क्यों पसन्द करने लगीं । सीता ने झूठी लोक-लज्जा पर लात मारकर सब से साफ-साफ कह दिया— "मैं प्राणनाथ के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकती । मेरे लिए तो राम के बिना भोग रोग के समान हो जायगे, भूषण

ग्रार का रूप धारण कर लेंगे और संसार 'यम-यातना' के समान दिखाइ देने लगेगा।

'जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते।
पिय बिन तियहि तरनि ते ताते॥
जिय बिन देह नदी बिन वारी।
तैसिअ नाथ! पुरुष बिन नारी॥'

सीताजी ने रामचन्द्रजी से वह बहस की, वह आग्रह किया कि उनका सारा उपदेश निष्फल हो गया और 'परिहरु सोच चलहु बन साथा' ही कहते बना। सचमुच सच्चे पातिव्रत धर्म में ऐसी ही शक्ति होती है। उस सती साध्वी के सत्याग्रह को टालने की न राज परिवार में शक्ति थी और न राम में। बात बिलकुल ठीक थी, जब पति देवता चौदह वर्ष तक घोर तपस्या करने के लिए बनवासी बन रहे हैं तब भला एक आदर्श हिन्दू देवी घर में कैसे सुखपूर्वक बैठ सकती है। सीताजी राम के साथ वन जाती हैं और वहाँ के सारे दुखों को सुखपूर्वक सहन करती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि जब तक सती-साध्वी सीता का आदर्श मौजूद है तब तक भारतवर्ष बड़े गर्व के साथ संसार में अपना ऊँचा मस्तक कर सकता है।

लक्ष्मण

सीता के पश्चात् लक्ष्मण का नम्बर आता है। जिस समय लक्ष्मणजी सुनते हैं कि राम वन जा रहे हैं, उन्हें १४ वर्ष के लिए देश निकाले की आज्ञा हुई है, उसी समय 'व्याकुल' और 'बिलख बदन' होकर दौड उठते हैं। शरीर काँप जाता है और आँखों में अश्रुधारा बहने लगती है। राम के चरणों में सिर रख देते हैं और कहते हैं—"हे रघुकुल नाथ! आप मुझे छोड कर

कैसे वन जा सकते हैं ? मैं आपके दर्शनों के बिना मुहूर्त मात्र भी जीवित नहीं रह सकता। मैं आपके साथ चलूंगा और अवश्य चलूंगा। माता-पिता किसी को कुछ नहीं जानता, मैंने तो बालकपन से आपही के चरणों में ध्यान लगाया है, अब आप मुझे छोड़ कर कैसे चले जायेंगे ?" रामचन्द्र अपने प्यारे भाई लक्ष्मण के अकृत्रिम अनुराग से विवश हो जाते हैं, और उन्हें साथ ले चलने की अनुमति दे देते हैं। लक्ष्मण ने राम की सेवा कर जिस भ्रातृभाव का प्रशस्त परिचय दिया संसार में उसकी उपमा मिलनी कठिन है। लक्ष्मण सदैव खड्गहस्त रहने वाले थे, वे अनीति और अन्याय की शान्ति तथा गम्भीरता पूर्वक उपेक्षा करना न जानते थे। अनौचित्य देखते ही उनका चेहरा तमतमा उठता था और शरीर कांपने लग जाता था। धनुषयज्ञ के समय वह एक मिनट को भी राजा जनक की भर्त्सनापूर्ण वाणी सहन न कर सके और उन्होंने तुरन्त गरज कर कहा—

"रघुवंशिन में जहँ कोउ होई।
तेहि समाज अस कहइ न कोई॥

\+ \+ \+

जो राउर अनुशासन पाऊँ।
कंदुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊँ॥"

\+ \+ \+

यही नहीं आपको रामायण में अनेक स्थलों पर ऐसी घटनाएं मिलेंगी कि जहाँ-जहाँ अनौचित्य का अवसर आया है वहाँ वहाँ लक्ष्मण के ओठ फड़कने लगे हैं और वह उस अनीति का संहार करने के लिए कटिबद्ध हो गये हैं। आजकल की परिभाषा में कहें तो कह सकते हैं कि लक्ष्मण 'गरमदल' के

नेता थे, और इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि राम को रावणादि के विध्वस करने में जो सफलता प्राप्त हुई उसका पर्याप्त श्रेय लक्ष्मण को भी अवश्य देना पडेगा।

भरत और शत्रुघ्न

नि सन्देह भरत भी आदर्श भाई थे, उन्हें अपनी माता की कुटिल करतूति एक क्षण के लिए भी अच्छी न लगी। वे अपने पूज्य पिता की अन्त्येष्टि क्रिया कर सीधे राम के पास पहुँचे और उन्हें वापस लाने के लिए अत्यन्त प्रयत्न किया, परन्तु सफल न हो सके। राम की अनुपस्थिति में, तपस्वी का वेश धारण कर भरत धरोहर की भाँति–प्रतिनिधि की हैसियत से, राजकाज सचालन करते रहे। स्वार्थ-त्याग और भ्रातृ-स्नेह का इससे अधिक ज्वलन्त उदाहरण और क्या हो सकता है? भरत की माता केकई ने राम को वनवास दिलाया था, इस लज्जा के कारण भरत के सकोच का ठिकाना न था। जिस समय वे राम से मिलने चित्रकूट गये उस समय मार्ग में निषाद आदि ने सन्देह किया कि, हो न हो, सेना सहित भरत राम का सहार करने जा रहा है, निषाद ही क्या स्वयम् लक्ष्मण को भी यह भ्रम हुआ और वह अपनी उग्र प्रकृति के कारण कहने लगे—

"कुटिल कुबन्धु कुअवसर ताकी।
जानि राम वनवास एकाकी॥
करि कुमन्त्र मन साजि समाजू।
आए करन अकटक राजू॥"

इतना ही नहीं कि थोथा सन्देह ही किया हो प्रत्युत भरत के आने की खबर पाकर लक्ष्मण ने अपने धनुष-बाण भी

सभाल लिए और रामचन्द्रजी से कहने लगे कि कहाँ तक हम इन आपत्तियों को सहन करें—कब तक मन मार कर चुपचाप बैठे रहें, आखिर हमारे हाथ में भी तो धनुष-बाण है।

"कहँ लगि सहिअ रहिअ मन मारे।
नाथ ! साथ धनु हाथ हमारे॥"

इस समय शान्तिमूर्ति रामचन्द्रजी बड़ी गम्भीरता से लक्ष्मण का समाधान करते हैं और बलपूर्वक कहते हैं—

"सुनहु लखन भल भरत सरीसा।
विधि प्रपच महँ सुना न दीसा॥
तिमिर तरुन तरनिहि मकु गिलई।
गगन मगन मकु मेघहि मिलई॥
गोपद जल बूड़हिं घट जोनी।
सहज छमा बरु छाड़इ छोनी॥
मसक फूंक मकु मेरु उड़ाई।
होइ न नृपमद भरतहि भाई॥"

राम के समझाने पर लक्ष्मण को विश्वास होता है और वह अपने भाई भरत की महत्ता समझते हैं। रामचन्द्र यों तो किसी के प्रति किसी प्रकार का दुर्भाव न रखते थे, परन्तु भरत से तो उन्हें बड़ा ही स्नेह था, भरत की सचाई और विश्वास-पात्रता उनके हृदय में स्थान कर चुकी थी। ऐसे आदर्श भाई भरत की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। शत्रुघ्न भी भरत के समान ही बड़े सीधे और सरल प्रकृति के पुरुष थे।

दशरथ

राजा दशरथ के सम्बन्ध में कुछ लोगों की धारणा है कि उन्होंने अपनी रानी केकई का अनुचित प्रस्ताव मानकर अच्छा

नहीं किया । परन्तु राजा पहिले ही से वचन बद्ध थे, उन्हें अपने वचनों की रक्षा का जितना ध्यान था उतना न प्राणों का और न प्राण प्यारे पुत्रों का । राजा दशरथ चाहते तो केकई को उसकी अनुचित माग के कारण अवजना पूर्वक झिडक घुडक सकते थे, परन्तु नहीं, उन्हें प्रतिज्ञा भग का बडा भय था। वे जानते थे कि अगर इस समय केकई की बात मान कर राम को वनवास और भरत को राज्य नहीं दिया गया तो फिर ससार में मुँह दिखाने को जगह न रहेगी और मेरे कारण रघुवश को असत्यता का अपराध लग जायगा। इसीलिए तो उन्होंने कहा था—

"रघुकुल रीति यही चलि आई।
प्राण जाहिं पर वचन न जाई॥"

सचमुच राजा दशरथ ने प्राणों को तो त्याग दिया परन्तु वचनों को न जाने दिया। अपने प्राण प्यारे पुत्र राम को वज्र हृदय करके वन गमन की आज्ञा तो देदी परन्तु केकई के आगे 'न' करना स्वीकार न किया। इससे अधिक सत्यव्रत तथा धर्म-धुरता और क्या हो सकती है। राजा दशरथ सत्य के सूर्य और धर्म के धाम थे। अगर वह अपने प्राणों के मोह या पुत्रों के प्रेमवश प्रतिज्ञा भ्रष्ट हो जाते तो आज ससार में उनका कोइ नाम तक न लेता। रघुवश की सारी मान-मर्यादा मिट्टी में मिल जाती।

कौशल्या और सुमित्रा

इन दोनों देवियों के धैर्य की जितनी प्रशसा की जाय थोड़ी है। दोनों के पुत्र वन को जाते हैं, पति की प्रतिज्ञा चरितार्थ करने के विचार से कौशल्या राम को आशीर्वाद पूर्वक विदा करती है, सजल नयन और धडकते दिल से कहती है—

"जाओ, वत्स ! जाओ, भगवान् तुम्हारा मंगल करेगा।" राम की आज्ञा पाकर लक्ष्मण अपनी माता सुमित्रा से विदा मागने जाते हैं, उन्हें भय है कि कहीं पुत्र-प्रेम मेरी वन-यात्रा में बाधक न हो, कहीं माता सुमित्रा मुझे राम के साथ जाने से रोक न लें। बडे सकोच के साथ लक्ष्मण अपनी जननी के सम्मुख जाते हैं। सुमित्रा देवी सब कुछ सोच-समझ कर प्रिय पुत्र लक्ष्मण से कहती हैं—

"तात तुम्हारि मातु वैदेही।
पिता राम सब भाति सनेही॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासू।
तहइ दिवसु जहँ भानु प्रकासू॥
जो पै सीय राम वन जाहीं।
अवध तुम्हार काज कछु नाहीं॥"

लक्ष्मण ! जाओ, राम के साथ जाओ और वन में उनकी भक्ति भाव से सेवा करो। जब राम और सीता वन को जा रहे हैं तो अयोध्या में तुम्हारा क्या काम ? तुम्हारे लिए तो वहीं अयोध्या है जहा राम और सीता के चरण स्पर्श का सौभाग्य प्राप्त होता रहे। अहा ! देवी सुमित्रा ! तुम धन्य हो। तुमने इस समय अपने प्यारे पुत्र लक्ष्मण को वही आदेश या उपदेश दिया जो तुम जैसी वीर विदुषी माता को देना चाहिए था। तुम्हारे त्याग और निःस्वार्थ भाव की जितनी प्रशसा की जाय थोडी है। तुम्हारे पुत्र को वनवास की आज्ञा नहीं दी गई थी, तुम चाहतीं तो उन्हें तपस्वी बनने से रोक सकती थीं, परन्तु तुम ने ऐसा नहीं सोचा बल्कि बडी प्रसन्नता से, बिना माथे पर सलवट लाये उन्हें वन जाने की आज्ञा दे दी।

केकई

केकई की कुटिलता को कौन नहीं जानता ? उसने 'घर-फोडी' दासी मथरा की बातों में आकर वह अनर्थ किया जिससे उसका कभी उद्धार नहीं हो सकता। हम मानते हैं, और अच्छी तरह जानते हैं कि स्वय केकइ का स्वप्न में भी विचार न था कि राम को वनवास दिया जाता परन्तु उस कुटिला कुबडी ने रानी की बुद्धि पर परदा डाल दिया, जिससे वह ऐसा कुकर्म करने को विवश हो गई। परन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि जिस भरत के भले के लिए यह सारा षड्यन्त्र रचा गया था उसने रामचन्द्र की विशुद्ध भक्ति भावना में रत रह कर सिंहासन के लोभ को सदा-सर्वदा के लिए ठुकरा दिया, और जो कुछ किया राम की ओर से—उनका एक तुच्छ सेवक बन कर—किया। हम तो समझते हैं, केकई ने राम को वनवास दिला कर एक प्रकार से अच्छा ही किया। अगर राम अयोध्या का राजमुकुट धारण कर लेते और वन को न जाते तो निशिचरों का नाश करके धरा पर सद्धर्म की स्थापना कौन करता ? सम्भव है, अवधपति बन कर तथा राज-काज में लिप्त रह कर राम उस समय राक्षसों द्वारा किये गये अत्याचार को नष्ट करने के लिए अवकाश ही न निकाल सकते। इस दृष्टि से केकई और मन्थरा भी धन्यवाद की अधिकारिणी समझी जा सकती हैं।

सुमन्त्र

राजा दशरथ के विश्वस्त मन्त्री सुमन्त्र सचमुच आदर्श सचिव थे। वह कहने को सचिव थे परन्तु वास्तव में अपनी

अकृत्रिम शुभ चिन्तना और घनिष्ठता के कारण रघुवश के अग बन गये थे। राज-काज सम्बन्धी कार्य तो सुमन्त्र की सम्मति से किये ही जाते थे, घरेलू मामलों में भी उनकी राय का बडा आदर था, वह भी राजा दशरथ को अपना पूज्य और राजकुमारों को सुहृद समझते थे। वृद्ध सुमन्त्र जिस समय राम को वन में छोडकर अयोध्या की ओर चलते हैं उस समय उनके प्रेम और कर्त्तव्य-पालन में तुमुल युद्ध होता है, राम का स्नेह एक ओर खींचता है, अयोध्या की शोचनीय अवस्था दूसरी ओर पकड कर बुलाती है। सुमन्त्र नयनों में नीर भर कर राम से विदा होते हैं और अयोध्या में आकर सब को सान्त्वना देते हैं। ऐसे आदर्श मन्त्री वस्तुत अवध की शोभा बढाने वाले थे, और उनके कारण रघुराज दशरथ अपने को गौरवशाली समझते थे।

निषाद

रामायण से निषाद का कार्य-कलाप अलग नहीं किया जा सकता। वह उसका एक अनिवार्य अग है। अयोध्या से चल कर सब से पहले राम को निषाद की सेवा की आवश्यकता पडती है, जिसे वह बडे उत्साह तथा प्रेम पूर्वक उनके अर्पण करता है। निषाद एक जगली आदमी था, परन्तु वह समझदार बडा था। रामचन्द्र की महत्ता और सत्ता भली भाँति पहचानता था। इसीलिए उसने भगवान् राम को न केवल अपनी तुच्छ सहायता ही दी बल्कि वह अपने दल-बल सहित उनके लिए मरने मारने को भी तय्यार हो गया। रामचन्द्रजी ने भी निषाद को नीच या जगली न समझ कर उसे अपना प्यारा मित्र तथा सखा सखा समझा और वे उसकी सेवा-सहायता तथा प्रीति की सदैव सराहना करते रहे। इसका अभिप्राय

यह है कि रामचन्द्र के हृदय में ऊँच-नीच के भद्दे भावों को बिलकुल स्थान न था, जो उनके साथ भक्ति करता था उससे वे हृदय से हृदय सटा कर मिलते और उसके सच्चे सखा बन जाते थे।

ऊर्मिला

इस प्रसग में हम लक्ष्मण की स्त्री ऊर्मिला की प्रशसा किये बिना नहीं रह सकते। इस देवी के स्वार्थ-त्याग की जितनी प्रशसा की जाय थोडी है। प्राणपति लक्ष्मण १४ साल के लिए वियुक्त होते हैं, परन्तु वह इस दु सह दु ख को पत्थर का कलेजा करके सह लेती है। इस विषय में सब से अधिक आश्चर्य की बात यह है कि महाकवि तुलसीदासजी ने रामचरित मानस में ऊर्मिला का बहुत ही कम उल्लेख किया है यहा तक कि राम के वन जाने पर सीता देवी की विकलता और विह्वलता की तो पराकाष्ठा कर दी है। पर, लक्ष्मण के वियोग पर ऊर्मिला के मुँह से एक शब्द भी नहीं कहलाया गया। एक हिन्दू देवी के लिए यह तो कठिन ही था कि वह अपने प्राणपति के चिरकालीन वियोग पर दो शब्द भी न कहती, या सीताजी की तरह साथ चलने के लिए आग्रह न करती। आखिर पातिव्रत्य के गौरव को तो ऊर्मिला भी जानती होगी, वह भी पति प्रेम की महत्ता को समझती होगी परन्तु उसका कहीं उल्लेख नहीं किया गया, न मालूम इसका क्या कारण है? जो हो, परन्तु हम यहाँ ऊर्मिला के इतने बड़े स्वार्थत्याग की प्रशसा किये बिना नहीं रह सकते। उसने अपने पति से १४ वर्ष तक अलग रह कर वस्तुतः स्वार्थत्याग का एक अनुपम आदर्श ससार के सामने उपस्थित किया था।

वसिष्ठजी

वसिष्ठजी रघुकुल के परम पूज्य थे, उनके परामर्श के बिना कोई कार्य न होने पाता था, उनका आशीर्वाद प्राप्त करके ही सब कार्य किये जाते थे। वसिष्ठजी को किसी की रुचि-अरुचि या प्रसन्नता-अप्रसन्नता की परवाह न होती थी, वह उसी बात को कहते थे जिसे वह ठीक समझते थे। राजा दशरथ के परलोक पधारने पर वसिष्ठ मुनि ने राज-काज तथा पुर-परिवार की व्यवस्था ठीक रखने के लिए बड़ा उद्योग किया था। राजा दशरथ तथा उनके सब राजकुमार वसिष्ठ मुनि को अपना परम हितैषी और सबसे अधिक माननीय समझते थे।

रामायण के और भी कई पात्र हैं, परन्तु अयोध्याकाण्ड का जितने पात्रों से सम्बन्ध है उन्हीं का संक्षिप्त उल्लेख ऊपर किया गया है। सच तो यह है कि इन सब पात्रों की समष्टि का नाम ही रामायण है। वे एक दूसरे से अटल रूप से सम्बद्ध हैं। इन पात्रों में से किसी को भी इधर-उधर करना परम रम्य रामचरित-मानस की मनोहरता को नष्ट-भ्रष्ट कर देना है। देश का सौभाग्य है, जो उसके पास रामायण के रूप में प्रात-स्मरणीय राम का आदर्श मौजूद है। हमारे लिए यह चरित्र एक विमल विभूति और सुखदा सम्पत्ति है, जिसके नष्ट होजाने या खोजाने से हमारे हाथ में कुछ भी न रहता और हम संसार के सामने अपनी सभ्यता एवम् संस्कृति का कोई उज्ज्वल उदाहरण नहीं रख सकते।

वर्णन-वैचित्र्य

गोस्वामी तुलसीदासजी की कविता की विचित्रता जानने के लिए उनके ग्रन्थों का पढ़ना अत्यन्त आवश्यक है। दो चार पृष्ठों में उसका महत्त्व वर्णन नहीं किया जा सकता। एक-एक चौपाई की व्याख्या के लिए एक-एक स्वतन्त्र निबन्ध की आवश्यकता है। कवि-कौशल समझने के लिए कवि की कृति को गम्भीरता पूर्वक अध्ययन करना ही सर्वश्रेष्ठ साधन है। फिर भी यहा अयोध्याकाण्ड से दो चार स्थल उद्धृत किये जाते हैं जिससे पाठकों को पता लग सके कि तुलसीदासजी की कविता कितनी लाजवाब है और उसमें कैसे-कैसे चमत्कार भरे हुए हैं।

"होत प्रात मुनिवेश धरि, जौ न राम बन जाहिं।
मोर मरन राउर अजस, नृप समुझिअ मन माहिं॥"

समझे, राजाजी! अगर 'कल दिन निकलते निकलते तपस्वियों का सा वेश धारण कर रामचन्द्र वन को न चले गये तो में नहीं बचूँगी और न तुम्हारा यश ससार में बाकी रहेगा। इस बात को अच्छी तरह समझ लेना। प्रतिज्ञा के पुतले ही बन लो या राम से ही मोह जोड लो! दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं"। कैसे कर्कश वाक्य और कितनी कठोर वाणी है। केकई किस निर्भीकता से आदर्श पुत्र राम को वन ठेलने की ठान चुकी है, इस समय उसके क्रोध का ठिकाना नहीं है।

"अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी॥
पाप पहार प्रकट भै सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई॥

दोउ बर कूल कठिन हठ धारा। भँवर कूबरी बचन प्रचारा॥
ढाहत भूप रूप तरु मूला। चली बिपति बारिधि अनुकूला॥"

उफ! पाप-पहाड़ से निकल कर क्रोध-कल्लोलिनी केकई किस भयंकरता से विपत्ति-वारिधि की ओर बही जारही है, जो सामने आगया उसे ही ढाहती चली जाती है, राजा दशरथ जैसे पुराने वृक्षों को तो जड़-मूल से उखाड़ कर फेंक देना उसके लिए एक साधारण सी बात है। इन शब्दों में क्रोध का कैसा विचित्र चित्र अङ्कित किया गया है। मालूम होता है, केकई के काले दिल में एक तबाहकुन तूफान उठ रहा है जो शान्त न किया गया तो वृक्ष, पर्वत, पुर-परिवार, नदी नाले सबका सर्व संहार कर देगा और संसार को सुख की नींद न सोने देगा।

× × × × ×

"ब्याकुल राउ सिथिल सबगाता। करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता॥
कंठ सूख मुख आव न बानी। जनु पाठीन दीन बिन पानी॥
राम राम रट बिकल भुआलू। जनु बिन पंख बिहंग बेहालू॥
बिबरन भयेउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू॥
माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन। तनुधरिसोच लागजनुसोचन॥"

आह! तुलसीदासजी ने बेबसी और व्याकुलता का चित्र खींच दिया है। दशरथ की कैसी दयनीय दशा है, राम-वनवास का मतालबा सुन कर वे किस तरह बेहाल होगये हैं। गला सूख गया है, मुह से आवाज नहीं निकलती, जलहीन मीन की तरह तड़प रहे हैं। ऐसी करुणोत्पादक दशा देख कर पत्थर का कलेजा भी पिघल जाता है, परन्तु क्रूर केकई के हृदय में दयालुता के भाव उदय नहीं होते। इससे अधिक संगदिली और क्या हो सकती है?

× × × ×

"मन मुसुकाइ भानुकुल भानू। राम सहज आनन्द निधानू॥
बोले वचन विगत सब दूषन। मृदु मञ्जुल जनु वाग विभूषन॥
सुन जननी सोई सुत बडभागी। जो पितु मातु वचन अनुरागी॥
तनय मातु पित तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल ससारा॥
भरत प्रान प्रिय पावहिं राजू। विधि सबविधि मोहि सनमुख आजू॥
जो न जाउँ वन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़समाजा॥"

अहा! गम्भीरता तथा धीरता की पराकाष्ठा होगई, राम की शान्तिशीलता ने केकई के उत्तप्त क्रोधानल पर ठढा पानी छिड़क दिया। वे प्रसन्न मन मुसुकरा कर कहने लगे–माताजी! भला वन-यात्रा भी कोई कठिन बात है, माता-पिता की प्रसन्नता क लिए तो मैं बड़े से बडा सकट सहने को तैयार हू। भाई भरत राजसिंहासनासीन हों, इससे बढ़कर मेरे लिए और क्या बात हो सकती है? एक ओर केकई क्रोध से भुन रही है, दूसरी ओर अवधेश मूर्छित अवस्था में धरती पर पडे अन्तिम श्वास ले रहे हैं, उधर राजतिलक के बदले वनवास की आज्ञा दी जाती है, परन्तु ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में भी राम के मुँह से वही गम्भीरता पूर्ण वाक्य निकलते हैं जिनकी उनसे आशा की जा सकती थी। कैसा सुन्दर चरित्र चित्रण और कितना उत्कृष्ट कवि-कौशल है। शान्त रस की प्रत्यक्ष प्रतिमा सामने लाकर खडी करदी है।

× × × × ×

"बार बार मुख चुम्बति माता। नयन नेह जल, पुलकित गाता॥
गोद राखि पुनि हृदय लगाए। स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए॥
प्रेम प्रमोद न कछु कहि जाई। रक धनद पदवी जनु पाई॥
तात जाउँ बलि बेगि नहाहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू॥
पितु समीप तब जायेहु भैया। भै बड़ि बार जाइ बलि मैया॥"

वात्सल्य का कैसा सुन्दर वर्णन है। इन चौपाइयों के एक एक अक्षर से पुत्र के प्रति माता का सहज स्नेह टपका पड़ता है। पुत्र का चुम्बन लेकर उसे गोद में बैठा लेना कैसा स्वाभाविक है। 'भैया' पर 'मैया' की 'बलैया' ने तो कमाल ही कर दिया है। बेटा! पहले थोड़ा बहुत खालो, पीछे कहीं जाना-आना। बड़ी देर होगई है, मैं तुम्हें निराहार न जाने दूँगी। सचमुच गोस्वामीजी ने यहा कविता देवी के पयोदों से प्रेम रस की नदी बहादी है। मातृत्व का चारु चित्र खींच कर पाठकों के सामने रख दिया है।

× × × ×

"तात जाउँ बलि कीन्हेउ नीका। पितु आयसु सब धरम क टीका॥
जौ केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जौ पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥"

राम के वनवास का हाल सुनते ही कौशल्या सन्न रह जाती हैं, परन्तु अपने धर्म से विचलित नहीं होतीं। वह बड़ी धीरता से कहती हैं–राम! जाओ, अवश्य वन जाओ, तुम्हें अपने पिता की आज्ञा का पालन करना ही चाहिए। परन्तु एक बात अवश्य है, माता का पद पिता से बड़ा होता है, सो अगर तुम्हें केवल पिता ने ही वनवास दिया है और माता केकई ने कुछ नहीं कहा तो तुम ऐसी अवस्था में घर रह सकते हो। क्योंकि मा का अधिकार बाप से कहीं अधिक है। कैसा सुन्दर भाव है। सपत्नियों के परस्पर अभिन्न सौहार्द्य का कितना विचित्र चित्रण है। कौशल्या अपने और केकई के बीच किसी प्रकार का अन्तर ही नहीं समझतीं। वह ऐसी अवस्था में भी राम को केकई का प्यारा पुत्र कहकर ही सकेत करती हैं और उसकी आज्ञा होने पर सहर्ष वनयात्रा की अनुमति दे देती हैं।

× × × ×

"काहु न कोउ सुख दुखकर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥
जोग वियोग भोग भल मन्दा। हित अनहित मध्यम भ्रम फन्दा॥
जनम मरन जहँ लगि जग जालू। सपति विपति करम अरु कालू॥
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथ नाहीं॥
एहि जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपच वियोगी॥
जानिअ तवहिं जीव जग जागा। जब सब विषय विलास विरागा॥
होइ विवेक मोह भ्रम भागा। तव रघुनाथ चरन अनुरागा॥"

आधी रात्रि से अधिक समय हो गया है, राम तथा सीता शयन कर रहे हैं। लक्ष्मण और निषाद पहरे पर हैं। राजकुमारों की ऐसी अवस्था देख निषाद को विषाद होता है, उस समय लक्ष्मणजी के मुँह से गोस्वामीजी, ऊपर की पक्तियों में जिस सुन्दरता से परमार्थ का तत्त्व वर्णन कराते हैं, वह उन्हीं का भाग है। तुलसीदासजी ने इन गिने-चुने शब्दों में मनुष्य-जीवन के अन्तिम उद्देश्य का सार निचोड कर रख दिया है। सासारिक मोह माया से पृथक् रह कर परमाराध्य के चिन्तन की कैसी अनमोल शिक्षा दी है। हृदय की शान्ति के लिए इससे अधिक उत्तम उपदेश और क्या हो सकता है। सचमुच गागर में सागर भर देना इसी को कहते हैं।

× × × ×

'मागी नाव न केवट आना। कहइ तुम्हार मरम मैं जाना॥
चरन कमल रज कहु सब कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई॥
तरनिउँ मुनि घरनी होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उडाई॥"

नाव में बैठा कर उतारने से पूर्व भक्त केवट राम के चरण-कमलों को पखारना चाहता है, उन्हें विधिवत् स्पर्श करने के लिए उत्सुक है। अपनी इस अभिलाषा को स्पष्ट प्रकट न करके

दूसरे ढग से जाहिर करता है। प्रभो! आप न मालूम किस-किस को तारते आये हैं, कहीं आपकी चरण-धूलि से यह नाव भी मुनि-पत्नी (अहल्या) बन गई तो मेरी जीविका का साधन ही नष्ट हो जायगा। इसलिए पहले आप अपने पावों को धो लेने दीजिये, जिससे मेरा भ्रम जाता रहे। चरण स्पर्श करने का कैसा जबरदस्त कारण है, भक्ति-भाव से भरा हुआ कितना सुन्दर विनोद है। इसके लिए कवि-कौशल की जितनी प्रशंसा की जाय थोडी है।

× × × ×

केवट की भक्ति-रसमयी विनोदपूर्ण वार्त्ता सुन कर रामचन्द्रजी हँस पडते हैं और उसका आशय समझ कर कहते हैं— "सोइ करु जेहि तव नाव न जाई" अरे भाई! वही काम करो जिससे तुम्हारी नाव न जाती रहे। कैसी स्वभावोक्ति और कितनी सादगी है। रामचन्द्रजी के इस कथन से उनके हृदय की उदारता और विशालता प्रकट होती है, और यह अच्छी तरह जाना जा सकता है कि वह अपने भक्तों की प्रसन्नता के लिए उनकी प्रार्थना को किस प्रकार स्वीकार कर लेते थे।

× × × ×

"जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिन्धु अपारा॥
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहि जगु किए तिहुँ पगहुँ ते थोरा॥"

भाई, समय पडे की बात है, और क्या कहा जाय? जिन रामचन्द्र के नाम के स्मरण मात्र से लोग अपार ससार सागर को पार कर जाते हैं वही आज जरा सी नदी उतरने के लिए साधारण केवट का अहसान ले रहे हैं—मल्लाह की खुशामद कर रहे हैं। देखा पाठको, यहाँ गोस्वामीजी ने कैसा विचित्र व्यग्य किया है, कितनी मीठी चुटकी ली है। जिसने जगत् को

अपने तीन पगों से भी छोटा कर दिया उससे यह नदी नहीं लाघी जाती ! कितने आश्चर्य की बात है !! इसी बात को गोस्वामीजी अपनी स्वभावसिद्ध कविता में व्यंग्य रूप से कह रहे हैं।

× × × ×

"कोटि मनोज लजावनि हारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥
सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुची सिय मन महँ मुसकानी॥
तिनहिं बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी॥"

× × × ×

"सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नाम लषन लघु देवर मोरे॥
बहुरि बदन बिधु अंचल ढाकी। पियतन चितइ भौंह करि बाँकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नैननि। निजपति कहेउ तिन्हहिं सिय सैननि॥"

वनवासिनी स्त्रियों ने "कोटि मनोज लजावनि हारे" सीताजी के साथियों की पूछगछ क्या की, उन्हें एक अद्भुत असमंजस में डाल दिया। क्या बतावें क्या न बतावें, कुछ समझ में नहीं आता। सीताजी ने 'सहज सुभाय सुभग तन गोरे' 'लछमन' से तो अपना सम्बन्ध बता दिया अब 'साँवले सलोने राम' को क्या कहें ? सकोच कुछ कहने ही नहीं देता। अन्त में शर्म के मारे सीताजी ने अपना चन्द्रानन चादर से ढांप लिया और तिरछी आँखों का इशारा करके मूक भाषा में कहने लगीं कि जिनके सम्बन्ध में सकोचशीलता कुछ नहीं कहने देती, वे मेरे प्राणनाथ हैं। कैसी सुन्दर भाव भंगी और कितना उत्कृष्ट कवित्व है। सीताजी की सकोचशीलता को तुलसीदासजी ने किस विचित्रता से अंकित किया है। कभी वह राम की ओर देखती हैं और कभी धरणी की तरफ टकटकी

लगाती हैं। एक ओर लज्जा का प्रश्न है दूसरी तरफ़ वन-वासिनियों का तकाजा। अन्त में सीताजी अपने 'तिरीछे नयनों' और 'बाकी सयनों' की सहायता से दोनों काम साधती हैं। पछने वाली स्त्रियों को उत्तर भी मिल जाता है और मुह से कुछ कहना भी नहीं पड़ता। ओह ! तुलसीदासजी के इस कमाल का कुछ ठिकाना है।

× × × ×

"आगे राम लषन बने पाछें। तापस वेष बिराजत काछें॥
उभय बीच सिय सोहति कैसे। ब्रह्म जीव बिच माया जैसे॥
बहुरि कहौं छवि जसि मन बसई। जनु मधु मदन मध्य रति लसई॥
उपमा बहुरि कहौ जिश्र जोही। जनु बुध विधु बिच रोहिनि सोही॥"

राम और लक्ष्मण के बीच में सीता उस प्रकार हैं जिस प्रकार ब्रह्म और जीव के मध्य माया, ऋतुराज वसन्त और कामदेव के बीच में रति या बुद्ध और चन्द्रमा के बीच में रोहिणी। उपमा देने में तो, तुलसीदासजी बड़े ही निपुण थे। रूपक बाँधना और कविता कामिनी के ललित कलेवर को अलकारों से अलकृत कर देना तो उनके बाए हाथ का खेल था।

× × × ×

"खर सियार बोलहिं प्रतिकूला। सुनि सुनि होइ भरत मन सूला॥
श्रीहत सर सरिता वन बागा। नगर बिसेषि भयावन लागा॥
खग मृग हय गय जाहिं न जोए। राम वियोग कुरोग बिगोए॥
नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहुँ सबन्हि सब सम्पति हारी॥
हाट बाट नहिं जाहिं निहारी। जनु पुर दहुँदिसि लागि दवारी॥"

इन चौपाइयों में तुलसीदासजी ने अयोध्या की भयङ्करता का दुर्दश्य दिखलाया है। एक तो राम का वन-गमन उस पर राजा दशरथ की परलोक-यात्रा ऐसी दशा में नगर के शोक का क्या ठिकाना है। नर-नारी ही नहीं पशु पक्षी, वन वृक्ष और सरिता

सरोवर तक शोक से विकल-विह्वल हो रहे हैं, दरो-दीवारों पर भी मुर्दनी छाई हुई है। किसी की ओर देखा नहीं जाता। शहर वियोग-वह्नि से भस्मीभूत हो रहा है। कहां का आनन्द और कैसा उत्साह!

× × × ×

"वन प्रदेस मुनिवास घनेरे। जनु पुर, नगर गाउ गन खेरे
बिपुल बिचित्र बिहँग मृग नाना। प्रजा समाज न जाइ बखाना॥
खगहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष बृष साज सराहा॥
बयरु बिहाय चरहिं एक संगा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा॥
झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं। मनहु निसान बिबिध बिधि बाजहिं॥
चक चकोर चातक सुक पिक गन। कूजत मंजु मराल मुदित मन॥
बेलि बिटप तृन सफल सफूला। सब समाज मुद मंगलमूला॥"

ऊपर की पंक्तियों को पढ़ते ही तपोनिधि मुनियों के आश्रमों का चित्र आंखों के सामने अङ्कित हो जाता है। सरोवरों में 'मंजु मराल' 'कूजने' लगते हैं, झरनों की झड़ी से आनन्द की लड़ी लग जाती है। मालूम होता है, अब संसार में वैर-विरोध का नाम भी नहीं रहा, दुनिया से जातिगत द्वेष भाव उठ गया। सावधान! यह तपस्वियों का आश्रम है, यहां शेर-बकरी एक घाट पानी पी रहे हैं, नकुल और भुजंग साथ साथ लिपटे पड़े हैं। हाथियों का मद उतर गया है और प्रेम पीयूष की वर्षा तथा सद्भाव की भरमार के सिवा और कुछ दिखाई नहीं देता। तुलसीदासजी ने तपस्वियों के आश्रम का कैसा सुन्दर शब्द चित्र खींचा है, बियाबान वन में प्रेम और अहिंसा की मंजुल मूर्ति किस चातुर्य से स्थापित कर दी है। प्राणिमात्र के अभेद भाव और ऐक्य का वर्णन इससे अच्छा और क्या किया जा सकता है।

\+ + + +

"चरन पीठ करुना निधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के।
सपुट भरत सनेह रतन के। आखर जुग जनु जीव जतन के॥
कुल कपाट कर कुसल करम के। विमल नयन सेवा सुधरम के॥"

रामचन्द्र ने भरत जी को अपनी पादुका क्या दे दीं उनका मनोरथ ही सफल कर दिया। ओहो! दोनों खड़ाऊ हैं, या प्रजा के प्राणों के पहरेदार हैं, भरत के प्रेम रूपी रत्न को सुरक्षित रखने के लिए डिब्बे हैं या भरत के जीवन की रक्षा के लिए 'रकार' और 'मकार' रूपी दो अक्षर हैं। नहीं नहीं, ये बातें व्यर्थ हैं, राम की इन दोनों पादुकाओं को सूर्यवंश के किवाड या शुभ कर्मों के लिए हाथ रूप समझना चाहिये इसके अतिरिक्त वह और कुछ नहीं है। कैसा कवि-कौशल है। महाकवि तुलसीदास ने उत्प्रेक्षा का अमृत पिला कर उन काठ की निर्जीव खड़ाउओं में कैसा जीवन डाल दिया है। साधारण लकड़ी की बनी वस्तु को भक्ति की भावना दे कर कितना ऊंचा बना दिया है। इसे सच्ची कविता का अद्भुत चमत्कार न कहें तो क्या कहें।

अलङ्कार निर्देश

कविता-कामिनी के कलेवर को सुसज्जित करने के लिए अलङ्कारों की भी आवश्यकता होती है, परन्तु यह अलङ्कार उसी समय अच्छे मालूम होते हैं जब कविता का कलेवर सुन्दर, सुडौल और सुहावना हो। जिस प्रकार लगड़ी-लूली कुरूपा स्त्री के शरीर पर बहुमूल्य वस्त्राभूषण शोभा नहीं पाते उसी तरह नीरस, भावहीन और चमत्कार शून्य कविता को अलङ्कारों की आभा उत्कृष्ट नहीं बना सकती। किसी के शव को आभूषणों से कितना ही अलङ्कृत क्यों न कर दीजिए परन्तु उसका परिणाम सदैव ही विषादपूर्ण होगा। गो० तुलसीदासजी के राम-

चरित-मानस में अलङ्कारों की कमी नहीं है, पद-पद पर उनकी चमक-दमक और मधुर ध्वनि आनन्द प्रदान करती रहती है। परन्तु उन्होंने अलङ्कारों को ही सब कुछ नहीं समझा, जहां जो अलङ्कार अपनी इच्छा से आगया वहा उसे स्थान दे दिया, जबरदस्ती पकड़ कर बिठाने की कोशिश नहीं की, उसके कारण कविता-कामिनी के कलित कलेवर को टेढ़ा तिरछा नहीं होने दिया। प्रतिभाशाली स्वभावसिद्ध कवि को जो करना चाहिए था वही गोस्वामीजी ने भी किया है। अयोध्याकाण्ड में रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, लोकोक्ति, वक्रोक्ति आदि की कमी नहीं है। पाठकों के मनोविनोदार्थ हम यहा अलङ्कारों के दो चार उदाहरण देना आवश्यक समझते हैं। इसी प्रकार के सैकड़ों अलङ्कार रामायण में मिलेंगे। जो थोड़े से प्रयत्न से ही अच्छी तरह पहचाने जा सकते हैं।

'विपति बीजु बर्षा ऋतु चेरी। भुइ भइ कुमति कैकई केरी॥
भुवन चारिदस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरसहिं सुखवारी॥"

(सम अभेद रूपक)

\+ + + +

सुनहिं राज रामहिं बनवासू। देहु, लेहु सब सवति हुलासू॥

(परिवृत अलङ्कार)

\+ + + ×

भूप मनोरथ सुभग बन, सुख सुविहग समाज।
भिल्लिनि जिमि छाडन चहत, वचन भयकर बाज॥

(रूपकालङ्कार)

\+ + + +

राम साधु तुम्ह साधु सयाने। राम मातु भलि सब पहिचाने॥
(वक्रोक्ति अलंकार)

\+ + + +

राम चले वन प्रान न जाहीं। केहि सुख लागि रहत तन माहीं॥
(विशेषोक्ति अलङ्कार)

\+ + + +

राम दरस हित नेम ब्रत, लगे करन नर-नारि।
मनहुँ कोक कोकी कमल, दीन विहीन तमारि॥
(उत्प्रेक्षालंकार)

\+ + + +

करि कुरूप विधि परवस कीन्हा। बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा
(लोकोक्ति)

\+ + + +

कहने का अभिप्राय यह है कि तुलसीदासजी भावों के भुवन, अनुप्रासों के आचाय, रूपकों के राजा और रसों के समुद्र थे। सचमुच उन्होंने कविता-कामिनी के कलित कलेवर को आभापूर्ण अलङ्कारों से अलकृत कर भव्य भावों को भावना-पूर्वक रसों के सुन्दर सरोवर में स्नान करा दिया है। वह जिस बात को कहते हैं, अजीब ढग से कहते हैं, इस तरह बयान करते हैं कि उनके अक्षर-अक्षर से काव्य-कलाधर की समुज्ज्वल ज्योति जगमगाने लगती है। रूपकों से अयोध्याकाण्ड भरा हुआ है, उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं की उसमें भरमार है। कथा-प्रसग को छोड़ कर तुलसीदासजी की केवल कविता का गौरव दिखाने के लिए ही स्वतन्त्र पोथे लिखे जाने की आवश्यकता है। इस प्रस्तावना के इने-गिने दस-पाँच पृष्ठों पर रामायण की महिमा का वर्णन करना सूरज को दीपक दिखा कर बताना है। इस महाकाव्य का आनन्द तो उसी समय प्राप्त हो सकता है

अब सहृदय पाठक रामचरित मानस में मज्जन कर उसमें लीन हो जायँ, अर्थों को विचारें, भावों को समझें, कवित्व को पहिचानें और कवि की प्रतिभा तथा कवित्व शक्ति का आदर करें। हमें किसी कवि का अध्ययन कविता के सब अंगों को सामने रख कर करना चाहिये। तुलसीदासजी बड़े उत्कृष्ट कवि हैं, उनके जिस काव्य को पढ़िये उसी में आनन्द आता है। यहाँ केवल अयोध्याकाण्ड के सम्बन्ध में दो चार बातें लिख दी गई हैं। आशा है, लेखक का यह तुच्छ प्रयास पाठकों के हृदयों में, तुलसी के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने में कुछ सहायक होगा।

अयोध्याकाण्ड का मूल प्राय 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा सम्पादित रामचरित-मानस के अनुसार ही रखा गया है। साथ ही और भी कई पुराने पाठों से भी उसका मिलान कर लिया है, किन्तु विशेषता सभा के मूल को ही दी गई है। इस संस्करण में दुरूह और दुर्बोध स्थलों पर टिप्पणियां भी देदी हैं और इस बात की पूरी कोशिश की गई है कि विद्यार्थियों को तुलसीदासजी के क्लिष्ट भावों को समझने में कठिनाई न हो। कठिन शब्दों के अर्थ दे दिये हैं और कथा प्रसगों की व्याख्या कर दी गई है। अन्त में अयोध्याकाण्ड में आई हुई कुछ कहावतों का उल्लेख है। जहा तक हो सका है, छात्रों को सुविधा करने का प्रयत्न किया गया है, फिर भी मनुष्य से त्रुटियां रह जाना अस्वाभाविक नहीं है। यदि पाठकों ने इस पुस्तक को पसन्द किया तो हम अपना श्रम सफल समझेंगे।

आगरा
रामनवमी, १९८७ वि०

हरिशङ्कर शर्मा

॥ ॐ ॥

रामचरित-मानस

द्वितीय सोपान

अयोध्याकाण्ड

वामाङ्के च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशङ्करः पातु माम्॥१॥
प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्लौ वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदाऽस्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा॥२॥
नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥३॥

दो०-श्रीगुरु-चरन-सरोज-रज, निज मन-मुकुर सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल-जसु, जो दायक फल चारि॥१॥

जब तें राम ब्याहि घर आये। नित नव मंगल मोद बधाये॥
भुवन-चारिदस भूधर भारी। सुकृत-मेघ बरषहिं सुख-बारी॥
रिधिसिधि-सम्पति-नदी सुहाई। उमगि अवध अम्बुधि कहँ आई॥
मनिगन-पुर-नर-नारि सुजाती। सुचि-अमोल-सुंदर सब भाँती॥
कहि न जाइ कछु नगर बिभूती। जनु एतनिय बिरंचि करतूती॥
सब बिधि सब पुर लोग सुखारी। रामचन्द-मुख-चन्द निहारी॥
मुदित मातु सब सखी सहेली। फलित बिलोकि मनोरथ बेली॥
राम रूप गुन सील सुभाउ। प्रमुदित होहि देखि सुनि राउ॥

दो०–सब के उर अभिलाष अस कहहिं मनाइ महेसु।
आपु अछत जुबराजपद, रामहिं देहिं नरेसु ॥२॥

एक समय सब सहित समाजा। राज सभा रघुराज बिराजा॥
सकल सुकृत मूरति नरनाहू। राम सुजस सुनि अतिहि उछाहू॥
नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे। लोकप रहहिं प्रीति रुख राखे॥
त्रिभुवन तीन काल जग माहीं। भूरि-भाग दसरथ सम नाहीं॥
मंगलमूल राम सुत जासू। जो कछु कहिय थोर सबु तासू॥
राय सुभाय मुकुर कर लीन्हा। बदन बिलोकि मुकुट सम कीन्हा॥
स्रवन समीप भए सित केसा। मनहुँ जरठपन अस उपदेसा॥
नृप जुवराज राम कहँ देहू। जीवन-जनम लाहु किन लेहू॥

दो०–यह बिचार उर आनि नृप, सुदिन सुअवसर पाइ।
प्रेमपुलकि तन मुदित मन, गुरुहिं सुनायउ जाइ ॥३॥

कहेउ भुआल सुनिय मुनिनायक। भये राम सब बिधि सब लायक॥
सेवक सचिव सकल पुरवासी। जे हमरे अरि मित्र उदासी॥
सबहि राम प्रिय जेहि बिधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही॥
बिप्र सहित परिवार गुसाईं। करहिं छोह सब रउरहि नाईं॥
जे गुरु चरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं॥
मोहि सम यह अनुभयेउ न दूजे। सब पायेउँ प्रभु पद रज पूजे॥
अब अभिलाष एक मन मोरे। पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरे॥
मुनि प्रसन्न लखि सहजसनेहू। कहेउ नरेसु रजायसु देहू॥

दो०–राजन राउर नाम जसु सब अभिमतदातार।
फल अनुगामी महिप मनि, मन अभिलाष तुम्हार ॥४॥

सब बिधि गुरु प्रसन्न जिय जानी। बोलेउ राउ रहसि मृदुबानी॥
नाथ राम करियहि जुवराजू। कहिय कृपाकरि करिय समाजू॥
मोहि अछत यह होइ उछाहू। लहहिं लोग सब लोचन-लाहू॥
प्रभु प्रसाद सिव सबइ निबाहीं। यह लालसा एक मन माहीं॥

पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ। जेहि न होइ पाछे पछिताऊ॥
सुनि मुनि दसरथ-बचन सुहाए। मंगल-मोद मूल मन भाए॥
सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं। जासु भजन बिन जरनि न जाहीं॥
भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी। राम पुनीत प्रेम-अनुगामी॥

दो०-बेगि बिलंबु न करिअ नृप, साजिअ सबइ समाजु।
सुदिन सुमंगल तबहिं जब, राम होहिं जुबराजु॥४॥

मुदित महीपति मन्दिर आए। सेवक सचिव सुमंत्र बुलाए॥
कहि जयजीव सीस तिन्ह नाए। भूप सुमंगल बचन सुनाए॥
प्रमुदित मोहि कहेउ गुरु आजू। रामहि राय देहु जुबराजू॥
जौं पंचहि मत लागइ नीका। करहु हरषि हिय रामहि टीका॥
मंत्री मुदित सुनत प्रिय-बानी। अभिमत बिरव परेउ जनु पानी॥
बिनती सचिव करहिं करजोरी। जिअहु जगतपति बरस करोरी॥
जग-मंगल भल काजु बिचारा। बेगिअ नाथ न लाइय बारा॥
नृपहि मोद सुनि सचिव सुभाखा। बढ़त बौंड़ जनु लही सुसाखा॥

दो०-कहेउ भूप मुनिराज कर, जोइ जोइ आयसु होइ।
राम राज अभिषेक हित, बेगि करहु सोइ सोइ॥६॥

हरषि मुनीस कहेउ मृदुबानी। आनहु सकल सुतीरथपानी॥
औषध मूल फूल फल पाना। कहे नाम गनि मंगल नाना॥
चामर चरम बसन बहु भाँती। रोम पाट पट अगनित-जाती॥
मनिगन मंगलबस्तु अनेका। जो जग जोग भूप अभिषेका॥
बेद बिदित कहि सकल बिधाना। कहेउ रचहु पुर बिबिध बिताना॥
सफल रसाल पुगफल केरा। रोपहु बीथिन पुर चहुँ फेरा॥
रचहु मंजु मनि चौकइ चारू। कहहु बनावन बेगि बजारू॥
पूजहु गनपति गुरु कुलदेवा। सब बिधि करहु भूमिसुर सेवा॥

दो०-ध्वज पताक तोरन कलस, सजहु तुरग रथ नाग।
सिर धरि मुनिबर-बचन सब, निज निज काजहिं लाग॥७॥

जो मुनीस जेहि आयसु दीन्हा। सो तेहि काज प्रथम जनु कीन्हा॥
विप्र साधु सुर पूजत राजा। करत रामहित मगलकाजा॥
सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा॥
राम-सीय तन सगुन जनाए। फरकहिं मगल अग-सुहाए॥
पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं। भरत आगमन सूचक अहहीं॥
भये बहुत दिन अति अवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी॥
भरत सरिस प्रिय को जगमाहीं। इहइ सगुन फल दूसर नाहीं॥
रामहि बधु सोच दिनराती। अडन्हि कमठ हृदय जेहि भाँती॥

दो०–एहि अवसर मगल परम, सुनि रहसेउ रनिवासु।
सोभत लखि विधु बढत जनु, वारिधि बीचि विलासु॥८॥

प्रथम जाइ जिन्ह बचन सुनाए। भूषन बसन भूरि तिन्ह पाए॥
प्रेम-पुलकि तन-मन अनुरागीं। मगल कलस सजन सब लागीं॥
चौकइँ चारु सुमित्रा पूरे। मनि मय विविध-भाँति अति रूरे॥
आनँद मगन राम-महतारी। दिए दान बहु विप्र हँकारी॥
पूजी ग्रामदेवि सुर-नागा। कहेउ बहोरि देन बलिभागा॥
जेहि विधि होइ राम कल्यानू। देहु दया करि सो वरदानू॥
गावहि मगल कोकिल बयनी। विधु बदनी मृग सावक नयनी॥

दो०–राम राज अभिषेकु सुनि, हिय हरषे नर-नारि।
लगे सुमगल सजन सब, विधि अनुकूल विचारि॥९॥

तब नरनाह वसिष्ठ बुलाये। राम धाम सिख देन पठाये॥
गुर आगमन सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायेउ माथा॥
सादर अरघ देइ घर आने। सोरह-भाँति पूजि सनमाने॥
गहे चरन सिय-सहित बहोरी। बोले राम कमल-कर जोरी॥
सेवक-सदन स्वामि आगमनू। मगल-मूल अमगल-दमनू॥
तदपि उचित जन बोलि सप्रीती। पठइअ काज नाथ अस नीती॥
प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आज यह गेहू॥
आयसु होइ सो करउँ गोसाईं। सेवक लहइ स्वामि सेवकाई॥

दो०-सुनि सनेह साने बचन, मुनि रघुबरहि प्रसंस।
राम कस न तुम्ह कहहु अस, हंस बंस अवतंस ॥१०॥

बरनि राम गुन सील-सुभाऊ। बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ॥
भूप सजेउ अभिषेक समाजू। चाहत देन तुम्हहि जुबराजू॥
राम करहु सब संजम आजू। जौं बिधि कुसल निबाहइ काजू॥
गुरु सिख देइ राउ पहिं गयऊ। राम हृदय अस बिसमय भयऊ॥
जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥
करनबेध उपबीत बियाहा। संग संग सब भएहु उछाहा॥
बिमल बंस यह अनुचित एकू। अनुज बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगत-मन कै कुटिलाई॥

दो०-तेहि अवसर आए लषन, मगन प्रेम आनन्द।
सनमाने प्रिय बचन कहि, रघुकुल कैरव चन्द ॥११॥

बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना। पुर प्रमोद नहि जाइ बखाना॥
भरत आगमन सकल मनावहिं। आवहिं बेगि नयन फल पावहिं॥
हाट बाट घर गली अथाईं। कहहिं परसपर लोग लुगाईं॥
कालि लगन भलि केतिक बारा। पूजहि बिधि अभिलाष हमारा॥
कनक सिंघासन सीय समेता। बैठहिं रामु होय चित चेता॥
सकल कहहिं कब होइहि काली। बिघन मनावहि देव कुचाली॥
तिन्हहि सोहाइ न अवध बधावा। चोरहिं चाँदिनि राति न भावा॥
सारद बोलि बिनय सुर करहीं। बारहि बार पाँय लै परहीं॥

दो०-बिपति हमारि बिलोकि बड़ि, मातु करिय सोइ आजु।
राम जाहिं बन राजु तजि, होइ सकल सुर-काजु ॥१२॥

सुनि सुर-बिनय ठाढ़ि पछिताती। भइउ सरोज बिपिन हिमराती॥
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी। मातु तोहि नहि थोरिउ खोरी॥
बिसमय-हरष रहित रघुराऊ। तुम्ह जानहु सब राम प्रभाऊ॥
जीव करम-बस सुख दुख-भागी। जाइय अवध देव हित लागी॥

बार बार गहि चरन सँकोची। चली विचारि बिबुध मतिपोची॥
ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती॥
आगिल काजु बिचारि बहोरी। करिहहिं चाह कुसल कबि मोरी॥
हरषि हृदय दसरथ पुर आई। जनु ग्रह-दसा दुसह दुखदाई॥
दो०-नाम मथरा मदमति, चेरी कैकइ केरि।
अजस पिटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि॥१३॥

दीख मथरा नगर बनावा। मजुल मगल बाज बधावा॥
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। राम तिलकि सुनि भा उरदाहू॥
करइ बिचार कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाजु कवन बिधि राती॥
देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गौं तकइ लेउँ केहि भाती॥
भरत मातु पहिं गइ बिलखानी। का अनमनि हसि कह हँसि रानी॥
उतरु देइ नहि लेइ उसासू। नारि-चरित करि ढारइ आँसू॥
हँसि कह रानि गाल बड तोरे। दीन्ह लषन सिख अस मन मोरे॥
तबहुँ न बोलि चेरि बडि पापिनि। छाँडइ स्वास कारि जनु साँपिनि॥
दो०-सभय रानिकह कहसि किन, कुसल रामु महिपालु।
लषन भरत रिपु दमन सुनि, भा कुबरी-उर सालु॥१४॥

कत सिख देइ हमहिं कोउ माई। गालु करब केहि कर बल पाई॥
रामहि छाडि कुसल केहि आजू। जिनहि जनेसु देहि जुबराजू॥
भयउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन। देखत गरब रहत उर नाहि न॥
देखहु कस न जाइ सब सोभा। जो अवलोकि मोरि मन छोभा॥
पूत बिदेस न सोचु तुम्हारे। जानतिहहु बस नाहु हमारे॥
नींद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप कपट चतुराई॥
सुनि प्रिय बचन मलिन-मन जानी। झुकी रानि अब रहु अरगानी॥
पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढावउ तोरी॥
दो०-काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि॥१५॥

प्रिय बादिनि सिख दीन्हिउँ तोही। सपनेहु तो पर कोप न मोही ॥
सुदिन सुमंगलदायक सोई। तोर कहा फुर जेहि दिन होई ॥
जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर-कुल रीति सुहाई ॥
राम तिलक जौं साँचेहु काली। देउँ माँगु मनभावत आली ॥
कौसल्या सम सब महतारी। रामहि सहज सुभाय पियारी ॥
मो पर करहिं सनेह विसेखी। मैं करि प्रीति परीछा देखी ॥
जौं विधि जनमु देइ करि छोहू। होहिं राम सिय पूत पतोहू ॥
प्रान तें अधिक राम प्रिय मोरे। तिन्ह कर तिलक छोभु कस तोरे॥

दो०-भरत सपथ तोहि सत्य कहु, परिहरि कपट दुराउ।
हरष समय विसमय करसि, कारन मोहि सुनाउ ॥१६॥

एकहि बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीह करि दूजी॥
फोरइ जोग कपार अभागा। भलेउ कहत दुख रउरेहु लागा ॥
कहहिं झूठ फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई ॥
हमहुँ कहब अब ठकुर-सोहाती। नाहि त मौन रहब दिनराती ॥
करि कुरूप विधि परबस कीन्हा। बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा।
कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाडि अब होब कि रानी ॥
जारइ जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ॥
ताते कछुक बात अनुसारी। छमिय देवि बडि चूक हमारी॥

दो०-गूढ कपट प्रिय बचन सुनि, तीय अधर बुधि रानि।
सुर माया बस बैरिनिहिं, सुहृद जानि पतियानि ॥१७॥

सादर पुनि पुनि पूछति ओही। सबरी-गान मृगी जनु मोही ॥
तस मति फिरी अहइ जस भावी। रहसी चेरि घात जनु फाबी ॥
तुम पूछहु मैं कहत डराऊँ। धरेउ मोर घरफोरी नाऊँ ॥
सजि प्रतीति बहुविधि गढ़ि-छोली। अवध साढसाती तब बोली ॥
प्रिय सियराम कहा तुम रानी। रामहि तुम प्रिय सो फुरि बानी ॥
रहा प्रथम अब ते दिन बीते। समउ फिरे रिपु होहिं पिरीते ॥

भानु कमल-कुल पोषनि हारा । बिनु जर जारि करइ सोइ छारा॥
जर तुम्हारि चह सवति उखारी। रूँधहु करि उपाय बर-बारी॥

दो०-तुम्हहिं न सोच सुहाग बल, निज बस जानहु राउ।
मन मलीन मुह-मीठ नृप, राउर सरल-सुभाउ ॥१८॥

चतुर गँभीर राम महतारी। बीचु पाइ निजबात सवाँरी॥
पठए भरत भूप ननिऔरे। राम-मातु मत जानव रउरे॥
सेवहिं सकल सवति मोहि नीके। गरबित भरत मातु बल पीके॥
सालु तुम्हारि कौसलहि माई। कपट-चतुर नहिं होइ जनाई॥
राजहिं तुम पर प्रेम बिसेखी। सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी॥
रचि प्रपंच भूपहि अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई॥
यह कुल उचित राम कहँ टीका। सबहि सुहाइ मोहि सुठि नीका॥
आगिल बात समुझि डर मोही। देउ दैव फिरि सो फल ओही॥

दो०-रचिपचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपट प्रबोधु।
कहेसि कथा सत सवति कै, जेहि बिधि बाढ बिरोधु ॥१६॥

भावी बस प्रतीति उर आई। पूँछि रानि पुनि सपथ दिवाई॥
का पूछहु तुम्ह अबहु न जाना। निज हित अनहित पसु पहिचाना॥
भएउ पाख दिन सजत समाजू। तुम्ह पाई सुधि मुहि सन आजू॥
खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारे। सत्य कहे नहिं दोष हमारे॥
जौ असत्य कछु कहब बनाई। तौ बिधि देइहि हमहि सजाई॥
रामहिं तिलक कालि जौं भयउ। तुम कहँ बिपति बीज बिधि बयऊ॥
रेख खँचाइ कहउँ बल भाखी। भामिनि भइहु दूध कइ माखी॥
जौ सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई॥

दो०-कद्रू बिनतहि दीन्ह दुख तुमहि कौसिला देब।
भरत बंदि-गृह सेइहहिं लषन राम के नेब ॥२०॥

कैकय-सुता सुनत कटुबानी। कहि न सकै कछु सहमि सुखानी॥
तनु पसेउ कदली जिमि काँपी। कुबरी दसन जीभ तब चाँपी॥

कहि कहि कोटिक कपट-कहानी। धीरज धरहु प्रबोधेसि रानी॥
कीन्हेसि कठिन पढाइ कुपाठू। जिमि न नवै फिरि उकठ कुकाठू॥
फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। बकिहि सराहइ मानि मराली॥
सुनु मथरा बात फुरि तोरी। दहिनि आँखि नित फरकहि मोरी॥
दिन प्रति देखहुँ राति कुसपने। कहउँ न तोहि मोह बस अपने॥
काह करउँ सखि सूध-सुभाऊ। दाहिनि बाम न जानउँ काऊ॥

दो०—अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहुक कीन्ह।
केहि अघ एकहि बार मोहि, दैव दुसह-दुख दीन्ह॥२१॥

नैहर जनमु भरब बरु जाई। जियत न करब सवति सेवकाई॥
अरि बस दैव जिआवत जाही। मरन नीक तेहि जीव न चाही॥
दीन-बचन कह बहु बिधि रानी। सुनि कुबरी तिय माया ठानी॥
अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुख-सोहाग तुम्ह कहँ दिन दूना॥
जो राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि यह फलु परिपाका॥
जबतें कुमत सुना मैं स्वामिनि। भूख न बासर नींद न जामिनि॥
पूछेउ गुनिन्ह रेख तिन खाची। भरत भुआल होहि यह साची॥
भामिनि करहु त कहउ उपाऊ। है तुम्हरी सेवा-बस राऊ॥

दो०—परौं कूप तव बचन लगि, सकौं पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुख देखि बड, कस न करब हित लागि॥२२॥

कुबरी करि कुबली कैकेई। कपट-छुरी उर पाहन टेई॥
लखइ न रानि निकट दुख कैसे। चरइ हरित तृन बलि पसु जैसे॥
सुनत बात मृदु अन्त कठोरी। देति मनहुँ मधु माहुर घोरी॥
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं। स्वामिनि कहेउ कथा मोहि पाहीं॥
दुइ बरदान भूप सन थाती। मागहु आजु जुडावहु छाती॥
सुतहि राज रामहि बनबासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू॥
भूपति राम सपथ जब करई। तब मागहु जेहि बचन न टरई॥
होइ अकाजु आजु निसि बीते। बचन मोर प्रिय मानहु जीते॥

दो०—बड़ कुघात करि पातकिनि, कहेसि कोप गृह जाहु।
फाज सँवारेहु सजग सब, सहसा जनि पतियाहु ॥२३॥

कुबरिहिं रानि प्रान प्रिय जानी। बार बार बड़ि बुद्धि बखानी॥
तोहि सम हितु न मोर ससारा। बहे जात कर भइसि अधारा॥
जौ विधि पुरब मनोरथ काली। करौं तोहि चख पूतरि आली॥
बहु विधि चेरिहि आदर देई। कोप भवन गवनी कैकेई॥
बिपति बीज बरषा रितु चेरी। भुइँ भइ कुमति केकई केरी॥
पाइ कपट-जल अंकुर जामा। बर दोउ दल दुखफल परिनामा॥
कोप समाजु साजि सब सोई। राज करत निज कुमति बिगोई॥
राउर नगर कुलाहल होई। यह कुचालि कछु जान न कोई॥

दो०-प्रमुदित पुर-नर नारि सब, सजहि सुमगलचार।
एक प्रविसहिं एक निरगमहि, भीर भूप-दरबार ॥२४॥

बाल सखा सुनि हिय हरषाहीं। मिलि दस पाच राम पहँ जाहीं॥
प्रभु आदरहिं प्रेम पहिचानी। पूछहिं कुसल-छेम मृदु बानी॥
फिरहिं भवन प्रिय आयसु पाई। करत परसपर राम बडाई॥
को रघुबीर सरिस ससारा। सीलु सनेहु निबाहनि-हारा॥
जेहि जेहि जोनि करम बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईसु देहि यह हमहीं॥
सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात यह ओर निबाहू॥
अस अभिलाप हृदय सब काहू। कैकय-सुता हृदय अतिदाहू॥
को न कुसगति पाइ नसाई। रहै न नीच मते चतुराई॥

दो० साझ समय सानन्द नृप, गयउ कैकयी गेह।
गवन निठुरता निकट किय, जनु धरि देह सनेह ॥२५॥

कोप भवन सुनि सकुचेउ राऊ। भयबस अगहुड परइ न पाऊ॥
सुर पति बसइ बाह बल जाके। नर पति सकल रहहिं रुख ताके॥
सो सुनि तिय रिस गयेउ सुखाई। देखहु काम प्रताप बडाई॥
सूल कुलिस असि अँगवनिहारे। ते रति-नाथ सुमन-सर मारे॥

सभय नरेस प्रिया पहँ गयऊ। देखि दसा दुख दारुन भयेऊ॥
भूमि सयन पट मोट पुराना। दिये डारि तन भूषन नाना॥
कुमतिहि कसि कुबेसता फाबी। अन-अहिवातु सूच जनु भावी॥
जाइ निकट नृप कह मृदुबानी। प्रान प्रिया केहि हेतु रिसानी॥

छं०—केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहिं निवारई।
मानहुँ सरोष भुअंग भामिनि बिषम भाँति निहारई॥
दोउ बासना रसना दसन बर मरम-ठाहरु देखई।
तुलसी नृपति भवितव्यतावस काम कौतुक लेखई॥

सो०—बार बार कह राउ, सुमुखि सुलोचनि पिक-बयनि।
कारन मोहि सुनाउ, गज-गामिनि निज कोप कर॥२६॥

अनहित तोर प्रिया केहि कीन्हा। केहि दुइ-सिर केहि जम चह लीन्हा॥
कहु केहि रंकहि करउँ नरेसू। कहु केहि नृपहि निकासउँ देसू॥
सकउँ तोर अरि अमरउ मारी। काह कीट बपुरे नर-नारी॥
जानसि मोर सुभाउ बरोरू। मन तव आनन चन्द-चकोरू॥
प्रिया प्रान सुत सरबस मोरे। परिजन प्रजा सकल बस तोरे॥
जो कछु कहउँ कपट करि तोही। भामिनि राम सपथ सत मोही॥
बिहँसि मागु मन भावति बाता। भूषन सजहि मनोहर गाता॥
कुघरी घरी समुझि जिय देखू। बेगि प्रिया परिहरहु कुबेषू॥

दो०—यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि, बिहँसि उठी मति मन्द।
भूषन सजति बिलोकि मृग, मनहुँ किरातिनि फन्द॥२७॥

पुनि कह राउ सुहृद जिअ जानी। प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी॥
भामिनि भयेउ तोर मनभावा। घर घर नगर अनन्द-बधावा॥
रामहि देउँ कालि जुबराजू। सजहि सुलोचनि मंगल साजू॥
दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू। जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू॥
ऐसिउ पीर बिहँसि तेइ गोई। चोर नारि जिमि प्रगट न रोई॥
लखी न भूप कपट-चतुराई। कोटि कुटिलमनि गुरू पढ़ाई॥

जद्यपि नीति निपुन नरनाहू । नारि चरित जलनिधि अवगाहू ॥
कपट सनेह बढ़ाइ बहोरी । बोली बिहँसि नयन मुँह मोरी ॥

दो०-मागु मागु पै कहहुँ पिय, कबहुँ न देहु न लेहु ।
देन कहेहु बरदान दुइ, तेउ पावत सन्देहु ॥२८॥

जानेउँ मरम राउ हँसि कहई । तुम्हहि कोहाब परमप्रिय अहई ॥
थाती राखि न मागेहु काऊ । बिसरि गयेउ मोहि भोर सुभाऊ ॥
झूठेहु हमहि दोस जनि देहू । दुइ कै चारि मागि किन लेहू ॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाहु बरु बचनु न जाई ॥
नहिं असत्य सम पातक पुजा । गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा ॥
सत्य मूल सब सुकृत सुहाए । वेद पुरान बिदित मुनि गाए ॥
तेहि पर राम सपथ करि आई । सुकृत सनेह अवधि रघुराई ॥
बात दृढाइ कुमति हँसि बोली । कुमत कुबिहँग कुलह जनु खोली ॥

दो०-भूप मनोरथ सुभग बन, सुख सुबिहग समाजु ।
भिल्लिनि जिमि छाँडन चहति, बचन भयकर बाजु ॥२६॥

सुनहु प्रान प्रिय भावत जीका । देहु एक बर भरतहि टीका ॥
मागउँ दूसर बर कर जोरी । पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी ॥
तापस बेष बिसेषि उदासी । चौदह बरस राम बनवासी ॥
सुनि मृदुबचन भूप हिय सोकू । ससि-कर छुअत बिकल जिमि कोकू ॥
गयउ सहमि नहि कछु कहि आवा । जनु सचान बन झपटेउ लावा ॥
बिबरन भएउ निपट नरपालू । दामिनि हनेहु मनहुँ तरु तालू ॥
माथे हाथ मूदि दोउ लोचन । तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन ॥
मोर मनोरथ सुरतरु फूला । फरत करिनि जिमि हतेउ समूला ॥
अवध उजारि कीन्हि कैकेई । दीन्हेसि अचल बिपति कै नेई ॥

सो०-कवने अवसर का भयउ, गएउ नारि बिस्वास ।
जोग सिद्धि फल समय जिमि, जतिहि अविद्या नास ॥३०॥

एहि विधि राउ मनहि मन झाँखा। देखि कुभाँति कुमति मन माखा॥
भरतु कि राउर पूत न होहीं। आनेहु मोल बेसाहि कि मोही॥
जो सुनि सर अस लाग तुम्हारे। काहे न बोलेहु बचन सभारे॥
देहु उतरु अरु कहहु कि नाहीं। सत्य सध तुम रघुकुल माहीं॥
देन कहेहु अब जनि बरु देहू। तजहु सत्य जग अपजसु लेहू॥
सत्य सराहि कहेहु बरु देना। जानेहु लेइहि मागि चबेना॥
सिबि दधीचि बलि जो कछु भाखा। तनु धनु तजेउ बचन पन राखा॥
अति कटु बचन कहति कैकेई। मानहुँ लौन जरे पर देई॥

दो०—धरम धुरधर धीर धरि, नयन उघारे राय।
सिर धुनि लीन्हि उसास असि, मारेसि मोहि कुठाय॥३१॥

आगे देखि जरति रिस भारी। मनहुँ रोप तरवारि उघारी॥
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। धरी कूबरी सान बनाई॥
लखी महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवन लेइहि मोरा॥
बोलेउ राउ कठिन करि छाती। बानी-सबिनय तासु सुहाती॥
प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती। भीरु प्रतीति प्रीति करि हाँती॥
मोरे भरत राम दोइ आँखी। सत्य कहौं करि सकरु साखी॥
अवसि दूत मैं पठउब प्राता। ऐहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता॥
सुदिन सोधि सब साजु सजाई। देहुँ भरत कहँ राजु बजाई॥

दो०—लोभ न रामहिं राजु कर, बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड-छोट बिचारि जिय, करत रहेउँ नृप-नीति॥३२॥

राम-सपथ-सत कहउ सुभाऊ। राम-मातु कछु कहेउ न काऊ॥
मैं सब कीन्ह तोहि बिनु पूछे। तिहितें परेउ मनोरथ छूछे॥
रिस परिहरु अब मगल साजू। कछु दिन गए भरत जुबराजू॥
एकहि बात मोहि दुख लागा। बर दूसर असमजस मागा॥
अजहू हृदय जरत तेहि आचा। रिस परिहास कि साचेहु साचा॥
कहु तजि रोपु राम अपराधू। सब कोउ कहै राम सुठि साधू॥

तुम्ह मराहमि करमि सनेहू। अब सुनि मोहि भयउ सन्देहू॥
जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला। सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला॥
सो० प्रिया हास रिस परिहरहु मागु बिचारि बिबेक।
जेहि देखउँ अब नयन भरि भरत राज अभिषेक।३३।

जिअइ मीन बरु बारि बिहीना। मनि बिनु फनिक जिअइ दुखदीना॥
कहौं सुभाउ न छल मन माहीं। जीवन मोर राम बिनु नाहीं॥
समुझि देखु जिय प्रिया प्रबीना। जीवन राम-दरस आधीना॥
सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई। मनहुँ अनल आहुति घृत परई॥
कहइ करहु किन कोटि उपाया। इहा न लागिहि राउरि माया॥
देहु कि लेहु अजसु करि नाहीं। मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं॥
राम साधु तुम्ह साधु सयाने। राम मातु भलि सब पहिचाने॥
जस कौसिला मोर भल ताका। तस फल उन्हहि देउँ करि साका॥
दो०-होत प्रात मुनि बेष धरि, जौं न राम बन जाहिं।
मोर मरन राउर अजस, नृप समुझिअ मनमाहिं॥३४॥

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढी। मानहु रोष-तरंगिनि बाढी॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध-जल जाइ न जोई॥
दोउ बर-कूल कठिन हठ धारा। भँवर-कूबरी—बचन—प्रचारा॥
ढाहत भूप रूप तरु मूला। चली बिपति बारिधि अनुकूला॥
लखी नरेस बात सब साँची। तियमिस मीच सीस पर नाँची॥
गहि पद बिनय कीन्हि बैठारी। जनि दिनकर-कुल होसि कुठारी॥
माँगु माथ अबहीं देउँ तोही। राम बिरह जनि मारसि मोही॥
राखु राम कहँ जेहि तेहि भाँती। नाहि त जरिहि जनम भरि छाती॥
दो०-देखी ब्याधि असाधि नृप, परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरत बचन, राम राम रघुनाथ॥३५॥

ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता॥
कंठ सूख मुख आव न बानी। जनु पाठीन दीनु बिनु पानी॥

पुनि कह कटु कठोर कैकेई। मनहुँ घाय महँ माहुर देई॥
जौं अन्तहु अस करतब रहेऊ। माँगु माँगु तुम केहि बल कहेऊ॥
दुइ कि होहि इक समय भुआला। हँसब ठठाइ फुलाउब गाला॥
दानि कहाउब अरु कृपनाई। होहि कि छेम-कुसल रौताई॥
छाड़हु बचन कि धीरज धरहू। जनि अबला जिमि करुना करहू॥
तनु तिय तनय धाम धनु धरनी। सत्य सध कहँ तृन सम बरनी॥

दो०-मरम बचन सुनि राउ कह, कहु कछु दोष न तोर।
लागेउ तोहि पिसाच जिमि, काल कहावत मोर॥३६॥

चहत न भरत भूपतहि भोरे। विधिबस कुमति बसी जिय तोरे॥
सो सब मोर पाप परिनामू। भयेउ कुठाहर जेहि विधि बामू॥
सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई। सब गुन धाम राम प्रभुताई॥
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई। होइहि तिहुँपुर राम बड़ाई॥
तोर कलंक मोर पछिताऊ। मुयेहु न मिटिहि न जाइहि काऊ॥
अब तोहि नीक लाग करु सोई। लोचन ओट बैठ मुँह गोई॥
जब लगि जिअउँ कहौं कर जोरी। तब लगि जनि कछु कहेसि बहोरी॥
फिरि पछितैहसि अन्त अभागी। मारसि गाय नाहरहि लागी॥

दो०-परेउ राउ कहि कोटि बिधि, काहे करसि निदान॥
कपट सयानि न कहति कछु, जागति मनहुँ मसान॥३७॥

राम राम रटि बिकल भुआलू। जनु बिनुपख बिहग बिहालू॥
हृदय मनाव भोर जनि होई। रामहि जाय कहै जनि कोई॥
उदय करहु जनि रबि रघुकुल-गुर। अवध बिलोकि सूल होइहि उर॥
भूप प्रीति कैकइ कठिनाई। उभय अवधि विधि रची बनाई॥
बिलपत नृपहि भयेउ भिनुसारा। बीना-बेनु सरस-धुनि-द्वारा॥
पढहिं भाट गुन गावहिं गायक। सुनत नृपहि जनु लागहि सायक॥
मंगल सकल सुहाहिं न कैसे। सहगामिनिहि बिभूषन जैसे॥
तेहि निसि नींद परी नहिं काहू। राम-दरस-लालसा उछाहू॥

दो०—द्वार भीर सेवक सचिव, कहहिं उदित रवि देखि।
जागे अजहुँ न अवध पति, कारन कवन विसेखि ॥३८॥

पछिले पहर भूप नित जागा। आज हमहिं बड़ अचरजु लागा॥
जाहु सुमन्त्र जगावहु जाई। कीजिअ काज रजायसु पाई॥
गये सुमन्त्र तब राउर पाहीं। देखि भयावन जात डराहीं॥
धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। मानहुँ विपति-विषाद बसेरा॥
पूछे कोउ न ऊतरु देई। गये जेहि भवन भूप कैकेई॥
कहि जय जीव बैठि सिर नाई। देखि भूप-गति गयउ सुखाई॥
सोच विकल बिबरन महि परेऊ। मानहुँ कमल-मूल परिहरेऊ॥
सचिव सभीत सकै नहि पूँछी। बोली असुभ भरी सुभ-छूछी॥

दो०—परी न राजहि नींद निसि, हेतु जान जगदीस।
राम राम रटि भोर किय, कहेउ न मरम महीस ॥३६॥

आनहु रामहि वेगि बुलाई। समाचार तब पूछेहु आई॥
चलेउ सुमन्त्र राय रुख जानी। लखी कुचालि कीन्ह कछु रानी॥
सोच विकल मग परै न पाऊ। रामहि बोलि कहिहिं का राऊ॥
उर धरि धीरज गयउ दुआरे। पूछहिं सकल देखि मनु मारे॥
समाधान सो करि सब ही का। गयउ जहाँ दिन कर-कुल-टीका॥
राम सुमन्त्रहि आवत देखा। आदर कीन्ह पिता-सम लेखा॥
निरखि बदन कहि भूप रजाई। रघुकुल-दीपहि चलेउ लिवाई॥
राम कुभाँति सचिव सँग जाहीं। देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं॥

दो०—जाइ देखि रघुबंस मनि, नरपति निपट कुसाज।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि, मनहु वृद्ध गज राज ॥४०॥

सूखहि अधर जरइ सब अंगू। मनहुँ दीन मनि-हीन भुअंगू॥
सरुख समीप देख कैकेई। मानहुँ मीच घरी गनि लेई॥
करुनामय मृदु राम-सुभाऊ। प्रथम दीख दुख सुना न काऊ॥
तदपि धीर धरि समय बिचारी। पूछी मधुर-बचन महतारी॥

मोहि कहु मातु तात दुख कारन। करिअ जतन जेहिं होइ निवारन॥
सुनहु राम सब कारन एहू। राजहि तुम्ह पर बहुत सनेहू॥
देन कहेउ मोहिं दुइ बरदाना। मागेउ जो कछु मोहि सुहाना॥
सो सुनि भयउ भूप उर सोचू। छाडि न सकहिं तुम्हार सँकोचू॥
दो०–सुत-सनेह इत बचन उत, संकट परेउ नरेसु।
सकहु त आयसु धरहु सिर, मेटहु कठिन कलेसु॥४१॥
निधरक बैठि कहइ कटु बानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी॥
जीभ कमान बचन सर नाना। मनहुँ महिप मृदु लच्छ समाना॥
जनु कठोरपनु धरें सरीरू। सिखइ धनुष बिद्या बरबीरू॥
सब प्रसंग रघुपतिहि सुनाई। बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई॥
मन मुसकाइ भानु कुल-भानू। राम सहज आनन्द निधानू॥
बोले बचन बिगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषन॥
सुनु जननी सोइ सुत बड भागी। जो पितु-मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुरलभ जननि सकल संसारा॥
दो०–मुनि गन मिलन बिसेषि बन, सबहि भाँति हित मोर।
तेहि पर पितु आयसु बहुरि, संमत जननी तोर॥४२॥
भरत प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिय मोहि मूढ-समाजा॥
सेवहिं अरँडु कलपतरु त्यागी। परिहरि अमिय लेहिं बिष मागी॥
तेउ न पाइ अस समय चुकाहीं। देखि बिचारि मातु मन माहीं॥
अम्ब एक दुख मोहि बिसेषी। निपट बिकल नरनायक देखी॥
थोरिहि बात पितहि दुख भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी॥
राउ धीर गुन उदधि अगाधू। भा मोहि तें कछु बड अपराधू॥
तातें मोहि न कहत कछु राऊ। मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ॥
दो०–सहज सरल रघुबर बचन, कुमति कुटिल करि जान।
चलइ जोंक ज्यों बक्र गति, जद्यपि सलिल समान॥४३॥

रहसी रानि रामरुख पाई। बोली कपटसनेह जनाई॥
सपथ तुम्हार भरत कइ आना। हेतु न दूसर मैं कछु जाना॥
तुम्ह अपराध जोग नहिं ताता। जननी जनक बन्धु सुखदाता॥
राम सत्य सब जो कछु कहहू। तुम पितु मातु बचन रत अहहू॥
पितहिं बुझाइ कहहु बलि सोई। चौथेपन जेहि अजसु न होई॥
तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहि दीन्हे। उचित न तासु निरादर कीन्हे॥
लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे। मगह गयादिक तीरथ जैसे॥
रामहिं मातुवचन सब भाए। जिमि सुरसरिगत सलिल सुहाये॥

दो०–गइ मुरछा रामहिं सुमिरि, नृप फिरि करवट लीन्ह।
सचिव राम आगमन कहि, बिनय समयसम कीन्ह ॥४४॥

अवनिप अकनि राम पगु धारे। धरि धीरज तब नयन उघारे॥
सचिव सँभारि राउ बैठारे। चरन परत नृप राम निहारे॥
लिये सनेह बिकल उर लाई। गइ मनि मनहुँ फनिक फिरि पाई॥
रामहिं चितइ रहेउ नरनाहू। चला बिलोचन बारिप्रबाहू॥
सोकबिबस कछु कहइ न पारा। हृदय लगावत बारहिंबारा॥
बिधिहि मनाव राउ मनमाहीं। जेहि रघुनाथ न कानन जाहीं॥
सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी। बिनती सुनहु सदासिव मोरी॥
आसुतोष तुम अवढर दानी। आरति हरहु दीनजन जानी॥

दो०–तुम्ह प्रेरक सब के हृदय, सो मति रामहिं देहु।
बचन मोर तजि रहहिं घर, परिहरि सील सनेहु ॥४५॥

अजस होउ जग सुजस नसाऊ। नरक परउँ बरु सुरपुर जाऊ॥
सब दुख दुसह सहावहु मोही। लोचन ओट राम जनि होहीं॥
अस मन गुनइ राउ नहिं बोला। पीपर पात-सरिस मन डोला॥
रघुपति पितहि प्रेम बस जानी। पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी॥
देस काल अवसर अनुसारी। बोले बचन बिनीत बिचारी॥
तात कहउँ कछु करउँ ढिठाई। अनुचित छमब जानि लरिकाई॥
अति लघु बात लागि दुख पावा। काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा॥

देखि गोसाइहि पूछिउँ माता। सुनि प्रसग भये सीतल गाता॥

दो०-मगल समय सनेह बस, सोच परिहरिय तात।
आयसु देइय हरपि हिय, कहि पुलके प्रभुगात॥४६॥

धन्य जनम जगतीतल तासू। पितहि प्रमोद चरित सुनि जासू॥
चारि पदारथ करतल ता के। प्रिय पितु मातु प्रान सम जा के॥
आयसु पालि जनम फल पाई। ऐहउँ बेगिहि होउ रजाई॥
बिदा मातु सन आवउँ माँगी। चलिहउँ बनहि बहुरि पग लागी॥
अस कहि राम गवन तब कीन्हा। भूप सोकबस उतरु न दीन्हा॥
नगर व्यापि गई बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी॥
सुनि भए बिकल सकल नर नारी। बेलि बिटप जिमि देखि दवारी॥
जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई। बड बिपाद नहि धीरज होई॥

दो०-मुख सुखाहि लोचन स्रवहि, सोक न हृदय समाइ।
मनहुँ करुन-रस कटकई, उतरी अवध बजाइ॥४७॥

मिलहि माँझ बिधि बात बिगारी। जहँ तहँ देहिं कैकइहि गारी॥
एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावक धरेऊ॥
निजकर नयन काढि चह दीखा। डारि सुधा बिष चाहत चीखा॥
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघु बस बेनु-बन आगी॥
पालव बैठि पेडु एइ काटा। सुख महँ सोक ठाटु धरि ठाटा॥
सदा राम एहि प्रान समाना। कारन कवन कुटिलपनु ठाना॥
सत्य कहहि कबि नारिसुभाऊ। सब बिधि अगम अगाध दुराऊ॥
निज प्रतिबिम्ब बरुक गहि जाई। जानि न जाइ नारि गति भाई॥

दो०-काह न पावक जारि सक, का न समुद्र समाइ।
का न करइ अबला प्रबल, केहि जग काल न खाइ॥४८॥

का सुनाइ बिधि काह सुनावा। का देखाइ चह काह देखावा॥
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा। बर बिचारि नहिं कुमतिहि दीन्हा॥

जो हठि भयउ सकल दुखभाजनु। अबला बिबस ज्ञान गुन गा जनु॥
एक धरमपरिमित पहिचाने। नृपहि दोष नहिं देहिं सयाने॥
सिबि-दधीच-हरिचन्द-कहानी। एक एक सन कहहिं बखानी॥
एक भरत कर समत कहहीं। एक उदास भाय सुनि रहहीं॥
कान मूँदि कर रद गहि जीहा। एक कहहिं यह बात अलीहा॥
सुकृत जाहिं अस कहत तुम्हारे। राम भरत कहँ प्रान पियारे॥

दो०–चन्द चुवै बरु अनलकन, सुधा होइ बिष तूल।
सपनेहुँ कबहुँ न करहिं कछु, भरत रामप्रतिकूल॥४६॥

एक बिधातहि दूषन देहीं। सुधा देखाइ दीन्ह बिषु जेहीं॥
खरभरु नगर सोच सब काहू। दुसह दाह उर मिटा उछाहू॥
बिप्रबधू कुलमान्य जठेरी। जे प्रिय परम कैकई केरी॥
लगीं देन सिख सील सराही। बचन बान सम लागहिं ताही॥
भरत न मोहि प्रिय राम समाना। सदा कहहु यह सब जग जाना॥
करहु राम पर सहज सनेहू। केहि अपराध आजु बन देहू॥
कबहुँ न कियहु सवति आरेसू। प्रीति प्रतीति जान सब देसू॥
कौसल्या अब काह बिगारा। तुम जेहि लागि बज्रपुर पारा॥

दो०–सीय कि पिय सँग परिहरिहि, लषन कि रहिहहिं धाम।
राजु कि भूँजब भरत पुर, नृपु कि जिइहि बिनु राम॥५०॥

अस बिचारि उर छाडहु कोहू। सोक कलक कोटि जनि होहू॥
भरतहि अवसि देहु जुवराजू। कानन काह राम कर काजू॥
नाहिन राम राज कर भूखे। धरमधुरीन बिषयरस रूखे॥
गुरुगृह बसहिं राम तजि गेहू। नृप सन अस बर दूसर लेहू॥
जौं नहिं लगिहहु कहे हमारे। नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारे॥
जौं परिहास कीन्ह कछु होई। तौ कहि प्रगट जनावहु सोई॥
राम-सरिस-सुत कानन जोगू। काह कहहि सुनि तुम कहँ लोगू॥
उठहु बेगि सोइ करहु उपाई। जेहि बिधि सोक कलक नसाई॥

छं०-जेहि भाँति सोक कलंक जाय उपाय करि कुल पालही।
हठि फेरु रामहि जात बन जनि बात दूसरि चालही।
जिमि भानु बिन दिन प्रान बिन तन चंद बिन जिमि जामिनी,
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनसमुझि धौं जिय भामिनी ॥

सो०-सखिन्ह सिखावन दीन्ह, सुनत मधुर परिनाम हित।
तेइ कछु कान न कीन्ह, कुटिल प्रबोधी कूबरी ॥४१॥

उतर न देइ दुसह रिस रूखी। मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी॥
ब्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी। चलीं कहति मति मंद अभागी॥
राज करत यहि दैव निगोई। कीन्हेसि अस जस करइ न कोई॥
एहि बिधि बिलपहिं पुर नर नारी। देहिं कुचालिहि कोटिक गारी॥
जरहिं बिषम ज्वर लेहिं उसासा। कवनि राम बिनु जीवन आसा॥
बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी। जनु जलचर गन सूखत पानी॥
अति बिषाद बस लोग लोगाई। गए मातु पहँ राम गोसाई॥
मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ। मिटा सोच जनि राखइ राऊ॥

सो०-नव गयंद रघुबीर मन, राजु अलान समान।
छूट जानि बन गवन सुनि, उर अनंद अधिकान ॥४२॥

रघुकुल तिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातुपद नाएउ माथा॥
दीन्ह असीस लाइ उर लीन्हे। भूषन बसन निछावरि कीन्हे॥
बार बार मुख चुम्बति माता। नयन नेहजल पुलकित गाता॥
गोद राखि पुनि हृदय लगाये। स्रवत प्रेम रस पयद सुहाये॥
प्रेम प्रमोद न कछु कहि जाई। रंक धनद पदवी जनु पाई॥
सादर सुंदर बदन निहारी। बोली मधुर बचन महतारी॥
कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिं लगन मुद-मंगल-कारी॥
सुकृत सील सुख सींव सुहाई। जनम-लाभ कइ अवधि अघाई॥

सो०-जेहि चाहत नरनारि सब, अति आरत एहि भाँति।
जिमि चातक चातकि तृषित, बृष्टि सरदरितु स्वाति ॥४३॥

तात जाउँ बलि बेगि नहाहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू॥
पितु समीप तब जायहु भैया। भइ बडि बार जाइ बलि मैया॥
मातु वचन सुनि अति अनुकूला। जनु सनेह सुर तरु के फूला॥
सुख मकरंद भरे स्रिय मूला। निरखि राम-मन भँवर न भूला॥
धरम धुरीन धरम गति जानी। कहेउ मातु सन अति मृदुबानी॥
पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड काजू॥
आयसु देहु मुदित मन माता। जेहि मुद मंगल कानन जाता॥
जनि सनेह बस डरपसि भोरे। आनँद अंबु अनुग्रह तोरे॥

दो०-बरस चारिदस बिपिन बसि, करि पितु बचन प्रमान।
आइ पाँय पुनि देखिहउँ, मन जनि करसि मलान॥५४॥

बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातु उर करके॥
सहमि सूखि सुनि सीतल बानी। जिमि जवास परे पावस पानी॥
कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू॥
नयन सजल तन थर थर कापी। माँजहि खाइ मीन जनु माँपी॥
धरि धीरज सुत बदन निहारी। गदगद बचन कहति महतारी॥
तात पितहि तुम प्रान पियारे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे॥
राज देन कहँ सुभ दिन साधा। कहेउ जान बन केहि अपराधा॥
तात सुनावहु मोहि निदानू। को दिनकर कुल भएउ कृसानू॥

दो०-निरखि रामरुख सचिव सुत, कारन कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसंग रहि मूक जिमि, दसा बरनि नहिं जाइ॥५५॥

राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहु भाँति उर दारुन दाहू॥
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधिगति बाम सदा सब काहू॥
धरम सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छछुदरि केरी॥
राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू। धरम जाय अरु बंधु बिरोधू॥
कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी। संकट सोच बिबस भइ रानी॥
बहुरि समुझि तिय धरम सयानी। राम भरत दोउ सुत सम जानी॥

सरल सुभाउ राममहतारी। बोली बचन धीर धरि भारी॥
तात जाउँ बलि कीन्हेउ नीका। पितुआयसु सब धरम क टीका॥
दो०-राजदेन कह दीन्ह बन, मोहि न सो दुख लेस।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि, प्रजहि प्रचड कलेस॥५६॥

जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बडि माता॥
जौं पितुमातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥
पितु बनदेव मातु बनदेवी। खग मृग चरन सरोरुह सेवी॥
अतहु उचित नृपहि बनबासू। बय बिलोकि हिय होइ हरासू॥
बडभागी बन अवध अभागी। जो रघुबस तिलक तुम्ह त्यागी॥
जौं सुत कहउं सग मोहि लेहू। तुम्हरे हृदय होय सदेहू॥
पूत परमप्रिय तुम सब ही के। प्रान प्रान के जीवन जी के॥
ते तुम्ह कहहु मातु बन जाऊ। मैं सुनि बचन बैठि पछिताऊ॥
दो०-यह बिचारि नहि करउँ हठ, झूठ सनेह बढाइ।
मानि मातु करि नात बलि, सुरति बिसरि जनि जाइ॥५७॥

देव पितर सब तुम्हहि गोसाई। राखहु नयनपलक की नाई॥
अवधि अबु प्रियपरिजन मीना। तुम करुनाकर धरमधुरीना॥
अस बिचारि सोइ करहु उपाई। सबहिं जिअत जेहि भेंटहु आई॥
जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ। करि अनाथ जन परिजन गाऊँ॥
सब कर आजु सुकृत फल बीता। भयेउ कराल-काल बिपरीता॥
बहुबिधि बिलपि चरन लपटानी। परम अभागिनि आपुहि जानी॥
दारुन दुसह दाह उर व्यापा। बरनि न जाइ बिलाप कलापा॥
राम उठाइ मातु उर लाई। कहि मृदु-बचन बहुरि समुझाई॥
दो०-समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु पद कमल जुग, बदि बैठि सिर नाइ॥५८॥

दीन्हि असीस सासु मृदुबानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी॥
बैठि नमित मुख सोचति सीता। रूप रासि पति प्रेम पुनीता॥

चलन चहत बन जीवननाथू । केहि सुकृती सन होइहि साथू ॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना । बिधि करतब कछु जाइ न जाना ॥
चारु चरननख लेखति धरनी । नूपुरमुखर मधुर कबि बरनी ॥
मनहुँ प्रेमबस बिनती करहीं । हमहिं सीयपद जनि परिहरहीं ॥
मंजु बिलोचन मोचति बारी । बोली देखि राम महतारी ॥
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी । सासु ससुर-परिजनहिं पियारी ॥

दो०-पिता जनक भूपालमनि, ससुर भानु कुल भानु ।
पति रबि कुल कैरव बिपिन, बिधु गुण रूप निधानु ॥५६॥

मैं पुनि पुत्र-बधू प्रिय पाई । रूप रासि गुन सील सुहाई ॥
नयन पुतरि करि प्रीति बढाई । राखउँ प्रान जानकिहि लाई ॥
कलपबेलि जिमि बहुबिधि लाली । सींचि सनेहसलिल प्रतिपाली ॥
फूलत फलत भयउ बिधि बामा । जानि न जाइ काह परिनामा ॥
पलँगपीठ तजि गोद हिंडोरा । सिय न दीन्ह पग अवनि कठोरा ॥
जिवनमूरि जिमि जुगवत रहऊँ । दीपबाति नहिं टारन कहऊँ ॥
सोइ सिय चलन चहत बन साथा । आयसु काह होइ रघुनाथा ॥
चंद किरन-रस रसिक चकोरी । रबि रुख नयन सकइ किमि जोरी ॥

दो -करि केहरि निसिचर चरहिं, दुष्ट जंतु बन भूरि ।
बिषबाटिका कि सोह सुत, सुभग सजीवनि-मूरि ॥६०॥

बनहित कोल किरात किसोरी । रची बिरंचि बिषय सुख भोरी ॥
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ । तिन्हहि कलेस न कानन काऊ ॥
कै तापस तिय कानन जोगू । जिन तप हेतु तजा सब भोगू ॥
सिय बन बसिहि तात केहि भाँती । चित्र लिखित कपि देखि डराती ॥
सुर सर सुभग बनज बन-चारी । डाबर जोग कि हंसकुमारी ॥
अस बिचारि जस आयसु होई । मैं सिख देउँ जानकिहि सोई ॥
जौं सिय भवन रहइ कह अम्बा । मोहि कहँ होइ बहुत अवलम्बा ॥
सुनि रघुबीर मातु प्रिय बानी । सील सनेह सुधा जनु सानी ॥

दो०-कहि प्रियवचन विवेकमय, कीन्ह मातुपरितोष ।
लगे प्रबोधन जानकिहि, प्रगटि बिपिन गुन दोष ॥६१॥

मातु समीप कहत सकुचाहीं । बोले समउ समुझि मन माँहीं ॥
राजकुमारि सिखावन सुनहू । आन भाँति जिय जनि कछु गुनहू ॥
आपन मोर नीक जौं चहहू । बचन हमार मानि गृह रहहू ॥
आयसु मोरि सासु सेवकाई । सब बिधि भामिनि भवन भलाई ॥
एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा । सादर सासु-ससुर पद पूजा ॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी । होइहि प्रेमबिकल मतिभोरी ॥
तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी । सुन्दरि समुझायेहु मृदुबानी ॥
कहउँ सुभाय सपथ सत मोही । सुमुखि मातुहित राखउँ तोही ॥

दो०-गुरु स्रुति समत धरमफल, पाइअ बिनहिं कलेस ।
हठबस सब सकट सहे, गालव नहुष नरेस ॥६२॥

मैं पुनि करि प्रमान पितु बानी । बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी ॥
दिवस जात नहिं लागिहि बारा । सुन्दरि सिखवन सुनहु हमारा ॥
जौं हठ करहु प्रेमबस बामा । तौ तुम्ह दुख पाउब परिनामा ॥
कानन कठिन भयकर भारी । घोर घाम हिम बारि बयारी ॥
कुसकटक मग काँकर नाना । चलब पयादेहि बिनु पदत्राना ॥
चरनकमल मृदु मजु तुम्हारे । मारग अगम भूमिधर भारे ॥
कदर खोह नदी नद नारे । अगम अगाध न जाहिं निहारे ॥
भालु बाघ बृक केहरि नागा । करहिं नाद सुनि धीरज भागा ॥

दो०-भूमिसयन बलकलबसन असन कद फल मूल ।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं समय समय अनुकूल ॥६३॥

नर अहार रजनीचर करहीं । कपटबेष बिधि कोटिक धरहीं ॥
लागइ अति पहार कर पानी । बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी ॥
ब्याल कराल बिहँग बन घोरा । निसिचर निकर नारि नरचोरा ॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आये । मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाये ।

मृगनयनि तुम्ह नहिं बनजोगू। सुनि अपजसु मोहिं देइहि लोगू॥
मानस-सलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवनपयोधि मराली॥
नव रसाल बन बिहरनसीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला॥
रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चंदबदनि दुख कानन भारी॥

दो०-सहज सुहृद गुर स्वामि सिख, जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हितहानि॥६४॥

सुनि मृदुबचन मनोहर पियके। लोचन ललित भरे जल सियके॥
सीतल सिख दाहक भइ कैसे। चकइहि सरद चन्द निसि जैसे॥
उतर न आव बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही॥
बरबस रोकि बिलोचनबारी। धरि धीरज उर अवनिकुमारी॥
लागि सासुपद कह कर जोरी। छमबि देबि बडि अबिनय मोरी॥
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परमहित होई॥
मैं पुनि समुझि दीख मन माहीं। पिय बियोग सम दुख जग नाहीं॥

दो०-प्राननाथ करुनायतन, सुन्दर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु, सुरपुर नरक समान॥६५॥

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवार सुहृद समुदाई॥
सासु ससुर गुर सजन सहाई। सुत सुन्दर सुसील सुखदाई॥
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनि ते ताते॥
तन धन धाम धरनि पुरराजू। पतिबिहीन सब सोकसमाजू॥
भोग रोगसम भूषन भारू। जम-जातना सरिस संसारू॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥
जिअ बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद बिमल बिधु बदनु निहारे॥

दो०-खग मृग परिजन नगर बन, बलकल बिमल दुकूल।
नाथ साथ सुर सदन सम, परनसाल सुखमूल॥६६॥

वनदेवी वनदेव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा॥
कुस किसलय-साथरी सुहाई। प्रभु सँग मंजु मनोजतुराई॥
कन्द मूल फल अमिय अहारू। अवध सौध सत सरिस पहारू॥
छिनुछिनु प्रभु पद-कमल बिलोकी। रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी॥
वन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥
प्रभु बियोग-लव लेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥
अस जियजानि सुजान सिरोमनि। लेइय सग मोहि छाड़िय जनि॥
बिनती बहुत करउँ का स्वामी। करुनामय उर अन्तरजामी॥

दो०–राखिय अवध जो अवधि लगि, रहत जानिअहि प्रान।
दीनबन्धु सुन्दर सुखद, सील-सनेह निधान॥६७॥

मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरनसरोज निहारी॥
सबहि भाँति पिय सेवा करिहउँ। मारगजनित सकल स्रम हरिहउँ॥
पाँय पखारि बैठि तरुछाहीं। करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं॥
स्रम कन सहित स्याम तनु देखे। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखे॥
सम महि तृन-तरु-पल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी॥
बार बार मृदु मूरति जोही। लागिहि ताति बयारि न मोही॥
को प्रभुसँग मोहि चितवनिहारा। सिंहबधुहि जिमि ससक सियारा॥
मैं सुकुमारि नाथ बनजोगू। तुम्हहिं उचित तप मो कहँ भोगू॥

दो०–ऐसेउ बचन कठोर सुनि, जौं न हृदय बिलगान।
तौ प्रभु बिषम बियोग दुख, सहिहहिं पामर प्रान॥६८॥

अस कहि सीय बिकल भइ भारी। बचन बियोग न सकी सँभारी॥
देखि दसा रघुपति जिय जाना। हठि राखे नहिं राखिहि प्राना॥
कहेउ कृपाल भानु कुल-नाथा। परिहरि सोच चलहु बन साथा॥
नहिं बिषाद कर अवसर आजू। बेगि करहु बन-गवन-समाजू॥
कहि प्रियबचन प्रिया समुझाई। लगे मातुपद आसिष पाई॥
बेगि प्रजादुख मेटब आई। जननी निठुर बिसरि जनि जाई॥

फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी। देखिउँ नयन मनोहर जोरी॥
सुघरी सुदिन तात कब होइहि। जननी जिअत बदनबिधु जोइहि॥
दो०—बहुरि बच्छ कहि लाल कहि, रघुपति रघुबर तात।
कबहि बोलाइ लगाइ हिय, हरषि निरखिहउँ गात॥६६॥
लखि सनेहकातर महतारी। बचन न आव बिकल भइ भारी॥
राम प्रबोध कीन्ह बिधि नाना। समउ सनेह न जाइ बखाना॥
तब जानकी सासुपग लागी। सुनिय माय मैं परम अभागी॥
सेवा समय दैव बन दीन्हा। मोर मनोरथ सफल न कीन्हा॥
तजब छोभ जनि छाडिय छोहू। करम कठिन कछु दोष न मोहू॥
सुनि सियबचन सासु अकुलानी। दसा कवनि बिधि कहौं बखानी॥
बारहिं बार लाइ उर लीन्ही। धरि धीरज सिख आसिष दीन्ही॥
अचल होउ अहिवात तुम्हारा। जब लगि गंग-जमुन जल धारा॥
सो०—सीतहि सासु असीस सिख, दीन्ह अनेक प्रकार।
चली नाइ पद पदुम सिर, अतिहित बारहिं बार॥७०॥
समाचार जब लछिमन पाये। ब्याकुल बिलख बदन उठिधाये॥
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अतिप्रेम अधीरा॥
कहि न सकत कछु चितवत ठाढे। मीन दीन जनु जल ते काढे॥
सोच हृदय बिधि का होनिहारा। सब सुख सुकृत सिरान हमारा॥
मो कहँ काह कहब रघुनाथा। रखिहहिं भवन कि लेइहिं साथा॥
राम बिलोकि बंधु करजोरे। देह गेह सब सन तृन तोरे॥
बोले बचन राम नयनागर। सील सनेह सरल सुख सागर॥
तात प्रेमबस जनि कदराहू। समुझि हृदय परिनाम उछाहू॥
दो०—मातु पिता-गुरु-स्वामि सिख, सिर धरि करहिं सुभाय।
लहेउ लाभ तिन्ह जनम कर, नतरु जनम जग जाय॥७१॥
अस जिय जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु पितु पद-सेवकाई॥
भवन भरत रिपुसूदनु नाहीं। राउ बृद्ध मम दुख मन माहीं॥

मैं बन जाउँ तुम्हहि लेइ साथा। होइ सबहि बिधि अवध अनाथा॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहँ परइ दुसह दुख भारू॥
रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरु तात होइहि बड दोषू॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥
रहहु तात असि नीति बिचारी। सुनत लषन भये व्याकुल भारी॥
सिअरे बचन सूखि गये कैसे। परसत तुहिन तामरस जैसे॥
दो०-उतर न आवत प्रेमबस, गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दास मैं स्वामि तुम्ह, तजहु त कहा बसाइ।७२॥
दीन्हि मोहि सिख नीक गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराईं॥
नरबर धीर धरम धुर धारी। निगम नीति कहँ ते अधिकारी॥
मैं सिसु प्रभु-सनेह प्रतिपाला। मंदर मेरु कि लेहिं मराला॥
गुरु पितु मातु न जानौं काहू। कहौं सुभाउ नाथ पतिआहू॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीतिप्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरे सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर-अन्तरजामी॥
धरम नीति उपदेसिय ताही। कीरति-भूति-सुगति प्रिय जाही॥
मन क्रम बचन चरनरत होई। कृपासिंधु परिहरिय कि सोई॥
दो०-करुनासिंधु सुबंधु के, सुनि मृदुबचन बिनीत।
समुझाए उर लाइ प्रभु, जानि सनेह सभीत॥७३॥
माँगहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई॥
मुदित भये सुनि रघुबर बानी। भयेउ लाभ बड गइ बडि हानी॥
हरषित हृदय मातु पहिं आए। मनहुँ अंध फिरि लोचन पाए॥
जाइ जननि पग नायेउ माथा। मन रघुनन्दन-जानकि साथा॥
पूछे मातु मलिन मुख देखी। लषन कही सब कथा बिसेखी॥
गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहुँ ओरा॥
लषन लखेउ भा अनरथ आजू। एहि सनेह बस करब अकाजू॥
माँगत बिदा सभय सकुचाहीं। जाइ संग बिधि कहहि कि नाहीं॥

दो०—समुझि सुमित्रा राम सिय-रूप-सुसील-सुभाउ ।
नृपसनेह लखि धुनेउ सिर, पापिनि दीन्ह कुदाउ ॥७४॥

धीरज धरेउ कुअवसर जानी । सहज सुहृद बोली मृदुबानी ॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही । पिता राम सब भाँति सनेही ॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासू । तहँइ दिवस जहँ भानुप्रकासू ॥
जौं पै सीय राम बन जाहीं । अवध तुम्हार काज कछु नाहीं ॥
गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं । सेइयहि सकल प्रान की नाईं ॥
राम प्रानप्रिय जीवन जी के । स्वारथरहित सखा सबही के ॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते । सब मानियहि राम के नाते ॥
अस जिय जानि संग बन जाहू । लेहु तात जग जीवनलाहू ॥

दो०—भूरि भागभाजन भयेहु, मोहि समेत बलि जाउँ ।
जौं तुम्हरे मन छाडि छल, कीन्ह राम पद ठाउँ ॥७५॥

पुत्रवती जुवती जग सोई । रघुपति भगत जासु सुत होई ॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी । रामबिमुखसुत ते हित हानी ॥
तुम्हरेहि भाग राम बन जाहीं । दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥
सकल सुकृत कर बड फल एहू । राम सीय पद सहज सनेहू ॥
राग रोष इरषा मद मोहू । जनि सपनेहुँ इन्हके बस होहू ॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई । मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ॥
तुम्ह कहँ बन सब भाँति सुपासू । सँग पितु मातु रामसिय जासू ॥
जेहि न राम बन लहहिं कलेसू । सुत सोइ करहु इहइ उपदेसू ॥

छंद—उपदेस यह जेहि तात तुम्हरे, रामसिय सुख पावहीं ।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं ॥
तुलसी सुतहिं सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई ।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई ॥

सो०—मातु चरन सिर नाइ, चले तुरत संकित हृदय ।
बागुर बिषम तोराइ, मनहुँ भाग मृग भागबस ॥७६॥

गए लपन जहँ जानकिनाथू। भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू॥
वंदि राम सिय-चरन सुहाये। चले संग नृपमन्दिर आये॥
कहहिं परसपर पुर नर नारी। भलि बनाइ विधि बात बिगारी॥
तन कृस मन दुख बदन मलीने। बिकल मनहुँ माखी मधु छीने॥
कर मीजहिं सिर धुनि पछिताहीं। जनु बिन पंख बिहँग अकुलाहीं॥
भइ बड़ि भीर भूप दरबारा। बरनि न जाइ बिषाद अपारा॥
सचिव उठाइ राउ बैठारे। कहि प्रिय बचन राम पगु धारे॥
सियसमेत दोउ तनय निहारी। ब्याकुल भयेउ भूमिपति भारी॥

दो०–सीय सहित सुत सुभग दोउ, देखि देखि अकुलाइ।
बारहिं बार सनेह बस, राउ लेइ उर लाइ॥ [illegible]

सकइ न बोलि बिकल नरनाहू। सोकजनित उर दारुन दाहू॥
नाइ सीस पद अति अनुरागा। उठि रघुबीर बिदा तब [illegible]॥
पितु असीस आयसु मोहि दीजै। हरष समय बिसमय [illegible]॥
तात किए प्रिय प्रेमप्रमादू। जस जग जाइ होइ [illegible]॥
सुनि सनेहबस उठि नरनाहा। बैठारे रघुपति [illegible]॥
सुनहु तात तुम्ह कहँ मुनि कहहीं। राम [illegible]॥
सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईस देइ [illegible]॥
करइ जो करम पाव फल सोई। निगम [illegible]॥

दो०–अउर करइ अपराध कोउ, [illegible]।
अविबिचिन भगवतगति, [illegible]॥

राय रामराखन हित लागी। [illegible]॥
लखा रामरुख रहत न जाने। [illegible]॥
तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही। [illegible]॥
कहि बन के दुख दुसह सुनाए। [illegible]॥
सियमन रामचरन-अनुरागा। [illegible]॥
अउरउ सबहिं सीय समुझाई। [illegible]॥

सचिव नारि गुरुनारि सयानी। सहित सनेह कहहिं मृदुबानी॥
तुम्ह कहँ तौ न दीन्ह बनबासू। करहु जो कहहिं ससुर गुर सासू॥
दो०-सिख सीतल हित मधुर मृदु, सुनि सीतहि न सोहानि।
सरद-चंद चंदन लगत, जनु चकई अकुलानि॥७८॥
सीय सकुच बस उतर न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकेई॥
मुनि पट भूषन भाजन आनी। आगे धरि बोली मृदुबानी॥
नृपहि प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा। सील सनेह न छाडिहि भीरा॥
सुकृत सुजस परलोक नसाऊ। तुम्हहि जान बन कहिहि न काऊ॥
अस बिचारि सोइ करहु जो भावा। राम जननि सिख सुनि सुख पावा॥
भूपहि बचन बानसम लागे। करहिं न प्रान पयान अभागे॥
लोग बिकल मुरिछित नरनाहू। काह करिअ कछु सूझ न काहू॥
राम तुरत मुनिबेष बनाई। चले जनक जननी सिर नाई॥
दो०-सजि बन साज समाज सब, बनिता बंधु समेत।
बंदि बिप्र गुरु चरन प्रभु, चले करि सबहि अचेत॥८०॥
निकसि बसिष्ठ द्वार भए ठाढे। देखे लोग बिरह दव दाढे॥
कहि प्रिय बचन सकल समुझाये। बिप्रबृंद रघुबीर बोलाये॥
गुर सन कहि बरपासन दीन्हे। आदर दान बिनयबस कीन्हे॥
जाचक दान मान संतोषे। मीत पुनीत प्रेम परितोषे॥
दासी दास बोलाइ बहोरी। गुरहिं सौंपि बोले कर जोरी॥
सब कै सार सँभार गोसाईं। करबि जनक-जननी की नाईं॥
बारहिं बार जोरि जुगपानी। कहत राम सब सन मृदुबानी॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जेहि तें रहै भुआल सुखारी॥
दो०-मातु सकल मोरे बिरह, जेहि न होहिं दुख दीन।
सोइ उपाउ तुम्ह करेहु सब, पुरजन परमप्रबीन॥८१॥
एहि बिधि राम सबहि समुझावा। गुरु पद पदुम हरषि सिरु नावा॥
गनपति गौरि गिरीसु मनाई। चले असीस पाइ रघुराई॥

राम चलत अति भयउ विषादू। सुनि न जाइ पुर आरत नादू॥
कुसगुन लंक अवध अतिसोकू। हरष विषाद-विबस सुरलोकू॥
गइ मुरछा तब भूपति जागे। बोलि सुमन्त्र कहन अस लागे॥
राम चले वन प्रान न जाहीं। केहि सुख लागि रहत तन माहीं॥
एहि तें कवन व्यथा बलवाना। जो दुख पाइ तजहि तनु प्राना॥
पुनि धरि धीर कहइ नरनाहू। लेइ रथ संग सखा तुम्ह जाहू॥

दो०–सुठि सुकुमार कुमार दोउ, जनकसुता सुकुमारि।
रथ चढाइ देखराइ वन, फिरेहु गये दिन चारि॥८२॥

जौं नहि फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्यसंध दृढव्रत रघुराई॥
तौ तुम्ह बिनय करेहु कर जोरी। फेरिय प्रभु मिथिलेसकिसोरी॥
जब सिय कानन देखि डराई। कहेहु मोर सिख अवसरु पाई॥
सासु ससुर अस कहेउ संदेसू। पुत्रि फिरिय वन बहुत कलेसू॥
पितुगृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी। रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी॥
एहि विधि करेहु उपायकदंबा। फिरइ त होइ प्रान अवलंबा॥
नाहिं त मोर मरन परिनामा। कछु न बसाइ भये बिधि बामा॥
अस कहि मुरछि परा महिराऊ। राम लखन सिय आनि देखाऊ॥

दो०–पाइ रजायसु नाय सिरु, रथु अतिबेग बनाइ।
गयउ जहा बाहर नगर, सीयसहित दोउ भाइ॥८३॥

तब सुमन्त्र नृप बचन सुनाये। करि बिनती रथ राम चढाये॥
चढि रथ सीयसहित दोउ भाई। चले हृदय अवधहि सिरु नाई॥
चलत राम लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा॥
कृपासिंधु बहुबिधि समुझावहिं। फिरहिं प्रेमबस पुनि फिरिआवहिं॥
लागति अवध भयावनि भारी। मानहुँ कालराति अँधियारी॥
घोर जन्तुसम पुर नर नारी। डरपहिं एकहि एक निहारी॥
घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता॥
बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं॥

दो०-हय गय कोटिन्ह केलिमृग, पुरपसु चातक मोर।
पिक रथाग सुक सारिका, सारस हस चकोर ॥८४॥

रामवियोग विकल सब ठाढे। जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढे।
नगरु सफल वन गह्वर भारी। खग मृग विपुल सकल नरनारी॥
विधि कैकेई किरातिनि कीन्ही। जेहि दवदुसह दसहुँ दिसि दीन्ही॥
सहि न सके रघुवर विरहागी। चले लोग सब व्याकुल भागी॥
सबहिं विचारु कीन्ह मनमाहीं। राम लषन सिय बिनु सुख नाहीं॥
जहाँ राम तह सबुइ समाजू। बिनु रघुवीर अवध नहिं काजू॥
चले साथ अस मत्र दृढाई। सुरदुर्लभ सुखसदन बिहाई॥
राम-चरन पकज प्रिय जिन्हहीं। विषयभोग बस करहिं कि तिन्हहीं॥

दो०-बालक वृद्ध विहाय गृह, लगे लोग सब साथ।
तमसा तीर निवास किय, प्रथम दिवस रघुनाथ ॥८५॥

रघुपति प्रजा प्रेमवस देखी। सदय हृदय दुख भयउ बिसेखी
करुनामय रघुनाथ गोसाई। वेगि पाइअहि पीर पराई
कहि सप्रेम मृदुबचन सुहाये। बहुबिधि राम लोग समुझाये
किये धरम उपदेश घनेरे। लोग प्रेमबस फिरहिं न फेरे
सील सनेह छाडि नहिं जाई। असमजसबस भे रघुराई
लोग सोग-स्रम-बस गये सोई। कछुक देवमाया मति मोई
जबहिं जामजुग जामिनि बीती। राम सचिव सन कहेउ सप्रीती।
खोज मारि रथ हाँकहु ताता। आन उपाय बनिहि नहि बाता।

दो०-राम लषन सिय जानि चढि, सभुचरन सिरु नाइ।
सचिव चलायहु तुरत रथ, इत उत खोज दुराइ ॥८६॥

जागे सकल लोग भये भोरू। गे रघुनाथ भयउ अतिसोरू।
रथ कर खोज कतहुँ नहि पावहिं। राम राम कहि चहुँ दिसि धावहिं।
मनहुँ बारिनिधि बूड जहाजू। भयउ विकल बड बनिक समाजू।
एकहिं एक देहिं उपदेसू। तजे राम हम जानि कलेसू।

निंदहिं आपु सराहहिं मीना। धिग जीवन रघुबीर-बिहीना॥
जौं पै प्रियबियोग बिधि कीन्हा। तौ कस मरन न माँगे दीन्हा॥
एहि बिधि करत प्रलाप कलापा। आये अवध भरे परितापा॥
बिपमबियोग न जाइ बखाना। अवधिआस सब राखहिं प्राना॥

दो०–राम दरस हित नेम व्रत, लगे करन नरनारि।
मनहुँ कोक कोकी कमल, दीन बिहीन तमारि॥८७॥

सीता सचिव सहित दोउ भाई। सृङ्गबेरपुर पहुँचे जाई॥
उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दण्डवत हरष बिसेखी॥
लषन सचिव सिय किये प्रनामा। सबहिं सहित सुख पायउ रामा॥
गंग सकल मुद मंगल-मूला। सब सुखकरनि हरनि सब सूला॥
कहि कहि कोटिक कथाप्रसंगा। राम बिलोकहिं गंगतरंगा॥
सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई। बिबुध-नदी महिमा अधिकाई॥
मज्जन कीन्ह पंथस्रम गयऊ। सुचिजल पियत मुदित मन भयऊ॥
सुमिरत जाहि मिटइ स्रमभारू। तेहि स्रम यह लौकिकब्यवहारू॥

दो०–सुद्ध सच्चिदानन्दमय, कन्द भानु-कुल केतु।
चरित करत नर अनुहरत, संसृति-सागर-सेतु॥८८॥

यह सुधि गुह निषाद जब पाई। मुदित लिए प्रिय बन्धु बोलाई॥
लिय फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हिय हरष अपारा॥
करि दण्डवत भेंट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागे॥
सहज सनेह बिबस रघुराई। पूछी कुसल निकट बैठाई॥
नाथ कुसल पदपंकज देखे। भयउँ भागभाजन जन लेखे॥
देव धरनि धन धाम तुम्हारा। मैं जन नीच सहित परिवारा॥
कृपा करिय पुर धारिय पाऊ। थापिय जन सब लोग सिहाऊ॥
कहेहु सत्य सब सखा सुजाना। मोहि दीन्ह पितु आयसु आना॥

दो०–बरष चारिदस बास बन, मुनि व्रत-बेष अहारु।
ग्रामबास नहिं उचित सुनि, गुहहि भयउ दुखभारु॥८९॥

राम लषन सिय-रूप निहारी। कहहिं सप्रेम ग्राम नर नारी॥
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन पठये वन बालक ऐसे॥
एक कहहिं भल भूपति कीन्हा। लोयनलाहु हमहि विधि दीन्हा॥
तब निपादपति उर अनुमाना। तरु सिंसुपा मनोहर जाना॥
लेइ रघुनाथहिं ठाउँ देखावा। कहेउ राम सब भाँति सुहावा॥
पुरजन करि जोहारु घर आये। रघुवर सध्या करन सिधाये॥
गुह सवाँरि साथरी डसाई। कुस किसलय मय मृदुल सुहाई॥
सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी। दोना भरि भरि राखेसि आनी॥

दो०-सिय-सुमत्र भ्राता-सहित, कद मूल फल खाइ।
सयन कीन्ह रघु बस मनि, पाय पलोटत भाइ॥९०॥

उठे लषण प्रभु सोवत जानी। कहि सचिवहि सोवन मृदुबानी॥
कछुक दूरि सजि बानसरासन। जागन लगे बैठि बीरासन॥
गुह बोलाइ पाहरू प्रतीती। ठावँ ठावँ राखे अति प्रीती॥
आपु लषन पहिं बैठेउ जाई। कटि भाथा सर चाप चढाई॥
सोवत प्रभुहि निहारि निषादू। भयउ प्रेमवस हृदय विषादू॥
तनु पुलकित जल लोचन बहई। बचन सप्रेम लषन सन कहई॥
भू पति भवन सुभाय सुहावा। सुर पति-सदन न पटतर पावा॥
मनि मय रचित चारु चौबारे। जनु रतिपति निजहाथ सवाँरे॥

दो०-सुचि सुबिचित्र सु-भोग-मय, सुमन सुगध सुबास।
पलँग मजु मनिदीप जहँ, सब निधि सकल सुपास॥९१॥

बिबिध बसन उपधान तुराई। छीरफेन मृदु बिसद सुहाई॥
तहँ सियराम सयन निसि करहीं। निज छवि रति-मनोज मदहरहीं॥
ते सियराम साथरी सोये। स्रमित बसन बिनु जाहिं न जोये॥
मात पिता परिजन पुरवासी। सखा सुसील दास अरु दासी॥
जोगवहिं जिन्हहिं प्रान की नाईं। महि सोवत तेइ राम गोसाईं॥
पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ। ससुर सुरेससखा रघुराऊ॥

रामचन्द्र पति सो बैदेही। सोवत महि विधि बाम न केही॥
सिय रघुबीर कि कानन जोगू। करम प्रधान सत्य कह लोगू॥
दो०-कैकयनन्दिनि मन्दमति, कठिन कुटिलपन कीन्ह।
जेहि रघुनन्दन जानकिहिं, सुखअवसर दुखदीन्ह॥९२॥

भइ दिन-कर-कुल बिटप-कुठारी। कुमति कीन्ह सब बिस्व दुखारी॥
भयउ बिषाद निषादहि भारी। रामसीय महिसयन निहारी॥
बोले लषन मधुर-मृदु-बानी। ज्ञान बिराग भगति रस सानी॥
काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निजकृत करम भोग सब भ्राता॥
जोग बियोग भोग भलमंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा॥
जनम मरन जहँ लगि जगजालू। संपति बिपति करम अरु कालू॥
धरनि धाम धन पुर परिवारू। सरग नरक जहँ लगि ब्यवहारू॥
देखिय सुनिय गुनिय मन माहीं। मोह मूल परमारथ नाहीं॥
दो०-सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ॥९३॥

अस बिचारि नहि कीजिय रोषू। काहुहि बादि न देइय दोषू॥
मोहनिसा सब सोवनिहारा। देखिय सपन अनेक प्रकारा॥
एहि जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंचबियोगी॥
जानिय तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥
होइ बिबेक मोहभ्रम भागा। तब रघु-नाथ चरन अनुरागा॥
सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम बचन रामपद नेहू॥
राम ब्रह्म परमारथरूपा। अबिगत अलख अनादि अनूपा॥
सकल-बिकार रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहि बेदा॥
दो०-भरत भूमि भूसुर सुरभि, सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तन, सुनत मिटहि जगजाल॥९४॥

सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय-रघुबीर चरन रत होहू॥
कहत रामगुन भा भिनुसारा। जागे जगमंगलदातारा॥

सकल सौच करि राम नहावा। सुचि सुजान बटछीर मँगावा॥
अनुजसहित सिर जटा बनाये। देखि सुमन्त्र नयन जल छाये॥
हृदय दाह अति बदन मलीना। कह कर जोर बचन अति दीना॥
नाथ कहेउ अस कोसलनाथा। लेइ रथ जाहु राम के साथा॥
बन देखाइ सुरसरि अन्हवाई। आनेहु फेरि बेगि दोउ भाई॥
लषन राम सिय आनेहु फेरी। ससय सकल सँकोच निबेरी॥

दो०-नृप अस कहेउ गोसाइँ जस, कहिय करउँ चलि सोइ।
करि बिनती पायन्ह परेउ, दीन्ह बाल जिमि रोइ॥९५॥

तात कृपा करि कीजिय सोई। जा तें अवध अनाथ न होई॥
मन्त्रिहि राम उठाइ प्रबोधा। तात धरममत तुम्ह सब सोधा॥
सिबि दधीचि हरिचंद नरेसा। सहे धरमहित कोटि कलेसा॥
तिदेव बलि भूप सुजाना। धरम धरेउ सहि सकट नाना॥
धरम न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना॥
मैं सोइ धरम सुलभ करि पावा। तजे तिहूँ पुर अपजसु छावा॥
सभावित कहँ अपजसलाहू। मरन कोटि-सम दारुन दाहू॥
तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ। दिये उतरु फिरि पातक लहऊँ॥

दो०-पितुपद गहि कहि कोटि नति, बिनय करब कर जोरि।
चिंता कवनिहुँ बात कै, तात करिय जनि मोरि॥९६॥

तुम्ह पुनि पितु सम अतिहित मोरे। बिनती करउँ तात कर जोरे॥
सबबिधि सोइ करतब्य तुम्हारे। दुख न पाव पितु सोच हमारे॥
सुनि रघुनाथ सचिव सवादू। भयउ सपरिजन बिकल निषादू॥
पुनि कछु लषन कही कटुबानी। प्रभु बरजेउ बड अनुचित जानी॥
सकुचि राम निजसपथ देवाई। लषन सँदेसु कहिय जनि जाई॥
कह सुमन्त्र पुनि भूप सँदेसू। सहि न सकिहि सियबिपिन कलेसू॥
जेहि बिधि अवध आव फिरि सीया। सोइ रघुबरहिँ तुम्हहिँ करनीया॥
नतरु निपट अवलंबबिहीना। मैं न जियब जिमि जल बिनु मीना॥

दो०-मइके ससुरे सकलसुख, जबहिं जहाँ मन मान।
तहँ तब रहिहि सुखेन सिय, जब लग बिपत बिहान ॥९७॥

बिनती भूप कीन्ह जेहि भाँती। आरति प्रीति न सो कहि जाती॥
पितुसँदेस सुनि कृपानिधाना। सियहि दीन्ह सिख कोटि बिधाना॥
सासु ससुर गुरु प्रिय परिवारू। फिरहु त सब कर मिटइ खँभारू॥
सुनि पतिबचन कहति बैदेही। सुनहु प्रानपति परमसनेही॥
प्रभु करुनामय परमबिबेकी। तनु तजि रहित छाँह किमि छेंकी॥
प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चन्द्रिका चद तजि जाई॥
पतिहि प्रेममय बिनय सुनाई। कहति सचिव सन गिरा सुहाई॥
तुम्ह पितु ससुर सरिस हितकारी। उतरु देउँ फिरि अनुचित भारी॥

दो०-आरतिबस सनमुख भइउँ, बिलगु न मानब तात।
आरज-सुत पद कमल बिनु, बादि जहाँ लगि नात ॥९८॥

पितु बैभव बिलास मैं डीठा। नृप मनि मुकुट मिलत पद पीठा॥
सुखनिधान अस पितुगृह मोरे। पियबिहीन मन भाव न भोरे॥
ससुर चक्कवइ कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥
आगे होइ जेहि सुरपति लेई। अरध सिंहासन आसन देई॥
ससुर एतादृस अवधनिवासू। प्रिय परिवारु मातुसम सासू॥
बिनु रघुपति पद पदुम परागा। मोहि कोउ सपनेहु सुखद न लागा॥
अगम पथ बन भूमि पहारा। करि केहरि सर सरित अपारा॥
कोल किरात कुरंग बिहंगा। मोहि सब सुखद प्रान पति-संगा॥

दो०-सासु ससुर सन मोरि हुति, बिनय करब परि पाय।
मोरि सोच जनि करिय कछु, मैं बन सुखी सुभाय ॥९९॥

प्राननाथ प्रियदेवर साथा। धीर धुरीन धरे धनु भाथा॥
नहिं मग स्रम भ्रम दुख मन मोरे। मोहि लगि सोच करिय जनि भोरे॥
सुनि सुमंत्र सिय सीतलबानी। भयउ बिकल जनु फनि मनिहानी॥
नयन सूझ नहिं सुनइ न काना। कहि न सकइ कछु अति अकुलाना॥

राम प्रबोध कीन्ह बहुभाँती। तदपि होत नहि सीतल छाती॥
जतन अनेक साथहित कीन्हे। उचित उतर रघुनन्दन दीन्हे॥
मेटि जाइ नहि रामरजाई। कठिन करमगति कछु न बसाई॥
राम लपन सिय पद सिर नाई। फिरेउ बनिक जिमि मूर गवाँई॥

दो०–रथ हाँकेउ हय रामतन, हेरि हेरि हिहिनाहिं।
हेरि निषाद बियाग्बस, धुनहि सीस पछिताहिं॥१००॥

जासु बियोग बिकल पसु ऐसे। प्रजा मातु पितु जीहहिं कैसे॥
बरबस राम सुमंत्र पठाये। सुरसरितीर आप तब आये॥
माँगी नाव न केवट आना। कहइ तुम्हार मरम मैं जाना॥
चरण-कमल-रज कहँ सब कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई॥
तरनिउँ मुनिघरनी होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई॥
एहि प्रतिपालउँ सब परिवारू। नहिं जानउँ कछु अउर कबारू॥
जौ प्रभु पार अवसि गा चहहू। तौ पदपदुम पखारन कहहू॥

छंद–पदपदम धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहउँ।
मोहि राम राउर आन दसरथसपथ सब साँची कहउँ॥
बरु तीर मारहु लपन पै जब लगि न पाय पखारिहउँ।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पार उतारिहउँ॥

सो०–सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुना ऐन, चितइ जानकी-लपन-तन॥१०१॥

कृपासिंधु बोले मुसकाई। सोइ करु जेहि तव नाव न जाई॥
बेगि आनु जल पाय पखारू। होत बिलंब उतारहि पारू॥
जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा॥
सोइ कृपाल केवटहि निहोरा। जेहि जग किय तिहुँ पगहुँ ते थोरा॥
पदनख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभुबचन मोह मति करषी॥
केवट रामरजायसु पावा। पानि कठवता भरि लेइ आवा॥

अति आनद उमग अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्य पुंज कोउ नाहीं॥
दो०-पद पखारि जलपान करि, आप सहित परिवार।
पितर पार करि प्रभुहि पुनि, मुदित गयउ लेइ पार॥१०२

उतरि ठाढ भये सुरसरिरेता। सीय राम गुह लषन समेता॥
केवट उतरि दडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा॥
पियहिय की सिय जाननिहारी। मनिमुँदरी मन मुदित उतारी॥
कहेउ कृपाल लेहु उतराई। केवट चरन गहेउ अकुलाई॥
नाथ आज हम काह न पावा। मिटे दोष दुख-दारिद-दावा॥
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आज दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी॥
अब कछु नाथ न चाहिय मोरे। दीनदयाल अनुग्रह तोरे॥
फिरती बार मोहि जोइ देबा। सो प्रसाद मैं सिर धरि लेबा॥
दो०-बहुत कीन्ह प्रभु लषन सिय, नहिं कछु केवट लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन, भगति बिमल बर देइ॥१०३॥

तब मज्जन करि रघुकुल नाथा। पूजि पारथिव नायउ माथा॥
सिय सुरसरिहि कहेउ कर जोरी। मात मनोरथ पुरउबि मोरी॥
पति-देवर सँग कुसल बहोरी। आइ करउँ जेहि पूजा तोरी॥
सुनि सियबिनय प्रेम रस सानी। भइ तब बिमल बारि बरबानी॥
सुनु रघुबीर प्रिया बैदेही। तव प्रभाउ जग बिदित न केही॥
लोकप होहिं बिलोकत तोरे। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरे॥
तुम्ह जो हमहि बडि बिनय सुनाई। कृपा कीन्हि मोहि दीन्हि बडाई॥
तदपि देबि मैं देबि असीसा। सफल होन हित निजबागीसा॥
दो०-प्राननाथ देवरसहित, कुसल कोसला आइ।
पूजिहि सब मनकामना, सुजस रहिहि जग छाइ॥१०४॥

गगबचन सुनि मगलमूला। मुदित सीय सुरसरि अनुकूला॥
तब प्रभु गुहहि कहेउ घर जाहू। सुनत सूख मुख भा उर दाहू॥

दीन वचन गुह कह कर जोरी। विनय सुनहु रघु-कुल मनि मोरी॥
नाथ साथ रहि पथ देखाई। करि दिन चारि चरनसेवकाई॥
जेहि वन जाइ रहव रघुराई। परनकुटी मैं करवि सुहाई॥
तव मोहि कहँ जसि देव रजाई। सोइ करिहउँ रघु-वीर-दोहाई॥
सहजसनेह राम लखि तासू। सग लीन्ह गुह हृदय हुलासू॥
पुनि गुह ग्याति बोलि सव लीन्हे। करि परितोष विदा तव कीन्हे॥

दो०-तव गनपति सिव सुमिरि प्रभु, नाइ सुरसरिहिं माथ।
सखा अनुज सिय-सहित वन, गवन कीन्ह रघुनाथ॥१०५॥

तेहि दिन भयउ विटप तर वासू। लखन सखा सव कीन्ह सुपासू॥
प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराजु देखि प्रभु जाई॥
सचिव सत्य श्रद्धा प्रियनारी। माधवसरिस मीत हितकारी॥
चारि पदारथ भरा भँडारू। पुन्य प्रदेस देस अति चारू॥
छेत्र अगम गढ गाढ सुहावा। सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा॥
सेन सकल तीरथ बरवीरा। कलुष अनीक दलन रनधीरा॥
सगम सिंहासन सुठि सोहा। छत्र अक्षयवट मुनिमन मोहा॥
चवँर जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होहिं दुख दारिद भंगा॥

दो०-सेवहिं सुकृती साधु सुचि, पावहिं सव मन काम।
बंदी वेद पुरान-गन, कहहिं विमल गुनग्राम॥१०६॥

को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ। कलुष पुंज कुंजर-मृग राऊ॥
अस तीरथपति देखि सुहावा। सुखसागर रघुवर सुख पावा॥
कहि सिय लखनहि सखहिं सुनाई। श्रीमुख तीरथ राज बड़ाई॥
करि प्रनाम देखत वन बागा। कहत महातम अतिअनुरागा॥
एहि विधि आइ बिलोकी बेनी। सुमिरत सकल सुमंगल देनी॥
मुदित नहाइ कीन्ह सिवसेवा। पूजि जथाविधि तीरथदेवा॥
तब प्रभु भरद्वाज पहिं आये। करत दण्डवत मुनि उर लाये॥
मुनि-मन मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानन्दरासि जनु पाई॥

दो०—दीन्ह असीस मुनीस उर, अति अनंद अस जानि।
लोचनगोचर सुकृतफल, मनहुँ किये बिधि आनि ॥१०७॥

कुसल प्रस्न करि आसन दीन्हे। पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे॥
कन्द मूल फल अंकुर नीके। दिये आनि मुनि मनहुँ अमीके॥
सीय लषन-जन-सहित सुहाये। अति रुचि राम मूलफल खाये॥
भये बिगतस्रम राम सुखारे। भरद्वाज मृदुबचन उचारे॥
आजु सुफल तप तीरथ त्यागू। आजु सुफल जप जोग बिरागू॥
सुफल सकल-सुभ साधन साजू। राम तुम्हहि अवलोकत आजू॥
लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी। तुम्हरे दरस आस सब पूजी॥
अब करि कृपा देहु बर एहू। निज-पद सरसिज सहज सनेहू॥

दो०—करम बचन मन छाडि छल, जब लगि जन न तुम्हार।
तब लगि सुख सपनेहुँ नहिं, किये कोटि उपचार ॥१०८॥

सुनि मुनिबचन राम सकुचाने। भाव भगति आनन्द अघाने॥
तब रघुबर मुनि सुजस सुहावा। कोटि भाँति कहि सबहि सुनावा॥
सो बड़ सो सब-गुन-गन गेहू। जेहि मुनीस तुम्ह आदर देहू॥
मुनि रघुबीर परसपर नवहीं। बचन अगोचर सुख अनुभवहीं॥
यह सुधि पाइ प्रयागनिवासी। बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी॥
भरद्वाजआस्रम सब आये। देखन दसरथसुअन सुहाये॥
राम प्रनाम कीन्ह सब काहू। मुदित भये लहि लोयन-लाहू॥
देहिं असीस परम सुख पाई। फिरे सराहत सुन्दरताई॥

दो०—राम कीन्ह बिस्राम निसि, प्रात प्रयाग नहाइ।
चले सहित सिय लषन जन, मुदित मुनिहि सिरु नाइ॥१०९॥

राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं। नाथ कहिय हम केहि मग जाहीं॥
मुनि मन बिहँसि राम सन कहहीं। सुगम सकल मग तुम्ह कहँ अहहीं॥
साथ लागि मुनि सिष्य बोलाये। सुनि मन मुदित पचासक आये॥
सबन्हि राम पर प्रेम अपारा। सकल कहहिं मग दीख हमारा॥

मुनि बटु चारि संग तब दीन्हे। जिन्ह बहुजन्म सुकृत सब कीन्हे॥
करि प्रनाम रिषि आयसु पाई। प्रमुदित हृदय चले रघुराई॥
ग्राम निकट निकसहिं जब जाई। देखहिं दरस नारिनर धाई॥
होहिं सनाथ जनमफल पाई। फिरहिं दुखित मन संग पठाई॥
दो०–बिदा किये बटु बिनय करि, फिरे पाइ मन काम।
उतरि नहाये जमुनजल, जो सरीरसम स्याम ॥११०॥

सुनत तीरबासी नरनारी। धाये निज निज काज बिसारी॥
लखन—राम—सिय—सुन्दरताई। देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई॥
अति लालसा सबहिं मन माहीं। नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं॥
जे तिन्ह महँ बयवृद्ध सयाने। तिन्ह करि जुगुति राम पहिचाने॥
सकलकथा तिन्ह सबहि सुनाई। बनहि चले पितुआयसु पाई॥
सुनि सबिषाद सकल पछिताहीं। रानी राय कीन्ह भल नाहीं॥
तेहि अवसर एक तापस आवा। तेजपुंज लघुबयस सुहावा॥
कबि अलखितगति बेष बिरागी। मन बच करम राम अनुरागी॥
दो०–सजल नयन तन पुलकि निज, इष्टदेव पहिचानि।
परेउ दण्ड जिमि धरनितल, दसा न जाइ बखानि ॥१११॥

राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परमरंक जनु पारस पावा॥
मनहुँ प्रेम परमारथ दोऊ। मिलत धरे तन कह सब कोऊ॥
बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा। लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा॥
पुनि सिय-चरन धूरि धरि सीसा। जननि जान सिसु दीन्ह असीसा॥
कीन्ह निषाद दंडवत तेही। मिलेउ मुदित लखि रामसनेही॥
पियत नयनपुट रूप पियूखा। मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा॥
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठये बन बालक ऐसे॥
राम-लखन सिय रूप निहारी। होहिं सनेह बिकल नरनारी॥
दो०–तब रघुबीर अनेकबिधि, सखहि सिखावन दीन्ह।
रामरजायसु सीस धरि, भवन गवन तेइ कीन्ह ॥११२॥

पुनि सिय राम लषन कर जोरी। जमुनहिं कीन्ह प्रनाम बहोरी॥
चले ससीय मुदित दोउ भाई। रवितनजा कै करत बड़ाई॥
पथिक अनेक मिलहिं मग जाता। कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता॥
राजलषन सब अंग तुम्हारे। देखि सोच अति हृदय हमारे॥
मारग चलहु पयादेहिं पाये। ज्योतिष झूठ हमारेहि भाये॥
अगम पंथ गिरि कानन भारी। तेहि महँ साथ नारि सुकुमारी॥
करि केहरि बन जाइ न जोई। हम सँग चलहिं जो आयसु होई॥
जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई। फिरब बहोरि तुम्हहि सिर नाई॥

दो०-एहि बिधि पूछहिं प्रेमबस, पुलक गात जल नैन।
कृपासिंधु फेरहि तिन्हहि, कहि बिनीत मृदु बैन॥११३॥

जे पुर गाँव बसहिं मग माहीं। तिन्हहि नाग-सुर-नगर सिहाहीं॥
केहि सुकृती केहि घरी बसाये। धन्य पुन्यमय परम सुहाये॥
जहँ जहँ रामचरन चलि जाहीं। तिन्ह समान अमरावति नाहीं॥
पुन्यपुंज मग निकट निवासी। तिन्हहि सराहहिं सुर पुर-बासी॥
जे भरि नयन बिलोकहिं रामहिं। सीता-लषन सहित घनस्यामहि॥
जेहि सर सरित राम अवगाहहिं। तिन्हहि देव-सर सरित सराहहिं॥
जेहि तरुतर प्रभु बैठहिं जाई। करहिं कलपतरु तासु बड़ाई॥
परसि राम पद पदुम परागा। मानति भूमि भूरि निजभागा॥

दो०-छाँह करहिं घन बिबुधगन, बरषहि सुमन सिहाहि।
देखत गिरि बन बिहँग मृग, राम चले मग जाहि॥११४॥

सीता लषन-सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहि जाई॥
सुनि सब बाल वृद्ध नरनारी। चलहिं तुरत गृह काज बिसारी॥
राम लषन सियरूप निहारी। पाइ नयनफल होहिं सुखारी॥
सजल बिलोचन पुलक सरीरा। सब भये मगन देखि दोउ बीरा॥
बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी। लहि जनु रंकन्ह सुर मनि-ढेरी॥
एकन्ह एक बोलि सिख देहीं। लोचनलाहु लेहु छन एहीं॥

रामहिं देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिं सँग लागे॥
एक नयनमग छबि उर आनी। होहिं सिथिल तन मन बरबानी॥

दो०-एक देखि बटछाँह भलि, डासि मृदुल तृन पात।
कहहिं गवाँइय छिनुक स्रम, गवनव अबहिं कि प्रात॥११५॥

एक कलस भरि आनहिं पानी। अँचइय नाथ कहहिं मृदुबानी॥
सुनि प्रियबचन प्रीति अति देखी। राम कृपालु सुसील बिसेखी॥
जानी स्रमित सीय मन माहीं। घरिक बिलम्ब कीन्ह बटछाहीं॥
मुदित नारिनर देखहिं सोभा। रूप अनूप नयन मन लोभा॥
एकटक सब जोहहिं चहुँ ओरा। रामचद्र - मुखचद्र - चकोरा॥
तरुन-तमाल बरन तन सोहा। देखत कोटि मदन मन मोहा॥
दामिनिबरन लषन सुठि नीके। नखसिख सुभग भावते जीके॥
मुनिपट कटिन्ह कसे तूनीरा। सोहहिं करकमलनि धनुतीरा॥

दो०-जटा मुकुट सीसनि सुभग, उर भुज नयन बिसाल।
सरद परब बिधु-बदन बर, लसत स्वेद कन-जाल॥ ११६॥

बरनि न जाइ मनोहर जोरी। सोभा बहुत थोरि मति मोरी॥
राम - लषन - सिय - सुदरताई। सब चितवहिं चित मन मति लाई॥
थके नारि नर प्रेम पियासे। मनहुँ मृगी मृग देखि दियासे॥
सीयसमीप ग्रामतिय जाहीं। पूछत अतिसनेह सकुचाहीं॥
बार बार सब लागहिं पाये। कहहिं बचन मृदु सरल सुभाये॥
राजकुमारि बिनय हम करहीं। तिय सुभाय कछु पूछत डरहीं॥
स्वामिनि अविनय छमबि हमारी। बिलगु न मानब जानि गँवारी॥
राजकुअँर दोउ सहज सलोने। इन्ह तें लहि दुति मरकत सोने॥

दो०-स्यामल गौर किसोर बर, सुदर सुखमा ऐन।
सरद-सर्बरी नाथ-मुख, सरदसरोरुह नैन॥ ११७॥

कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को अहहिं तुम्हारे॥
सुनि सनेहमय मजुल बानी। सकुचि सीय मन महुँ मुसुकानी॥

तिनहि बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी॥
सकुचि सप्रेम बाल-मृग-नैनी। बोली मधुरबचन पिकबैनी॥
सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नाम लषन लघुदेवर मोरे॥
बहुरि बदनबिधु अचल ढाँकी। पियतन चितइ भौंह करि बाँकी॥
खंजनमंजु तिरीछे नैननि। निजपति कहेउ तिन्हहिं सियसैननि॥
भईं मुदित सब ग्रामवधूटी। रंकन्ह रायरासि जनु लूटी॥
दो०-अति सप्रेम सियपाय परि, बहुबिधि देहिं असीस।
सदा सोहागिन होहु तुम्ह, जब लगि महि अहिसीस॥११८

पारबती सम पतिप्रिय होहू। देवि न हम पर छाडब छोहू॥
पुनि पुनि बिनय करिय कर जोरी। जौं एहि मारग फिरिय बहोरी॥
दरसन देब जानि निज दासी। लखी सीय सब प्रेमपियासी॥
मधुरबचन कहि कहि परितोषी। जनु कौमुदी कुमुदिनी पोषी॥
तबहि लषन रघुबररुख जानी। पूछेउ मगु लोगन्हि मृदुबानी॥
सुनत नारिनर भये दुखारी। पुलकित गात बिलोचन बारी॥
मिटा मोद मन भये मलीने। बिधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने॥
समुझि करमगति धीरज कीन्हा। सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा॥
दो०-लषन जानकी सहित तब, गवन कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रियबचन कहि, लिये लाइ मन साथ॥ ११६॥

फिरत नारिनर अति पछिताहीं। दैवहि दोष देहिं मन माहीं॥
सहित बिषाद परसपर कहहीं। बिधि करतब उलटे सब अहहीं॥
निपट निरंकुस निठुर निसंकू। जेहि ससि कीन्ह सरुज सकलंकू॥
रूख कलपतरु सागर खारा। तेहि पठये बन राजकुमारा॥
जौं पै इन्हहिं दीन्ह बनबासू। कीन्ह बादि बिधि भोगबिलासू॥
ए बिचरहि मग बिनु पदत्राना। रचे बादि बिधि बाहन नाना॥
ए महि परहि डासि कुसपाता। सुभगसेज कत सृजत बिधाता॥
तरु-बर-बास इन्हहिं बिधि दीन्हा। धवलधाम रचि रचि स्रम कीन्हा॥

दो०–जौं ए मुनि पट धर जटिल, सुंदर सुठि सुकुमार।
निविधभाँति भूपन बसन, बादि किये करतार॥ १२०॥

जौं ए कन्दमूल फल खाहीं। बादि सुधादि असन जग माहीं॥
एक कहहिं ए सहज सुहाये। आप प्रगट भये बिधि न बनाये॥
जहँ लगि वेद कही विधिकरनी। स्रवन नयन मन गोचर बरनी॥
देखहु खोजि भुवन दसचारी। कहँ अस पुरुष कहाँ अस नारी॥
इन्हहि देखि बिधि मनु अनुरागा। पटतर जोग बनावइ लागा॥
कीन्ह बहुत स्रम एक न आये। तेहि इरिषा बन आनि दुराये॥
एक कहहिं हम बहुत न जानहिं। आपुहि परम धन्य करि मानहिं॥
ते पुनि पुन्यपुंज हम लेखे। जे देखिहि देखहहिं जिन्ह देखे॥

दो०–एहि बिधि कहि कहि बचन प्रिय, लेहिं नयन भरि नीर।
किमि चलहहिं मारग अगम, सुठि सुकुमार सरीर॥ १२१॥

नारि सनेह बिकलबस होहीं। चकई साँझ समय जनु सोंही॥
मृदु-पद कमल कठिन मगु जानी। गहबर हृदय कहहिं बरबानी॥
परसत मृदुल चरन अरुनारे। सकुचति महि जिम हृदय हमारे॥
जौं जगदीस इन्हहिं बनु दीन्हा। कस न सुमनमय मारग कीन्हा॥
जौं माँगा पाइय बिधि पाहीं। ए रखिअहिं सखि आँखिन्ह माहीं॥
जे नरनारि न अवसर आये। तिन्ह सिय राम न देखन पाये॥
सुनि सुरूप बूझहिं अकुलाई। अब लगि गये कहाँ लगि भाई॥
समरथ धाइ बिलोकहिं जाई। प्रमुदित फिरहिं जनमफल पाई॥

दो०–अबला बालक बृद्धजन, कर मीजहिं पछितहिं।
होहिं प्रेमबस लोग इमि, राम जहाँ जहँ जाहिं॥१२२॥

गाँव गाँव अस होइ अनन्दू। देखि भानु कुल कैरव चन्दू॥
जे यह समाचार सुनि पावहिं। ते नृप रानिहिं दोष लगावहिं॥
कहहिं एक अतिभल नरनाहू। दीन्ह हमहि जेहि लोचनलाहू॥
कहहिं परसपर लोग लोगाई। बातें सरल सनेह सोहाई॥

ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाये। धन्य सो नगरु जहाँ ते आये॥
धन्य सो देस सैल बन गाऊँ। जहँ जहँ जाहिं धन्य सो ठाऊँ॥
सुख पायउ बिरंचि रचि तेही। ए जेहि के सब भाँति सनेही॥
राम-लखन सिय कथा सुहाई। रही सकल मग कानन छाई॥

दो०–एहि बिधि रघु-कुल-कमल रबि, मग लोगन्ह सुख देत।
जाहिं चले देखत बिपिन, सिय सौमित्रि समेत॥१२३॥

आगे राम लषन बने पाछे। तापसबेष बिराजत काछे॥
उभय बीच सिय सोहति कैसी। ब्रह्म-जीव-बिच माया जैसी॥
बहुरि कहउँ छबि जसि मन बसई। जनु मधु मदन मध्य रति लसई॥
उपमा बहुरि कहउँ जिय जोही। जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही॥
प्रभु पद रेख बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता॥
सीय-राम-पद-अंक बराएँ। लषन चलहिं मग दाहिन बाएँ॥
राम-लषन-सिय प्रीति सुहाई। बचन अगोचर किमि कहि जाई॥
खग मृग मगन देखि छबि होहीं। लिये चोरि चित राम बटोही॥

दो०–जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय, सियसमेत दोउ भाइ।
भव-मग अगम अनंद तेइ, बिनु स्रम रहे सिराइ॥१२४॥

अजहुँ जासु उर सपनेहु काऊ। बसहिं लषन सिय राम बटाऊ॥
राम धाम पथ पाइहि सोई। जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई॥
तब रघुबीर स्रमित सिय जानी। देखि निकट बट सीतल पानी॥
तहँ बसि कंद मूल फल खाई। प्रात नहाइ चले रघुराई॥
देखत बन सर सैल सुहाये। बालमीकि आश्रम प्रभु आये॥
राम दीख मुनिबास सुहावन। सुन्दर गिरि कानन जल पावन॥
सरनि सरोज बिटप बन फूले। गुँजत मंजु मधुप रस भूले॥
खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं। बिरहित बैर मुदित मन चरहीं॥

दो०–सुचि सुंदर आस्रम निरखि, हरषे राजिवनैन।
सुनि रघुबर आगमन मुनि, आगे आयउ लैन॥१२५॥

मुनि कहँ राम दंडवत कीन्हा। आसिरबाद बिप्रबर दीन्हा॥
देखि रामछबि नयन जुड़ाने। करि सनमान आस्रमहिं आने॥
मुनिबर अतिथि प्रानप्रिय पाये। कंद मूल फल मधुर मँगाये॥
तब मुनि आसन दिये सुहाये॥ सिय सौमित्रि राम फल खाये॥
बालमीकि मन आनँद भारी। मंगलमूरति नयन निहारी॥
तब करकमल जोरि रघुराई। बोले बचन स्रवन-सुखदाई॥
तुम्ह त्रिकाल दरसी मुनिनाथा। बिस्व बदर जिमि तुम्हरे हाथा॥
अस कहि प्रभु सब कथा बखानी। जेहि जेहि भाँति दीन्ह बन रानी॥

दो०–तात बचन पुनि मातुहित, भाइ भरत अस राउ।
मो कहँ दरस तुम्हार प्रभु, सब मम पुन्यप्रभाउ॥१२६॥

देखि पाय मुनिराय तुम्हारे। भये सुकृत सब सुफल हमारे॥
अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उदबेग न पावइ कोई॥
मुनि तापस जिन्ह तें दुख लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं॥
मंगल मूल बिप्र परितोषू। दहइ कोटि कुल भूसुर-रोषू॥
अस जिय जानि कहिय सोइ ठाऊँ। सिय-सौमित्रि-सहित जहँ जाऊँ॥
तहँ रचि रुचिर परन तृन शाला। बास करउँ कछु काल कृपाला॥
सहज सरल सुनि रघुबरबानी। साधु साधु बोले मुनि ज्ञानी॥
कस न कहहु अस रघु कुल-केतू। तुम्ह पालक संतत स्रुतिसेतू॥

छंद–स्रुति-सेतु पालक राम तुम्ह जगदीसमाया जानकी।
जो सृजति जग पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥
जो सहस सीस अहीस महि धरु लपन स चराचर धनी।
सुरकाज धरि नरराज तनु चल दलन खल-निसिचर अनी॥

सो०–राम सरूप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धिपर।
अबिगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह॥१२७॥

जग पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि-संभु-नचावनिहारे॥
तेउ न जानहिं मरम तुम्हारा। अउर तुम्हहिं को जाननिहारा॥

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हहिं होइ जाई॥
तुम्हरिहि कृपा तुम्हहिं रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन॥
चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥
नरतनु धरेउ संत-सुर-काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा॥
राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे॥
तुम्ह जो कहहु करहु सब साँचा। जस काछिय तस चाहिय नाँचा॥

दो०–पूछेहु मोहिं कि रहउँ कहँ, मैं पूछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि, तुम्हहिं देखावउँ ठाउँ॥१२८॥

सुनि मुनिबचन प्रेमरस साने। सकुचि राम मनमहँ मुसकाने॥
बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी। बानी मधुर अमियरस बोरी॥
सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लषण-समेता॥
जिन्ह के स्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्हके हिय तुम्ह कहँ गृह रूरे॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाखे॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूपबिंदु जल होहिं सुखारी॥
तिन्ह के हृदयसदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय-सह रघुनायक॥

दो०–जस तुम्हार मानस बिमल, हंसिनि जीहा जासु।
मुकताफल गुनगन चुनइ, राम बसहु मन तासु॥१२९॥

प्रभुप्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा॥
तुम्हहिं निवेदित भोजन करहीं। प्रभुप्रसाद पट भूषन धरहीं॥
सीस नवहिं सुर गुरु-द्विज देखी। प्रीतिसहित करि बिनय बिसेखी॥
कर नित करहिं रामपद पूजा। रामभरोस हृदय नहिं दूजा॥
चरन रामतीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥
मंत्रराज नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहिं सहित परिवारा॥
तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेवाँइ देहिं बहुदाना॥
तुम्हतें अधिक गुरुहिं जिय जानी। सकल भाय सेवहिं सनमानी॥

दो०-सब करि माँगहिं एकु फल, राम-चरन रति होउ।
तिन्ह के मनमंदिर बसहु, सिय रघुनंदन दोउ ॥१३०॥
काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥
जिन्ह के कपट दंभ नहिं माया। तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया॥
सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख सुख-सरिस प्रसंसा गारी॥
कहहिं सत्य प्रियबचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी॥
तुम्हहिं छाडि गति दूसरि नाहीं। राम बसहिं तिन्ह के मनमाहीं॥
जननीसम जानहिं परनारी। धन पराव बिषतें बिष भारी॥
जे हरषहिं परसंपति देखी। दुखित होहिं परबिपति बिसेखी॥
जिन्हहि राम तुम्ह प्रान पियारे। तिन्ह के मन सुभसदन तुम्हारे॥

दो०-स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन के सब तुम्ह तात।
मनमंदिर तिन्ह के बसहु, सीयसहित दोउ भ्रात ॥१३१॥
अवगुन तजि सब के गुन गहहीं। बिप्र धेनु हित संकट सहहीं॥
नीतिनिपुन जिन्ह कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन्ह कर मन नीका॥
गुन तुम्हार समुझइ निजदोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा॥
रामभगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही॥
जाति पाँति धन धरम बडाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई॥
सब तजि तुम्हहि रहइ लउ लाई। तेहि के हृदय रहहु रघुराई॥
सरग नरक अपबरग समाना। जहँ तहँ देख धरे धनुबाना॥
मन बच करम जो राउर चेरा। राम करहु तेहि के उर डेरा॥

दो०-जाहि न चाहिय कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेह।
बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निजगेह ॥१३२॥
एहि बिधि मुनिबर भवन देखाये। बचन सप्रेम राम मन भाये॥
कह मुनि सुनहु भानु कुल नायक। आस्रमु कहउँ समय सुखदायक॥
चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू॥
सैल सुहावन कानन चारू। करि केहरि-मृग बिहँग बिहारू॥

नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रिप्रिया निज तप बल आनी॥
सुरसरिधार नाउँ मदाकिनि। जो सब पातक-पोतक-डाकिनि॥
अत्रि आदि मुनि वर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं॥
चलहु सफल स्रम सब कर करहू। राम देहु गौरव गिरिवरहू॥
दो०–चित्रकूट महिमा अमित, कही महामुनि गाइ।
आइ नहाये सरितबर, सियसमेत दोउ भाइ॥१३३॥

रघुबर कहेउ लषन भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू॥
लषन दीख पय उतर करारा। चहुँदिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा॥
नदी पनच सर सम दम दाना। सकलकलुष कलिसाउज नाना॥
चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चुकइ न घात मार मुठिभेरी॥
अस कहि लषन ठाँव देखरावा। थल बिलोकि रघुबर सुख पावा॥
रमेउ राममन देवन्ह जाना। चले सहित सुरपति परधाना॥
कोल किरात-बेष सब आये। रचे परन-तृन सदन सुहाये॥
बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला। एक ललित लघु एक बिसाला॥
दो०–लषन-जानकी सहित प्रभु, राजत परन निकेत।
सोह मदन मुनिबेष जनु, रति रितु-राज-समेत॥१३४॥

अमरनाग किन्नर दिसिपाला। चित्रकूट आये तेहि काला॥
राम प्रनाम कीन्ह सब काहू। मुदित देव लहि लोचनलाहू॥
बरषि सुमन कह देवसमाजू। नाथ सनाथ भये हम आजू॥
करि बिनती दुख दुसह सुनाये। हरषित निज निज-सदन सिधाये॥
चित्रकूट रघुनन्दन छाये। समाचार सुनि सुनि मुनि आये॥
आवत देखि मुदित मुनिवृंदा। कीन्ह दंडवत रघु कुल-चंदा॥
मुनि रघुबरहि लाइ उर लेहीं। सुफल होन हित आसिष देहीं॥
सिय सौमित्र-राम छबि देखहिं। साधन सकल सफल करि लेखहिं॥
दो०–जथाजोग सनमान प्रभु, बिदा किये मुनिवृन्द।
करहिं जोग जप जागतप, निज आस्रमनि सुछन्द॥१३५॥

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु नवनिधि घर आई॥
कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना॥
तिन्ह महँ जिन्ह देखे दोउ भ्राता। अपर तिन्हहिं पूछहिं मग जाता॥
कहत सुनत रघुबीर निकाई। आइ सबन्हि देखे रघुराई॥
करहिं जोहारु भेंट धरि आगे। प्रभुहिं बिलोकहि अति अनुरागे॥
चित्रलिखे जनु जहँ तहँ ठाढे। पुलक सरीर नयन जल बाढ़े॥
राम सनेहमगन सब जाने। कहि प्रियबचन सकल सनमाने॥
प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरी। बचन बिनीत कहहिं कर जोरी॥

दो०–अब हम नाथ सनाथ सब, भये देखि प्रभुपाय।
भाग हमारे आगमन, राउर कोसलराय॥१३६॥

धन्य भूमि बन पथ पहारा। जहँ जहँ नाथ पाउँ तुम्ह धारा॥
धन्य बिहँग मृग काननचारी। सफल जनम भये तुम्हहिं निहारी॥
हम सब धन्य सहित परिवारा। दीख दरस भरि नयन तुम्हारा॥
कीन्ह बास भल ठाउँ बिचारी। इहाँ सकल रितु रहब सुखारी॥
हम सब भाँति करबि सेवकाई। करि केहरि अहि बाघ बराई॥
बन बेहड़ गिरिकंदर खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जोहा॥
जहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउब। सर निरझर भल ठाउँ देखाउब॥
हम सेवक परिवार समेता। नाथ न सकुचब आयसु देता॥

दो०–बेदबचन मुनि मन अगम, ते प्रभु करुनाऐन।
बचन किरातन्ह के सुनत, जिमि पितु बालक बैन॥१३७॥

रामहिं केवल प्रेम पियारा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥
राम सकल बनचर तब तोषे। कहि मृदुबचन प्रेम परिपोषे॥
बिदा किये सिरु नाइ सिधाये। प्रभुगुन कहत सुनत घर आये॥
एहि बिधि सियसमेत दोउ भाई। बसहिं बिपिन सुर-मुनि सुखदाई॥
जब तें आइ रहे रघुनायक। तब तें भा बनु मंगलदायक॥
फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना। मंजु बलित बर बेलि बिताना॥

सुर तरु-सरिस सुभाय सुहाये। मनहुँ विबुधवन परिहरि आये॥
गुंज मंजुतर मधुकर स्रेनी। त्रिविध बयारि बहइ सुखदेनी॥
दो०-नीलकंठ कलकंठ सुक, चातक चक्क चकोर।
भाँति भाँति बोलहिं बिहग, स्रवनसुखद चितचोर॥१३८॥

करि केहरि कपि कोल कुरंगा। बिगतबैर बिचरहिं सब संगा॥
फिरत अहेर रामछबि देखी। होहिं मुदित मृगबृंद बिसेखी॥
बिबुधबिपिन जहँ लगि जगमाहीं। देखि रामबन सकल सिहाहीं॥
सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या। मेकलसुता गोदावरि धन्या॥
सब सर सिंधु नदी नद नाना। मंदाकिनि कर करहिं बखाना॥
उदय अस्त गिरि अरु कैलासू। मंदर मेरु सकल सुर बासू॥
सैल हिमाचल आदिक जेते। चित्रकूटजस गावहिं तेते॥
बिंध मुदितमन सुख न समाई। स्रम बिनु बिपुल बड़ाई पाई॥
दो०-चित्रकूट के बिहँग मृग, बेलि बिटप तृन जाति।
पुन्यपुंज सब धन्य अस, कहहिं देव दिनराति॥१३९॥

नयनवंत रघुबरहिं बिलोकी। पाइ जनमफल होहिं बिसोकी॥
परसि चरनरज अचर सुखारी। भये परमपद के अधिकारी॥
सो बन सैल सुभाय सुहावन। मंगलमय अति पावन पावन॥
महिमा कहिय कवन बिधि तासू। सुखसागर जहँ कीन्ह निवासू॥
पयपयोधि तजि अवध बिहाई। जहँ सिय लषन राम रहे आई॥
कहि न सकहिं सुखमा जसि कानन। जौं सत सहस होहिं सहसानन॥
सो मैं बरनि कहौं बिधि केहीं। डाबर कमठ कि मंदर लेहीं॥
सेवहिं लषन करम-मन बानी। जाइ न सील सनेह बखानी॥
दो०-छिनु छिनु लखि सिय राम पद, जानि आपु पर नेह।
करत न सपनेहुँ लषन चित, बंधु मातु पितु गेह॥१४०॥

राम संग सिय रहति सुखारी। पुर परिजन गृह सुरति बिसारी॥
छिनु छिनु पिय बिधु बदन निहारी। प्रमुदित मनहुँ चकोरकुमारी॥

नाहनेह नित बढत विलोकी । हरपित रहति दिवस निमि कोकी॥
सियमन रामचरन अनुरागा । अवध सहस सम बन प्रिय लागा॥
परनकुटी प्रिय प्रियतम संगा । प्रिय परिवारु कुरंग बिहंगा॥
सासु ससुर सम मुनितिय मुनिवर । असन अमियसम कंद मूलफर॥
नाथसाथ साथरी सुहाई । मयन-सयन सय सम सुखदाई॥
लोकप होहिं विलोकत जासू । तेहि कि मोह सक विषय विलासू॥

दो०-सुमिरत रामहि तजहिं जन, तृनसम विषय बिलासु।
रामप्रिया जगजननि सिय, कछु न आचरज तासु॥१४१॥

सीय लपन जेहि बिधि सुख लहहीं । सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं॥
कहहिं पुरातन कथा कहानी । सुनहिं लपन सिय अतिसुख मानी॥
जब जब राम अवध सुधि करहीं । तब तब बारि बिलोचन भरहीं॥
सुमिरि मातु पितु परिजन भाई । भरत - सनेह - सील-सेवकाई॥
कृपासिंधु प्रभु होहिं दुखारी । धीरज धरहिं कुसमउ बिचारी॥
लखि सिय लपनु बिकल होइ जाहीं। जिमि पुरुपहिं अनुसर परिछाहीं॥
प्रिया बंधु-गति लखि रघुनंदन । धीर कृपाल भगत-उर-चंदन॥
लगे कहन कछु कथा पुनीता। सुनि सुख लहहिं लखनु अरु सीता॥

दो०-राम-लखन-सीता सहित, सोहत परननिकेत ।
जिमि बासव बस अमरपुर, सची-जयत समेत ॥१४२॥

जोगवहिं प्रभु सिय लखनहिं कैसे । पलक विलोचनगोलक जैसे॥
सेवहिं लपन सीय रघुवीरहि । जिमि अविवेकी पुरुप सरीरहि॥
एहि बिधि प्रभु बन बसहिं सुखारी । खग-मृग-सुर-तापस हितकारी॥
कहेउँ राम-बन-गवन सुहावा । सुनहु सुमंत्र अवध जिमि आवा॥
फिरेउ निपाद प्रभुहि पहुँचाई । सचिवसहित रथ देखेसि आई॥
मंत्री बिकल बिलोकि निपादू । कहि न जाइ जस भयउ बिपादू॥
राम राम सिय लपन पुकारी । परेउ धरनितल व्याकुल भारी॥
देखि दखिनदिसि हय हिहिनाहीं । जनु बिनु पंख बिहँग अकुलाहीं॥

दो०–नहिं तृन चरहिं न पियहिं जल, मोचहिं लोचनबारि।
व्याकुल भयउ निषाद सब, रघुबर-बाजि निहारि ॥१४३॥

धरि धीरज तब कहइ निषादू। अब सुमंत्र परिहरहु बिषादू ॥
तुम्ह पंडित परमारथग्याता। धरहु धीर लखि बिमुख बिधाता ॥
बिबिधकथा कहि कहि मृदुबानी। रथ बैठारेउ बरबस आनी ॥
सोकसिथिल रथ सकइ न हाँकी। रघुबर बिरह पीर उर बाँकी ॥
तलफराहिं मग चलहिं न घोरे। बनमृग मनहुँ आनि रथ जोरे ॥
अढुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछे। रामबियोग बिकल दुख तीछे ॥
जो कह राम लखन बैदेही। हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही ॥
बाजि बिरहगति कहि किमि जाती। बिनु मनि फनिक बिकल जेहि भाँती ॥

दो०–भयउ निषाद बिषादबस, देखत सचिवतुरंग।
बोलि सुसेवक चारि तब, दिये सारथी संग ॥१४४॥

गुह सारथिहि फिरेउ पहुँचाई। बिरह बिषाद बरनि नहिं जाई ॥
चले अवध लेइ रथहि निषादा। होहिं छनहिं छन मगन बिषादा ॥
सोच सुमंत्र बिकल दुख दीना। धिग जीवन रघुबीर बिहीना ॥
रहहि न अंतहु अधम सरीरू। जस न लहेउ बिछुरत रघुबीरू ॥
भये अजस अघ भाजन प्राना। कवन हेतु नहिं करत पयाना ॥
अहह मंद मन अवसर चूका। अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका ॥
मींजि हाथ सिर धुनि पछिताई। मनहुँ कृपिन धनरासि गवाँई ॥
बिरद बाँधि बरबीर कहाई। चलेउ समर जनु सुभट पराई ॥

दो०–बिप्र बिबेकी बेदबिद, संमत साधु सुजाति।
जिमि धोखे मदपान कर, सचिव सोच तेहि भाँति ॥१४५॥

जिमि कुलीनतिय साधु सयानी। पतिदेवता करम - मन - बानी ॥
रहइ करमबस परिहरि नाहू। सचिव हृदय तिमि दारुनदाहू ॥
लोचन सजल डीठ भइ थोरी। सुनइ न स्रवन बिकल मति भोरी ॥
सूखहिं अधर लागि मुहँ लाटी। जिउ न जाइ उर अवधिकपाटी ॥

विवरन भयउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहु पिता महतारी।
हानि गलानि विपुल मन व्यापी। जम पुर पथ सोच जिमि पापी।
वचन न आव हृदय पछिताई। अवध काह मैं देखब जाई।
रामरहित रथ देखिहि जोई। सकुचिहि मोहि विलोकत सोई।

दो०–धाइ पूछिहहिं मोहि जब, बिकल नगर नर नारि।
उतरु देब मैं सबहिं तब, हृदय बज्र बैठारि।१४६।

पुछिहहिं दीन दुखित जब माता। कहब कहा मैं तिन्हहिं विधाता।
पूछिहि जबहिं लषनमहतारी। कहिहउँ कवन सँदेस सुखारी।
रामजननि जब आइहि धाई। सुमिरि बच्छ जिमि धेनु लवाई।
पूछत उतर देव मैं तेही। गे बन राम लषनु बैदेही।
जोइ पूछिहि तेहि ऊतरु देवा। जाइ अवध अब यह सुख लेवा।
पुछिहहिं जबहिं राउ दुखदीना। जिवन जासु रघुनाथ अधीना।
देइहउँ उतरु कवन मुह लाई। आयेउँ कुसल कुअँर पहुँचाई।
सुनत लषन सिय राम सँदेसू। तृन जिमि तनु परिहरिहि नरेसू।

दो०–हृदय न बिदरेउ पंक जिमि, बिछुरत प्रीतम नीर।
जानत हौं मोहि दीन्ह विधि, यह जातना-सरीर।१४७।

एहि विधि करत पथ पछितावा। तमसातीर तुरत रथ आवा।
बिदा किये करि विनय निपादा। फिरे पाँय परि विकल विषादा।
पैठत नगर सचिव सकुचाई। जनु मारेसि गुरु बाम्हन-गाई।
बैठि विटपतर दिवस गवाँवा। साँझ समय तब अवसर पावा।
अवधप्रवेस कीन्ह अँधियारे। पैठि भवन रथ राखि दुआरे।
जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाये। भूपद्वार रथ देखन आये।
रथ पहिचानि विकल लखि घोरे। गरहिं गात जिमि आतप ओरे।
नगर नारि नर व्याकुल कैसे। निघटत नीर मीनगन जैसे।

दो०–सचिव आगमन सुनत सब विकल भयउ रनिवासु।
भवनु भयकर लाग तेहि, मानहुँ प्रेतनिवासु।१४८।

अति आरत सब पूछहिं रानी। उतरु न आव बिकल भई बानी॥
सुनइ न स्रवन नयन नहिं सूझा। कहहु कहा नृप जेहि तेहि बूझा॥
दासिन्ह दीख सचिव बिकलाई। कौसल्यागृह गईं लेवाई॥
जाइ सुमंत्र दीख कस राजा। अमियरहित जनु चन्द बिराजा॥
आसन - सयन - बिभूषन हीना। परेउ भूमितल निपट मलीना॥
लेइ उसास सोच एहि भाती। सुरपुर तें जनु खँसेउ जजाती॥
लेत सोच भरि छिनु छिनु छाती। जनु जरि पंख परेउ संपाती॥
राम राम कह राम सनेही। पुनि कह राम लषन बैदेही॥

दो०-देखि सचिव जय जीव कहि, कीन्हेउ दंड प्रनाम।
सुनत उठेउ ब्याकुल नृपति, कहु सुमंत्र कहँ राम॥१४६॥

भूप सुमंत्र लीन्ह उर लाई। बूडत कछु अधार जनु पाई॥
सहित सनेह निकट बैठारी। पूछत राउ नयन भरि बारी॥
रामकुसल कहु सखा सनेही। कहँ रघुनाथ लषन बैदेही॥
आने फेर कि बनहिं सिधाये। सुनत सचिवलोचन जल छाये॥
सोक बिकल पुनि पूछ नरेसू। कहु सिय राम लषन संदेसू॥
राम - रूप - गुन - सील-सुभाऊ। सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ॥
राज सुनाइ दीन्ह बनबासू। सुनि मन भयउ न हरष हरासू॥
सो सुत बिछुरत गये न प्राना। को पापी बड मोहि समाना॥

दो०-सखा राम सिय-लषन जहँ, तहाँ मोहि पहुँचाउ।
नाहिं त चाहत चलन अब, प्रान कहउँ सतिभाउ॥१५०॥

पुनि पुनि पूछत मंत्रिहि राऊ। प्रियतम-सुअन-सँदेस सुनाऊ॥
करहि सखा सोइ बेगि उपाऊ। राम-लषन-सिय नयन देखाऊ॥
सचिव धीर धरि कह मृदुबानी। महाराज तुम्ह पंडित ज्ञानी॥
बीर सुधीर धुरंधर देवा। साधुसमाज सदा तुम्ह सेवा॥
जनम मरन सब सुख दुख भोगा। हानि लाभ प्रियमिलन बियोगा॥
काल करम बस होहिं गोसाईं। बरबस राति दिवस की नाईं॥

भरत हरषहि जट दुरत मिलसाही। दोउ सम धीर धरहि मन माहीं।
धीरज धरहु विवेक विचारी। छाडिय सोच सकल हितकारी।

दो०-प्रथम वासु तमसा भयउ, दूसर सुरसरि तीर।
न्हाय रहे जलपान करि, सियसमेत दोउ बीर॥१४॥

केवट कीन्ह बहुत सेवकाई। सो जामिनि सिंगवेर गवाँई।
होत प्रात वटछीर मँगावा। जटामुकुट निज सीस बनावा।
रामसखा तब नाव मँगाई। प्रिया चढाइ चढ़े रघुराई।
लषन वानधनु धरे बनाई। आपु चढे प्रभुआयसु पाई।
विकल विलोकि मोहि रघुवीरा। बोले मधुरवचन धरि धीरा।
तात प्रनाम तात सन कहेहू। बार बार पदपकज गहेहू।
करवि पाय परि विनय बहोरी। तात करिय जनि चिंता मोरी।
वनमग मगल कुसल हमारे। कृपा अनुग्रह पुन्य तुम्हारे।

छद-तुम्हरे अनुग्रह तात कानन जात सब सुख पाइहउँ।
प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहउँ।
जननी सकल परितोषि परि परि पाय करि विनती घनी।
तुलसी करेहु सोइ जतन जेहि कुसली रहहिं कोसल धनी।

सो०-गुरु सन कहब सँदेस, बार बार पदपदुम गहि।
करब सोइ उपदेस, जेहि न सोच मोहि अवधपति॥१५॥

पुरजन परजन सकल निहोरी। तात सुनायेहु बिनती मोरी।
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जा तें रह नरनाह सुखारी।
कहब सदेसु भरत के आये। नीति न तजिय राजपद पाये।
पालेहु प्रजहि करम-मन बानी। सेयेहु मातु सकल सम जानी।
अउर निबाहेहु भायप भाई। करि पितु-मातु सुजन सेवकाई।
तात भाँति तेहि राखब राऊ। सोच मोर जेहि करइ न काऊ॥
लषन कहे कछु वचन कठोरा। बरजि राम पुनि मोहि निहोरा॥
बारबार निज सपथ दिवाई। कहबि न तात लखन लरिकाई।

दो०–कहि प्रनाम कछु कहन लिय, सिय भइ सिथिल सनेह।
थकित बचन लोचन सजल, पुलक पल्लवित देह॥१४३॥

तेहि अवसर रघुबर रुख पाई। केवट पारहिं नाव चलाई॥
रघुकुल तिलक चले एहि भाँती। देखेउँ ठाढ़ कुलिस धरि छाती॥
मैं आपन किमि कहउँ कलेसू। जियत फिरउँ लेइ रामसँदेसू॥
अस कहि सचिव बचन रहि गयऊ। हानि गलानि सोच बस भयऊ॥
सूत बचन सुनतहि नरनाहू। परेउ धरनि उर दारुनदाहू॥
तलफत बिषम मोह मन मापा। माँजा मनहुँ मीन कहँ ब्यापा॥
करि बिलाप सब रोवहिं रानी। महा बिपति किमि जाइ बखानी॥
सुनि बिलाप दुखहू दुख लागा। धीरजहू कर धीरज भागा॥

दो०–भयउ कोलाहल अवध अति, सुनि नृप राउर सोर।
बिपुल बिहँगबन परेउ निसि, मानहुँ कुलिस कठोर॥१४४॥

प्रान कंठगत भयउ भुआलू। मनि बिहीन जनु ब्याकुल ब्यालू॥
इन्द्री सकल बिकल भइँ भारी। जनु सर सरसिज बन बिनु बारी॥
कौसल्या नृप दीख मलाना। रबि कुल रबि अथयेउ जियजाना॥
उर धरि धीर राममहतारी। बोली बचन समय अनुसारी॥
नाथ समुझि मन करिय बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू॥
करनधार तुम्ह अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू॥
धीरज धरिय त पाइय पारू। नाहिं त बूड़िहि सब परिवारू॥
जौं जिय धरिय बिनय पिय मोरी। राम लषन सिय मिलहिं बहोरी॥

दो०–प्रिया बचन मृदु सुनत नृप, चितयउ आँखि उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु, सींचेउ सीतल बारि॥१४५॥

धरि धीरज उठि बैठि भुआलू। कहु सुमंत्र कहँ राम कृपालू॥
कहाँ लषन कहँ रामसनेही। कहँ प्रिय पुत्रबधू बैदेही॥

बिलपत राउ बिकल बहु भाँती। भइ जुगसरिस सिराति न राती॥
तापस अंध-साप सुधि आई। कौसल्यहिं सब कथा सुनाई॥
भयउ बिकल बरनत इतिहासा। रामरहित धिग जीवन आसा॥
सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहिं न प्रेमपनु मोर निबाहा॥
हा रघुनन्दन प्रानपिरीते। तुम्ह बिनु जियत बहुत दिन बीते॥
हा जानकी लखन हा रघुबर। हा पितु हित चित-चातक जलधर॥

दो०-राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरह, राउ गयउ सुरधाम॥१५६॥

जियन मरन फल दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जस छावा॥
जियत राम बिधु बदन निहारा। रामबिरह करि मरन सवाँरा॥
सोक बिकल सब रोवहिं रानी। रूप सील बल तेज बखानी॥
करहिं बिलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमि तल बारहिं बारा॥
बिलपहिं बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदन करहिं पुरबासी॥
अथयउ आजु भानु कुल भानू। धरमअवधि गुन रूप निधानू॥
गारी सकल कैकइहि देहीं। नयन बिहीन कीन्ह जग जेहीं॥
एहि बिधि बिलपत रैनि बिहानी। आये सकल महामुनि ज्ञानी॥

दो०-तब बसिष्ठमुनि समयसम, कहि अनेक इतिहास।
सोक नेवारेउ सबहिं कर, निज बिज्ञान प्रकास॥१५७॥

तेल नाव भरि नृपतन राखा। दूत बोलाइ बहुरि अस भाखा॥
धावहु बेगि भरत पहिं जाहू। नृप सुधि कतहुँ कहहु जनि काहू॥
एतनेइ कहेहु भरत सन जाई। गुरु बोलाइ पठयउ दोउ भाई॥
सुनि मुनि आयसु धावन धाये। चले बेगि बर बाजि लजाये॥
अनरथ अवध अरंभेउ जब तें। कुसगुन होहिं भरत कहँ तब तें॥
देखहिं राति भयानक सपना। जागि करहिं कटु कोटि कलपना॥
बिप्र जेवाँइ देहिं दिन दाना। सिव अभिषेक करहिं बिधि नाना॥
माँगहिं हृदय महेस मनाई। कुसल मातु पितु परिजन भाई॥

दो०-एहि विधि सोचत भरत मन, धावन पहुँचे आइ।
गुरुअनुसासन स्रवन सुनि, चले गनेस मनाइ ॥१५८।

चले समीरबेग हय हाँके। नाँघत सरित सैल बन बाँके॥
हृदय सोच बड़ कछु न सोहाई। अस जानहिं जिय जाउँ उड़ाई॥
एक निमेष बरष सम जाइ। एहि विधि भरत नगर नियराई॥
असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा॥
खर सियार बोलहिं प्रतिकूला। सुनि सुनि होइ भरत मन सूला॥
श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगर बिसेषि भयावन लागा॥
खग मृग हय गज जाहिं न जोये। राम वियोग कुरोग बिगोये॥
नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहुँ सबन्हि सब संपति हारी॥

दो०-पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु, गवहि जोहारहिं जाहिं।
भरत कुसल पूछि न सकहिं, भय विषाद मन माहिं ॥१५६॥

हाट बाट नहिं जाहिं निहारी। जनु पुर दह दिसि लागि दवारी॥
आवत सुत सुनि कैकयनंदिनि। हरषी रबि कुल जल रुह-चंदिनि॥
सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारहिं भेंटि भवन लेइ आई॥
भरत दुखित परिवारु निहारा। मानहुँ तुहिन बनजबन मारा॥
कैकेई हरषित एहि भाँती। मनहुँ मुदित दव लाइ किराती॥
सुतहि ससोच देखि मन मारे। पूछति नैहर कुसल हमारे॥
सकल कुसल कहि भरत सुनाई। पूछी निज कुल कुसल भलाई॥
कहु कहँ तात कहाँ सब माता। कहँ सिय राम लषन प्रियभ्राता॥

दो०-सुनि सुतबचन सनेहमय, कपट नीर भरि नैन।
भरत-स्रवन-मन-सूल सम, पापिन बोली बैन ॥१६०॥

तात बात मैं सकल सँवारी। भइ मंथरा सहाय बिचारी॥
कछुक काज विधि बीच बिगारेउ। भूपति सुर पति पुर पगु धारेउ॥

सुनत भरत भयबिबस बिषादा। जनु सहमेउ करि केहरिनादा॥
तात तात हा तात पुकारी। परे भूमितल ब्याकुल भारी॥
चलत न देखन पायउ तोही। तात न रामहिं सौंपेहु मोही॥
बहुरि धीर धरि उठे सम्भारी। कहु पितु मरन हेतु महतारी॥
सुनि सुत बचन कहत कैकेई। मरमु पाछि जनु माहुर देई॥
आदिहु तें सब आपनि करनी। कुटिल कठोर मुदित मन बरनी॥

दो०-भरतहि बिसरेउ पितुमरन, सुनत राम बनगौन।
हेतु अपनपउ जानि जिय, थकित रहे धरि मौन ॥१६१॥

बिकल बिलोकि सुतहि समुझावति। मनहुँ जरे पर लोन लगावति॥
तात राउ नहिं सोचन जोगू। बिढइ सुकृत जस कीन्हेउ भोगू॥
जीवत सकल जनम फल पाये। अन्त अमर पति सदन सिधाये॥
अस अनुमानि सोच परिहरहू। सहित समाज राज पुर करहू॥
सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू। पाके छत जनु लाग अँगारू॥
धीरज धरि भरि लेहि उसासा। पापिनि सबहिं भाँति कुल नासा॥
जौं पै कुरुचि रही अति तोही। जनमत काहे न मारेसि मोही॥
पेड काटि तैं पालउ सींचा। मीनजियन हित बारि उलीचा॥

दो०-हसबंस दसरथ जनकु, राम लषन से भाइ।
जननी तू जननी भई, बिधि सन कछु न बसाइ ॥१६२॥

जबतें कुमति कुमत जिय ठयऊ। खंड खंड होइ हृदय न गयऊ॥
बर माँगत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुह परेउ न कीरा॥
भूप प्रतीति तोरि किमि कीन्ही। मरनकाल बिधि मति हरि लीन्ही॥
बिधिहु न नारि हृदयगति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी॥
सरल सुसील धरमरत राऊ। सो किमि जानइ तीयसुभाऊ॥
अस को जीव जन्तु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नाहीं॥
भे अति अहित राम तेउ तोही। को तू अहसि सत्य कहु मोही॥
जो हसि सो हसि मुह मसिलाई। आंखि ओटि उठि बैठहि जाई॥

दो०-राम बिरोधी हृदय तें, प्रगट कीन्ह बिधि मोहि ।
मो समान को पातकी, बादि कहउँ कछु तोहि ॥१६३॥

सुनि सत्रुघ्न मातु कुटिलाई । जरहिं गात रिस कछु न बसाई ॥
तेहि अवसर कुबरी तहँ आई । बसन बिभूषन बिबिध बनाई ॥
लखि रिस भरेउ लषन लघु भाई । बरत अनल घृतआहुति पाई ॥
हुमगि लात तकि कूबर मारा । परि मुह भरि महि करत पुकारा ॥
कूबर टूटेउ फूट कपारू । दलितदसन मुख रुधिरप्रचारू ॥
आह दइव मैं काह नसावा । करत नीक फल अनइस पावा ॥
सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी । लगे घसीटन धरि धरि चोटी ॥
भरत दयानिधि दीन्ह छुड़ाई । कौसल्या पहिं गे दोउ भाई ॥

दो०-मलिनबसन बिबरन बिकल, कृस सरीर दुखभार ।
कनक-कलप बर-बेलि बन, मानहुँ हनी तुषार ॥१६४॥

भरतहिं देखि मातु उठि धाई । मुरुछित अवनि परी झइँ आई ॥
देखत भरत बिकल भये भारी । परे चरन तनदसा बिसारी ॥
मातु तात कहँ देहि देखाई । कहँ सिय रामलषन दोउ भाई ॥
कैकइ कत जननी जग माँझा । जौं जनमि त भइ काहे न बाँझा ॥
कुलकलंक जेहि जनमेउ मोही । अपजसभाजन प्रिय-जन द्रोही ॥
को तिभुवन मोहि सरिस अभागी । गति असि तोरि मातु जेहि लागी ॥
पितु सुरपुर बन रघु नर-केतू । मैं केवल सब अनरथहेतू ॥
धिग मोहि भयउँ बेनु-बन आगी । दुसह - दाह दुख-दूषन भागी ॥

दो०-मातु भरत के बचन मृदु, सुनि पुनि उठी सँभारि ।
लिये उठाइ लगाइ उर, लोचन मोचति बारि ॥१६५॥

सरल सुभाइ माय हिय लाये । अतिहित मनहुँ राम फिरि आये ॥
भेंटेउ बहुरि लषन लघु भाई । सोक सनेह न हृदय समाई ॥
देखि सुभाय कहत सब कोई । राममातु अस काहे न होई ॥
माता भरत गोद बैठारे । आँसु पोंछि मृदुबचन उचारे ॥

अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू॥
जनि मानहु हिय हानि गलानी। काल-करम-गति अघटित जानी॥
काहुहि दोस देहु जनि ताता। भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता॥
जो एतेहु दुख मोहि जियावा। अजहुँ को जानइ का तेहि भावा॥

दो०–पितुआयसु भूषन बसन, तात तजे रघुबीर।
बिसमउ हरष न हृदय कछु, पहिरे बलकल चीर॥१६६॥

मुख प्रसन्न मन राग न रोषू। सबकर सब बिधि करि परितोषू॥
चले बिपिन सुनि सिय सँग लागी। रहइ न राम-चरन अनुरागी॥
सुनतहि लषन चले उठि साथा। रहहिं न जतन किये रघुनाथा॥
तब रघुपति सबही सिर नाई। चले संग सिय अरु लघु भाई॥
रामलषन सिय बनहिं सिधाये। गइउँ न संग न प्रान पठाये॥
एहु सब भा इन्ह आँखिन्ह आगे। तउ न तजा तनु प्रान अभागे॥
मोहि न लाज निजनेहु निहारी। रामसरिस सुत मैं महतारी॥
जिअइ मरइ भल भूपति जाना। मोर हृदय सत कुलिस-समाना॥

दो०–कौसल्या के वचन सुनि, भरतसहित रनिवासु।
व्याकुल बिलपत राजगृह, मानहुँ सोकनिवासु॥१६७॥

बिलपहि बिकल भरत दोउ भाई। कौसल्या लिये हृदय लगाई॥
भाँति अनेक भरत समुझाये। कहि बिबेकमय बचन सुनाये॥
भरतहु मातु सकल समुझाई। कहि पुरान स्रुति कथा सुहाई॥
छल बिहीन सुचि सरल सुबानी। बोले भरत जोरि जुगपानी॥
जे अघ मातु पिता गुरु मारे। गाइ गोठ महि-सुर पुर जारे॥
जे अघ तिय-बालक-बध कीन्हे। मीत महीपति माहुर दीन्हे॥
जे पातक उपपातक अहहीं। करम बचन मन भव कवि कहहीं॥
ते पातक मोहि होहु बिधाता। जौं एहु होइ मोर मत माता॥

दो०–जे परिहरि हरि-हर चरन, भजहिं भूतगन घोर।
तिन्ह कइ गति मोहि देउ बिधि, जौं जननी मत मोर॥१६८॥

बेचहिं बेद धरम दुहि लेहीं। पिसुन पराय पाप कहि देहीं॥
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी। वेदबिदूषक बिस्वबिरोधी॥
लोभी लंपट लोलुपचारा। जे ताकहिं परधन परदारा॥
पावउँ मैं तिन्ह कै गति घोरा। जौं जननी यहु संमत मोरा॥
जे नहिं साधुसंग अनुरागे। परमारथपथ बिमुख अभागे॥
जे न भजहिं हरि नरतनु पाई। जिन्हहि न हरिहर सुजस सुहाई॥
तजि स्रुतिपंथ बामपथ चलहीं। बंचक बिरचि बेपु जग छलहीं॥
तिन्ह कइ गति मोहि संकर देऊ। जननी जौं एहु जानउँ भेऊ॥

दो०-मातु भरत के बचन सुनि, साँचे सरल सुभाय।
कहति रामप्रिय तात तुम्ह, सदा बचन मन काय॥१६६॥

राम प्रान ते प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रान तें प्यारे॥
बिधु बिष चुवइ स्रवइ हिमु आगी। होइ बारिचर बारिबिरागी॥
भये ज्ञान बरु मिटइ न मोहू। तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार एहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं॥
अस कहि मातु भरत हिय लाये। थन पय स्रवहिं नयन जल छाये॥
करत बिलाप बहुत एहि भाँती। बैठहिं बीति गई सब राती॥
बामदेव बसिष्ठ तब आये। सचिव महाजन सकल बोलाये॥
मुनि बहुभाँति भरत उपदेसे। कहि परमारथ बचन सुदेसे॥

दो०-तात हृदय धीरज धरहु, करहु जो अवसर आजु।
उठे भरत गुरु बचन सुनि, करन कहेउ सब काजु॥१७०॥

नृपतनु बेद बिहित अन्हवावा। परमबिचित्र बिमान बनावा॥
गहि पग भरत मातु सब राखी। रही राम दरसन अभिलाखी॥
चन्दन अगर भार बहु आये। अमित अनेक सुगन्ध सुहाये॥
सरजु तीर रुचि चिता बनाई। जनु सुर-पुर-सोपान सुहाई॥
एहि बिधि दाहक्रिया सब कीन्ही। बिधिवत न्हाइ तिलांजलि दीन्ही॥
सोधि सुमृति सब बेद पुराना। कीन्ह भरत दसगात बिधाना॥

जहँ जस मुनिवर आयसु दीन्हा। वहँ तस सहस भाँति सब १६
भये विशुद्ध दिये सब दाना। धेनु वाजि गज वाहन नाना।

दो०-सिंहासन भूपन वसन, अन्न धरनि धन धाम।
दिये भरत लहि भूमिसुर, भे परिपूरन काम ॥१७१॥

पितुहित भरत कीन्ह जस करनी। सो मुख लाखहु जाइ न वरनी
सुदिन सोधि मुनिवर तब आये। सचिव महाजन सकल
बैठे राजसभा सब जाई। पठये बोलि भरत दोउ भाई।
भरत वसिष्ठ निकट बैठारे। नीति धरम मय वचन उचारे।
प्रथम कथा सब मुनिवर वरनी। केकइ कुटिल कीन्ह जसि करनी
भूप धरमव्रत सत्य सराहा। जेहि तनु परिहरि प्रेम निबाह
कहत राम गुन-सील-सुभाऊ। सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ
बहुरि लपन सिय प्रीति बखानी। सोक सनेह मगन मुनि ज्ञा

दो०-सुनहु भरत भावी प्रवल विलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभ जीवन मरन, जस अपजस विधि हाथ ॥१७

अस विचारि केहि देइय दोपू। व्यर्थ काहि पर कीजिय रापू।
तात विचार करहु मन माहीं। सोच जोग दसरथ नृप नाहीं
सोचिय विप्र जो वेदविहीना। तजि निज धरम विपय लवलीन
सोचिय नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समान
सोचिय वयसु कृपन धनवानू। जो न अतिथि सिवभगति सुजा
सोचिय सूद्र विप्र अपमानी। मुखर मानप्रिय ज्ञानगुमानी
सोचिय पुनि पतिवंचक नारी। कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी
सोचिय वटु निजव्रत परिहरई। जो नहिं गुर आयसु अनुसर

दो०-सोचिय गृही जो मोहवस, करइ करमपथ त्याग।
सोचिय जती प्रपचरत, विगत विवेक विराग ॥१७२॥

वैखानस सोइ सोचन जोगू। तप विहाइ जेहि भावइ भोग
सोचिय पिसुन अकारन क्रोधी। जननि-जनक गुरु बधु विरोधी

बिधि सोचिय परअपकारी। निज-तनुपोषक निरदय भारी॥
ोचनीय सबही बिधि सोई। जो न छाडि छल हरिजन होई॥
ोचनीय नहिं कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥
यउ न अहइ न होनिहुहारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा॥
धि हरिहर सुरपति दिसिनाथा। बरनहिं सब दसरथ-गुन-गाथा॥

दो०-कहहु तात केहि भाँति कोउ, करहि बडाई तासु।
राम लषन तुम सत्रुहन, सरिस सुअन सुचि जासु॥१७४॥

सब प्रकार भूपति बडभागी। बादि बिषाद करिय तेहि लागी॥
यह सुनि समुझि सोच परिहरहू। सिर धरि राजरजायसु करहू॥
राय राजपद तुम्ह कहँ दीन्हा। पिता बचन फुर चाहिय कीन्हा॥
तजे राम जेहि बचनहि लागी। तनु परिहरेउ रामबिरहागी॥
नृपहिं बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना। करहु तात पितु बचन प्रमाना॥
करहु सीस धरि भूपरजाई। यह तुम्ह कहँ सब भाति भलाई॥
परसुराम पितु आज्ञा राखी। मारी मातु लोग सब साखी॥
तनय जजातिहि जौबन दयऊ। पितु अज्ञा अघ अजस न भयऊ॥

दो०-अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के, बसहिं अमरपति ऐन॥१७५॥

अवसि नरेस बचन फुर करहू। पालहु प्रजा सोक परिहरहू॥
सुरपुर नृप पाइहि परितोषू। तुम्ह कहँ सुकृत सुजस नहिं दोषू॥
बेदबिहित संमत सबही का। जेहि पितु देइ सो पावइ टीका॥
करहु राज परिहरहु गलानी। मानहु मोर बचन हित जानी॥
सुनि सुख लहब राम बैदेही। अनुचित कहब न पंडित केही॥
कौसल्यादि सकल महतारी। तेउ प्रजासुख होहिं सुखारी॥
प्रेम तुम्हार राम सब जानहिं। सो सब बिधि तुम्हसन भल मानहिं
सौंपेहु राज राम के आये। सेवा करेहु सनेह सुहाये॥

लीन्ह विधनपन अपजसु आपू। दीन्हेउ प्रजहि सोकु सतापू।
मोहि दीन्ह सुख सुजस सुराजू। कीन्ह कैकई सब कर काजू।
एहि ते मोर काह अब नीका। तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका।
कैकइजठर जनमि जग माहीं। यह मो कहँ कछु अनुचित नाहीं।
मोरि बात सब विधहि बनाई। प्रजा पच कत करहु सहाई।

दो०-ग्रहग्रहीत पुनि बातवस, तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पियाइय बारुनी, कहहु कवन उपचार ॥१८॥

कैकइसुअन जोग जग जोई। चतुर बिरंचि दीन्ह मोहि सोई।
दसरथतनय राम - लघु - भाई। दीन्ह मोहि बिधि बादि बड़ाई।
तुम्ह सब कहहु कढावन टीका। रायरजायसु सब कहँ नीका।
उतर देउँ केहि बिधि केहि केही। कहहु सुखेन जथारुचि जेही।
मोहि कुमातु समेत निहाई। कहहु कहिहि को कीन्ह भलाई॥
मो बिनु को सचराचर माहीं। जेहि सियराम प्रानप्रिय नाहीं॥
परमहानि सब कह बड लाहू। अदिन मोर नहि दूषन काहू।
ससय सील प्रेम बस अहहू। सबइ उचित सब जो कछु कहहू॥

दो०-राममातु सुठि सरलचित, मो पर प्रेम बिसेखि।
कहइ सुभाय सनेहबस, मोरि दीनता देखि ॥१८॥

गुरु बिबेक सागर जग जाना। जिन्हहि बिस्व कर-बदर समाना।
मो कहँ तिलकसाज सज सोऊ। भये बिधि बिमुख बिमुख सब काऊ।
परिहरि राम सीय जग माहीं। कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं।
सो मैं सुनब सहब सुख मानी। अतहु कीच तहाँ जह पानी।
डर न मोहि जग कहहि कि पोचू। परलोकहु कर नाहिं न सोचू।
एकहि उर बस दुसह दवारी। मोहि लगि भे सिय राम दुखारी।
जीवनलाहु लखन भल पावा। सब तजि राम-चरन मन लावा।
मोर जनम रघुबर बन लागी। झूठ काह पछिताउँ अभागी।

दो०-आपनि दारुन दीनता, कहउँ सबहि सिर नाइ।
देखे बिनु रघुनाथ पद, जिय कै जरनि न जाइ ॥१८३॥

आन उपाउ मोहि नहि सूझा। को जिय कै रघुबर बिनु बूझा ॥
एकहि आँक इहइ मन माहीं। प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं ॥
यद्यपि मैं अनमल अपराधी। भइ मोहि कारन सकल उपाधी ॥
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहिं कृपा बिसेखी॥
सील सकुचि सुठि सरल सुभाऊ। कृपा-सनेह-सदन रघुराऊ ॥
अरिहु क अनभल कीन्ह न रामा। मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा ॥
तुम्ह पै पाँच मोर भल मानी। आयसु आसिष देहु सुबानी ॥
जेहि सुनि बिनय मोहि जनु जानी। आवहि बहुरि राम रजधानी ॥

दो०-जद्यपि जनम कुमातु ते, मैं सठ सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहहि, मोहि रघु बीर भरोस ॥१८४॥

भरत बचन सब कहँ प्रिय लागे। राम-सनेह-सुधा जनु पागे ॥
लोग बियोग बिषम बिष दागे। मंत्र सबीज सुनत जनु जागे ॥
मातु सचिव गुरु पुर-नर नारी। सकल सनेहबिकल भये भारी ॥
भरतहि कहहि सराहि सराही। राम प्रेम मूरति-तनु आही ॥
तात भरत अस काहे न कहहू। प्रानसमान रामप्रिय अहहू ॥
जो पामर अपनी जड़ताईं। तुम्हहि सुगाइ मातुकुटिलाईं ॥
सो सठ कोटिक पुरुष समेता। बसहि कलपसत नरक निकेता ॥
अहि अघ अवगुन नहिं मनि गहई। हरइ गरल दुख दारिद दहई ॥

दो०-अवसि चलिय बन राम जहँ, भरत मंत्र भल कीन्ह।
सोकसिंधु बूड़त सबहिं, तुम्ह अवलंबन दीन्ह ॥१८५॥

भा सबके मन मोद न थोरा। जनु घनधुनि सुनि चातक मोरा॥
चलत प्रात लखि निरनउ नीके। भरत प्रानप्रिय भे सबही के ॥
मुनिहि बंदि भरतहिं सिर नाईं। चले सकल घर बिदा कराईं ॥

धन्य भरत जीवन जग माहीं। सील सनेह सराहत जाहीं॥
कहहिं परसपर भा बड काजू। सकल चलइ कर साजहिं साजू॥
जेहि राखहिं रहु घर रखवारी। सो जानइ जनु गरदनि मारी॥
कोउ कह रहन कहिय नहिं काहू। को न चहइ जग जीवनलाहू॥

दो० जरउ सो सपति सदनसुख, सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो रामपद, करइ न सहज सहाइ॥१८६॥

घर घर साजहि वाहन नाना। हरप हृदय परभात पयाना॥
भरत जाइ घर कीन्ह विचारू। नगर बाजि गज भवन भँडारू॥
सपति सब रघुपति कै आही। जौं विनु जतन चलउँ तजि ताही॥
तौ परिनाम न मोरि भलाई। पापसिरोमनि साइँदोहाई॥
करइ स्वामिहित सेवक सोई। दूसन कोटि देइ किन कोई॥
अस विचारि सुचि सेवक बोले। जे सपनेहुँ निजधरम न डोले॥
कहि सब मरम धरम सब भाखा। जो जेहि लायक सो तहँ राखा॥
करि सब जतन राखि रखवारे। राममातु पहँ भरत सिधारे॥

दो०-आरत जननी जानि सब, भरत सनेहसुजान।
कहेउ सजावन पालकी, सजन सुखासन जान॥१८७॥

चक चकई जिमि पुर-नर नारी। चलत प्रात उर आरत भारी॥
जागत सब निसि भयउ बिहाना। भरत बोलाये सचिव सुजाना॥
कहेउ लेहु सब तिलकसमाजू। बनहिं देब मुनि रामहि राजू॥
बेगि चलहु सुनि सचिव जोहारे। तुरत तुरग रथ नाग सँवारे॥
अरुंधती अरु अगिनिसमाजू। रथ चढि चले प्रथम मुनिराजू॥
विप्रवृंद चढि वाहन नाना। चले सकल तप-तेज निधाना॥
नगर लोग सब सजि सजि नाना। चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना॥
सिबिका सुभग न जाहिं बखानी। चढि चढि चलत भईं सब रानी॥

दो०-सौंपि नगर सुचि सेवकन, सादर सबहिं चलाइ।
सुमिरि राम सिय-चरन तब, चले भरत दोउ भाइ॥१८८॥

राम दरस-बस सब नरनारी। जनु करि करिनि चले तकि बारी॥
बन सिय राम समुझि मन माहीं। सानुज भरत पयादेहि जाहीं॥
देखि सनेह लोग अनुरागे। उतरि चले हय गय रथ त्यागे॥
जाइ समीप राखि निजडोली। राममातु मृदुबानी बोली॥
तात चढहु रथ बलि महतारी। होइहि प्रिय परिवार दुखारी॥
तुम्हरे चलत चलिहि सब लोगू। सकल सोककृस नहिं मग जोगू॥
सिर धरि बचन चरन सिर नाई। रथ चढि चलत भये दोउ भाई॥
तमसा प्रथमदिवस करि बासू। दूसर गोमतितीर निवासू॥

दो०-पय अहार फल असन एक, निसि भोजन एक लोग।
करत रामहित नेम ब्रत, परिहरि भूषन भोग॥१८९॥

सई तीर बसि चले बिहाने। सृंगबेरपुर सब नियराने॥
समाचार सब सुने निषादा। हृदय बिचार करइ सबिषादा॥
कारन कवन भरत बन जाहीं। है कछु कपटभाउ मन माहीं॥
जौं पै जिय न होति कुटिलाई। तौ कत लीन्ह संग कटकाई॥
जानहि सानुज रामहिं मारी। करउँ अकटक राज सुखारी॥
भरत न राजनीति उर आनी। तब कलंक अब जीवनहानी॥
सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहिं समर न जीतनिहारा॥
का आचरज भरत अस करहीं। नहिं विषबेलि अमियफल फरहीं॥

दो०-अस बिचारि गुह ज्ञाति सन, कहेउ सजग सब होहु।
हथबाँसहु बोरहु तरनि, कीजिय घाटारोहु॥१९०॥

होहु सँजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरइ के ठाटा॥
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जियत न सुरसरि उतरन देऊँ॥
समर मरन पुनि सुर सरि तीरा। रामकाज छनभगु सरीरा॥
भरत भाइ नृप मैं जन नीचू। बडे भाग असि पाइब मीचू॥
स्वामिकाज करिहउँ रन रारी। जस धवलिहउँ,भुवन दस चारी॥
तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरे। दुहूँ हाथ मुदमोदक मोरे॥

साधुसमाज न जा कर लेखा। रामभगत महँ जासु
जाय जियत जग सो महिभारू। जननी - जौबन बि

दो०-बिगतबिषाद निषादपति, सबहि बढाइ उछाह
सुमिरि राम माँगेउ तुरत, तरकस धनुष सनाह

बेगहि भाइहु सजहु सँजोऊ। सुनि रजाइ कदराइ
भलेहि नाथ सब कहहिं सहरषा। एकहिं एक बढावहि
चले निषाद जोहारि जोहारी। सूर सकल रन रू
सुमिरि राम पद पकज पनही। भाथी बाँधि चढाई
अँगरी पहिरि कूडि सिर धरहीं। फरसा बाँस सेल स
एक कुसल अति ओडन खाँडे। कूदहिं गगन मनहुँ छि
निज निज साज समाज बनाई। गुहरावतहि जोहारे
घेरि सुभट सब रायक जाने। लेइ लेइ नाम सकल

दो०-भाइहु लावहु धोख जनि, आजु काज बड मोहि
सुनि सरोष बोले सुभट, बीर अधीर न होहिं

रामप्रताप नाथ बल तोरे। करहि कटकु बिनु भट
जीवत पाउ न पाछे धरहीं। रुंड मुंड मय मेदिनि
दीख ; निषादनाथ भल टोलू। कहेउ बजाउ जुझा
एतना कहत छींक भइ बायें। कहेउ सगुनिअन्ह खेत
बूढ एक कह सगुन बिचारी। भरतहि मिलिय न होइ
रामहिं भरत मनावन जाहीं। सगुन कहइ अस बिग्र
सुनि गुह कहइ नीक कह बूढा। सहसा करि पछिताहिं
भरत-सुभाउ सील बिनु बूझे। बडि हितहानि जानि

दो०-गहहु घाट भट सिमिटि सब, लेउँ मरम मिलि जा
बूझि मित्र अरि मध्य गति, तब तसि करिहउँ आ

लखब सनेहु सुभाय सुहाये। बैर प्रीति नहिं दुरइ दुराये॥
अस कहि भेंट सँजोवन लागे। कंद मूल फल खग मृग माँगे॥
मीन पीन पाठीन पुराने। भरि भरि भार कहारन्ह आने॥
सकल साजु सजि मिलन सिधाये। मंगलमूल सगुन सुभ पाये॥
देखि दूरि ते कहि निजनामू। कीन्ह मुनीसहि दण्डप्रनामू॥
जानि रामप्रिय दीन्ह असीसा। भरतहिं कहेउ बुझाइ मुनीसा॥
रामसखा सुनि स्यंदन त्यागा। चले उतरि उमगत अनुरागा॥
गाउँ जाति गुह नाउँ सुनाई। कीन्ह जोहारु माथ महि लाई॥

दो०-करत दंडवत देखि तेहि, भरत लीन्ह उर लाइ।
मनहुँ लषन सन भेंट भइ, प्रेम न हृदय समाइ॥१६४॥

भेंटत भरत ताहि अतिप्रीती। लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती॥
धन्य धन्य धुनि मंगलमूला। सुर सराहि तेहि बरिसहिं फूला॥
लोक बेद सब भाँतिहि नीचा। जासु छाँह छुइ लेइय सींचा॥
तेहि भरि अंक राम-लघु भ्राता। मिलत पुलकपरिपूरित गाता॥
राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिन्हहिं न पाप पुंज समुहाहीं॥
एहि तौ राम लाइ उर लीन्हा। कुलसमेत जग पावन कीन्हा॥
करम नास जल सुरसरि परई। तेहि को कहहु सीस नहिं धरई॥
उलटा नाम जपत जग जाना। बालमीकि भये ब्रह्मसमाना॥

दो०-स्वपच सबर खस जवन जड, पामर कोल किरात।
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात॥१६५॥

नहिं अचरज जुग जुग चलि आई। केहि न दीन्ह रघुबीर बड़ाई॥
राम नाम-महिमा सुर कहहीं। सुनि सुनि अवध लोग सुख लहहीं॥
रामसखहि मिलि भरत सप्रेमा। पूछी कुसल सुमंगल छेमा॥
देखि भरत कर सील सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू॥
सकुच सनेह मोद मन बाढा। भरतहिं चितवत एकटक ठाढा॥
धरि धीरज पद बंदि बहोरी। बिनय सप्रेम करत कर जोरी॥

कुसलमूल पदपकज पेखी। मैं तिहुँ काल कुसल निन लेखी॥
अन प्रभु परम अनुग्रह तोरे। सहित कोटि कुन मगल मोरे॥

दो०–समुझि मोरि करतूति कुल, प्रभु महिमा जिय जोइ।
जो न भजइ रघु-बीर पद जग बिधिबचित सोइ॥१९६॥

कपटी कायर कुमति कुजाती। लोक वेद बाहर सब भाँती॥
राम कीन्ह आपन जबही तें। भयउ भुवन भूषन तबही तें॥
देखि प्रीति सुनि बिनय सुहाई। मिलेउ बहोरि लखन लघु भाई॥
कहि निषाद निज नाम सुबानी। सादर सकल जोहारी रानी॥
जानि लषनसम देहिं असीसा। जियहु सुखी सय लाख बरीसा॥
निरखि निषाद नगर नर-नारी। भये सुखी जनु लषन निहारी॥
कहहिं लहेउ एहि जीवन लाहू। भेंटेउ रामभद्र भरि बाहू॥
सुनि निषाद निज भाग-बडाई। प्रमुदित मन लै चलेउ लेवाई॥

दो०–सनकारे सेवक सकल, चले स्वामि रुख पाइ।
घर तरु तर सर बाग बन, बास बनायन्हि जाइ॥१९७॥

सृंगबेरपुर भरत दीख जब। भे सनेहबस अंग सिथिल तब॥
सोहत दिये निषादहि लागू। जनु तनु धरे बिनय अनुरागू॥
एहि बिधि भरत सेन सब संगा। दीख जाइ जगपावनि गंगा॥
रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भा मन मगन मिले जनु रामू॥
करहिं प्रनाम नगर-नर नारी। मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी॥
करि मज्जनु माँगहिं कर जोरी। रामचन्द्रपद प्रीति न थोरी॥
भरत कहेउ सुरसरि तब रेनू। सकल-सुखद-सेवक-सुर धेनू॥
जोरि पानि बर मागउँ एहू। सीय राम पद सहज सनेहू॥

दो०–एहि बिधि मज्जन भरत करि, गुरु अनुसासन पाइ।
मातु नहानी जानि सब, डेरा चले लेवाइ॥१९८॥

जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा। भरत सोधु सबही कर लीन्हा॥
गुरु सेवा करि आयसु पाई। राममातु पहिं गे दोउ भाई॥
चरन चापि कहि कहि मृदुबानी। जननी सकल भरत सनमानी॥
भाइहि सौंपि मातुसेवकाई। आपु निषादहि लीन्ह बोलाई॥
चले सखा कर सों कर जोरे। सिथिल सरीर सनेहु न थोरे॥
पूछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ। नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ॥
जहँ सिय राम लषन निसि सोये। कहत भरे जल लोचनकोये॥
भरत बचन सुनि भयउ बिषादू। तुरत तहाँ लेइ गयउ निषादू॥

दो०-जहँ सिंसुपा पुनीत तरु, रघुबर किय बिस्रामु।
अतिसनेह सादर भरत, कीन्हे दंड प्रनामु॥१९९॥

कुस-साथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रनाम प्रदच्छिन जाई॥
चरन रेख रज आँखिन्ह लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई॥
कनकबिंदु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीयसम लेखे॥
सजल बिलोचन हृदय गलानी। कहत सखा सन बचन सुबानी॥
श्रीहत सीयबिरह दुतिहीना। जथा अवध नरनारि मलीना॥
पिता जनक देउँ पटतर केही। करतल भोग जोग जग जेही॥
ससुर भानु कुल भानु भुआलू। जेहि सिहात अमरावतिपालू॥
प्राननाथ रघुनाथ गोसाईं। जो बड़होत सो रामबड़ाईं॥

दो०-पतिदेवता सुतीय-मनि, सीय साथरी देखि।
बिदरत हृदय न हहरि हर, पबितें कठिन बिसेखि॥२००॥

लालनजोग लषन लघु लोने। भे न भाय अस अहहिं न होने॥
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय-रघुबीरहिं प्रानपियारे॥
मृदुमूरति सुकुमार सुभाऊ। ताति बाउ तन लाग न काऊ॥
ते बन सहहिं बिपति सब भाँती। निदरे कोटि कुलिस एहि छाती॥
राम जनमि जगु कीन्ह उजागर। रूप सील सुख सब गुनसागर॥

पुरजन परिजन गुरु पितु माता। राम सुभाउ सबहिं सुखदाता॥
बैरिउ राम बड़ाई करहीं। बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं॥
सारद कोटि कोटि सत सेषा। करि न सकहिं प्रभु गुन गन लेखा॥

दो०—सुखसरूप रघुबंस मनि, मंगल-मोद निधान।
ते सोवत कुस डासि महि, बिधिगति अति बलवान॥२०१॥

राम सुना दुख कानन काऊ। जीवनतरु जिमि जोगवत राऊ॥
पलक नयन फनि मनि जेहि भाँती। जोगवहिं जननि सकल दिनराती॥
ते अब फिरत बिपिन पदचारी। कन्द-मूल फल-फूल अहारी॥
धिग कैकेइ अमंगल मूला। भइसि प्रान प्रियतम प्रतिकूला॥
मैं धिगधिग अघउदधि अभागी। सब उतपात भयउ जेहि लागी॥
कुलकलंक करि सृजेउ बिधाता। साइँद्रोह मोहि कीन्ह कुमाता॥
सुनि सप्रेम समुझाव निषादू। नाथ करिय कत बादि बिषादू॥
राम तुम्हहि प्रिय तुम्ह प्रियरामहिं। एह निरजोस दोसु बिधि बामहिं॥

छंद-बिधि बाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही बावरी।
तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सराहन रावरी॥
तुलसी न तुम्ह सो राम प्रीतम कहत हौं सौंहें किये।
परिनाम मंगल जानि अपने आनिये धीरज हिये॥

सो०—अन्तरजामी राम, सकुच सप्रेम कृपायतन।
चलिय करिय बिश्राम, यह बिचार दृढ़ आनि मन॥२०२॥

सखाबचन सुनि उर धरि धीरा। बास चले सुमिरत रघुबीरा॥
यह सुधि पाइ नगर नर नारी। चले बिलोकन आरत भारी॥
परदछिना करि करहिं प्रनामा। देहिं कैकइहि खोरि निकामा॥
भरि भरि बारि बिलोचन लेहीं। बाम बिधातहि दूषन देहीं॥
एक सराहहिं भरत सनेहू। कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू॥
निंदहिं आपु सराहि निषादहिं। को कहि सकइ बिमोह बिषादहिं॥

एहि विधि राति लोग सब जागा। भा भिनुसारु गुदारा लागा॥
गुरुहिं सुनाव चढाइ सुहाई। नई नाव सब मातु चढाई॥
दंड चारि महँ भा सबु पारा। उतरि भरत तब सबहि सँभारा॥

दो०-प्रातक्रिया करि मातु पद, बंदि गुरुहि सिर नाइ।
आगे किये निषादगन, दीन्हेउ कटक चलाइ॥२०३॥

कियेउ निषादनाथ अगुआई। मातु पालकी सकल चलाई॥
साथ बुलाइ भाइ लघु दीन्हा। बिप्रन सहित गवन गुरु कीन्हा॥
आपु सुरसरहिं कीन्ह प्रनामू। सुमिरे लषनसहित सियरामू॥
गवने भरत पयादेहि पाये। कोतल संग जाहिं डोरिआये॥
कहहिं सुसेवक बारहिं बारा। होइय नाथ अस्व असवारा॥
रामु पयादेहि पाय सिधाये। हम कहँ रथ गज बाजि बनाये॥
सिरबल जाउँ उचित अस मोरा। सबतें सेवकधरम कठोरा॥
देखि भरतगति सुनि मृदुबानी। सब सेवकगन गरहिं गलानी॥

दो०-भरत तीसरे पहर कहँ, कीन्ह प्रवेसु प्रयाग।
कहत राम सिय राम सिय, उमगि उमगि अनुराग॥२०४॥

झलका झलकत पायन कैसे। पंकजकोस ओसकन जैसे॥
भरत पयादेहि आये आजू। भयउ दुखित सुनि सकलसमाजू॥
खबरि लीन्ह सब लोग नहाये। कीन्ह प्रनाम त्रिबेनिहि आये॥
सबिधि सितासित नीर नहाने। दिये दान महिसुर सनमाने॥
देखत स्यामल - धवल - हिलोरे। पुलकि सरीर भरत कर जोरे॥
सकल - काम - प्रद तीरथराऊ। बेदबिदित जग प्रगट प्रभाऊ॥
माँगउँ भीख त्यागि निजधरमू। आरत काह न करइ कुकरमू॥
अस जिय जानि सुजान सुदानी। सफल करहिं जग जाचकबानी॥

दो०-अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति रामपद, यह बरदान न आन॥२०५॥

जानहु राम कुटिल करि मोही। लोग कहउ गुरु-साहिब-द्रोही
सीता राम-चरन रति मोरे। अनुदिन बढउ अनुग्रह तोरे।
जलद जनम भरि सुरति बिसारउ। जाचत जल पबिपाहन डारउ
चातक रटनि घटे घटि जाई। बढे प्रेम सब भाँति भलाई।
कनकहि बान चढइ जिमि दाहे। तिमि प्रिय तम पद नेम निबाहे।
भरत बचन सुनि माँझ त्रिवेनी। भइ मृदुवानि सु-मगल देनी।
तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू। राम-चरन-अनुराग अगाधू।
बादि गलानि करहु मन माहीं। तुम्ह सम रामहिं कोउ प्रिय नाहीं।

दो०–तनु पुलकेउ हिय हरप सुनि, बेनिबचन अनुकूल।
भरत धन्य कहि धन्य सुर, हरपित बरपहिं फूल

प्रमुदित तीरथ-राज-निवासी। बैपानस बटु गृही उदासी।
कहहिं परसपर मिलि दस पाँचा। भरत सनेह सील सुचि सा॰चा।
सुनत राम-गुन-ग्राम सुहाये। भरद्वाज मुनिवर पहिं आये॥
दडप्रनाम करत मुनि देखे। मूरतिवत भाग निज
धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे। दीन्हि असीस कृतारथ
आसन दीन्ह नाइ सिर बैठे। चहत सकुच गृह जनु भनि पैठे।
मुनि पूछब कछु यह बड सोचू। बोले रिपि लखि सीलसकोचू।
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई। बिधिकरतब पर कछु न बसाई।

दो०–तुम्ह गलानि जिय जनि करहु, समुझि मातु करतूति।
तात कैकइहि दोप नहिं, गई गिरा मतिधूति ॥२०७॥

यहउ कहत भल कहहि न कोऊ। लोक वेद बुधसमत दोऊ।
तात तुम्हार बिमलजस गाई। पाइहि लोकउ बेद बडाई।
लोक बेद समत सब कहई। जेहि पितु देइ राजु सो लहई।
राउ सत्यव्रत तुम्हहिं बोलाई। देत राज सुख धरम बडाई॥
रामगवन घन अनरथमूला। जो सुनि सकल बिस्व भइ सूला॥
सो भावीबस रानि अयानी। करि कुचालि अवहु पछितानी॥

तहउँ तुम्हार अलप अपराधू। कहइ सो अधम अयान असाधू॥
करतेहु राज त तुम्हहिं न दोषू। रामहिं होत सुनत सतोषू॥
दो०–अब अति कीन्हेहु भरत भल, तुम्हहिं उचित मत एहु।
सकल सुमगल-मूल जग, रघुबरचरन सनेहु॥२०८॥

सो तुम्हार धन जीवन प्राना। भूरि भाग को तुम्हहिं समाना॥
यह तुम्हार आचरज न ताता। दसरथसुअन राम प्रिय भ्राता॥
सुनहु भरत रघुपति मन माहीं। प्रेमपात्र तुम सम कोउ नाहीं॥
लषन राम सीतहिं अति प्रीती। निसि सब तुम्हहिं सराहत बीती॥
जाना मरम नहात प्रयागा। मगन होहिं तुम्हरे अनुरागा॥
तुम्ह पर अस सनेह रघुबर के। सुख जीवन जग जस जडनर के॥
यह न अधिक रघुबीर बडाई। प्रनत - कुटुब - पाल रघुराई॥
तुम्ह तउ भरत मोर मत एहू। धरे देह जनु रामसनेहू॥
दो०–तुम कहँ भरत कलक यह, हम सब कहँ उपदेसु।
राम भगति रस सिद्ध हित, भा यह समय गनेसु॥२०९॥

नवबिंधु निमल तात जसु तोरा। रघुबर किंकर - कुमुद - चकोरा॥
उदित सदा अथइहि कबहू ना। घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना॥
कोक तिलोक प्रीति अति करही। प्रभु प्रतापु रबि छबिहि न हरही॥
निसि दिन सुखद सदा सब काहू। ग्रसिहि न कैकइकरतब राहू॥
पूरन रामु - सुप्रेम - पियूषा। गुरुअवमान दोस नहिं दूषा॥
रामभगत अब अमिय अघाहू। कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधाहू॥
भूप भगीरथ सुरसरि आनी। सुमिरत सकल - सुमगल-खानी॥
दसरथ गुन-गन बरनि न जाहीं। अधिक कहा जेहि सम जग नाहीं॥
दो०–जासु सनेह-सकोच बस, राम प्रगट भए आइ।
जे हर हिय-नयननि कबहुँ, निरखे नाहिं अघाइ॥२१०॥

कीरति बिधु तुम्ह कीन्ह अनूपा। जहँ बस राम प्रेम-मृग रूपा॥
तात गलानि करहु जिय जाये। डरहु दरिद्रहि पारस पाये॥

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं। उदासीन तापस बन
सब साधन कर सुफल सुहावा। लषन राम सिय-दरसन
तेहि फल कर फल दरस तुम्हारा। सहित प्रयाग सुभाग हमारा।
भरत धन्य तुम्ह जग जस जयऊ। कहि अस प्रेममगन
सुनि मुनिबचन सभासद हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरस
धन्य धन्य धुनि गगन प्रयागा। सुनि सुनि भरत मगन

दो०—पुलकगात हिय राम सिय, सजल सरोरुह नैन।
करि प्रनाम मुनिमंडलिहिं, बोले गदगद बैन॥ २११॥

मुनि समाज अरु तीरथराजू। साचिहु सपथ अघाइ अकाजू।
एहि थल जौं कछु कहिय बनाई। एहि सम अधिक न अघ अधमाई
तुम्ह सर्वज्ञ कहउँ सतिभाऊ। उर - अंतरजामी रघुराऊ।
मोहि न मातुकरतब कर सोचू। नहिं दुख जिय जग जानहि पोचू
नाहिं न डर बिगरहि परलोकू। पितहु मरन कर मोहि न सोकू
सुकृत सुजस भरि भुवन सुहाये। लछमन राम सरिस सुत
रामबिरह तजि तन छनभंगू। भूप सोच कर कवन प्रसंगू
राम लषन सिय बिनु पग पनहीं। करि मुनिबेष फिरहिं

दो०—अजिन बसन फल असन महि, सयन डासि कुस पात।
बसि तरुतर नित सहत हिम, आतप बरषा बात॥ २१
एहि दुख दाह दहइ नित छाती। भूख न बासर नींद न राती॥
एहि कुरोग कर औषध नाहीं। सोधेउँ सकल बिस्व मन माहीं।
मातु कुमत बढ़ई अघमूला। तेहि हमार हित कीन्ह बसूला।
कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजंत्रू। गाड़ि अवधि पढ़ि कठिन कुमंत्रू॥
मोहि लगि यह कुठाटु तेहिं ठाटा। घालेसि सब जग बारह बाटा।
मिटइ कुजोग राम फिरि आये। बसइ अवध नहिं आन उपाये।
भरतबचन सुनि मुनि सुख पाई। सबहिं कीन्ह बहु भाँति बड़ाई।
तात करहु जनि सोच बिसेखी। सब दुख मिटिहि रामपग देखी।

दो०-करि प्रबोध मुनिबर कहेउ, अतिथि प्रेमप्रिय होहु ।
कंद मूल फल फूल हम, देहिं लेहु करि छोहु ॥२१३॥

सुनि मुनिबचन भरत हिय सोचू । भयउ कुअवसर कठिन सँकोचू ॥
जानि गरुइ गुरुगिरा बहोरी । चरन बंदि बोले कर जोरी ॥
सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा । परमधरम यह नाथ हमारा ॥
भरतबचन मुनिबर मन भाये । सुचि सेवक सिष निकट बोलाये॥
चाहिय कीन्हि भरतपहुनाई । कंद मूल फल आनहु जाई ॥
भलेहि नाथ कहि तिन्ह सिर नाये । प्रमुदित निज निज काज सिधाये॥
मुनिहि सोच पाहुन बड नेवता । तसि पूजा चाहिय जस देवता ॥
सुनि रिधिसिधि अनिमादिक आई । आयसु होइ सो करहिं गोसाई ॥

दो०-रामबिरह व्याकुल भरत, सानुज सहित समाज ।
पहुनाई करि हरहु स्रम, कहा मुदित मुनिराज ॥२१४॥

रिधिसिधिसिर धरि मुनिबर बानी। बडभागिनि आपुहि अनुमानी ॥
कहहिं परसपर सिधि समुदाई । अतुलित अतिथि राम-लघु भाई ॥
मुनिपद बंदि करिय सोइ आजू । होइ सुखी सब राजसमाजू ॥
अस कहि रचे रुचिर गृह नाना । जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना॥
भोग बिभूति भूरि भरि राखे । देखत जिन्हहिं अमर अभिलाखे॥
दासी दास साजु सब लीन्हे । जोगवत रहहिं मनहिं मन दीन्हे ॥
सबसमाज सजि सिधि पल माहीं । जे सुख सुरपुर सपनेहुँ नाहीं ॥
प्रथमहि बास दिये सब केही । सुन्दर सुखद जथारुचि जेही ॥

दो०-बहुरि सपरिजन भरत कहँ, रिषि अस आयसु दीन्ह ।
बिधि-बिसमय दायक बिभव, मुनिबर तपबल कीन्ह ॥२१५॥

मुनिप्रभाउ जब भरत बिलोका । सब लघु लगे लोकपति लोका ॥
सुरसमाज नहिं जाइ बखानी । देखत बिरति बिसारहिं ग्यानी ॥
आसन सयन सुबसन बिताना । बन बाटिका बिहँग मृग नाना॥
सुरभि फूल फल अमियसमाना । बिमल जलासय बिबिध बिधाना॥

असन पान सुचि अमिय अमी से। देखि लोग सकुचात जमी से॥
सुरसुरभी सुरतरु सबही के। लखि अभिलाष सुरेस सची के॥
रितु बसन्त बह त्रिविध बयारी। सब कहँ सुलभ पदारथ चारी॥
स्रक चन्दन बनतादिक भोगा। देखि हरख बिसमयबस लोगा॥

दो०–सपति चकई भरत चक, मुनिआयसु खेलवार।
तेहि निसि आश्रम पींजरा, राखे भा भिनुसार॥२१६॥

कीन्ह निमज्जन तीरथराजा। नाइ मुनिहिं सिरु सहित समाजा॥
रिषिआयसु असीस सिर राखी। करि दण्डवत बिनय बहु भाखी॥
पथ गति कुसल साथ सब लीन्हे। चले चित्रकूटहि चित दीन्हे॥
रामसखा कर दीन्हे लागू। चलत देहधरि जनु अनुरागू॥
नहिं पदत्रान सीस नहिं छाया। प्रेम नेम ब्रत धरम अमाया॥
लषन राम - सिय - पथ-कहानी। पूछत सखहि कहत मृदुबानी॥
राम बास-थल बिटप बिलोके। उर अनुराग रहत नहिं रोके॥
देखि दसा सुर बरषहिं फूला। भइ मृदु महि मग मंगलमूला॥

दो०–किये जाहिं छाया जलद, सुखद बहइ बरबात।
तस मग भयउ न राम कहँ, जस भा भरतहिं जात॥२१७॥

जड चेतन मग जीव घनेरे। जे चितये प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे॥
ते सब भये परम - पद - जोगू। भरतदरस मेटा भवरोगू॥
यह बडि बात भरत कइ नाहीं। सुमिरत जिनहिं राम मनमाहीं॥
बारेक राम कहत जग जेऊ। होत तरनतारन नर तेऊ॥
भरत राम प्रिय पुनि लघु भ्राता। कस न होइ मग मंगलदाता॥
सिद्ध साधु मुनिवर अस कहहीं। भरतहिं निरखि हरष हिय लहहीं॥
देखि प्रभाउ सुरेसहि सोचू। जग भल भलेहि पोच कहँ पोचू॥
गुरु सन कहेउ करिय प्रभु सोई। रामहिं भरतहिं भेंट न होई॥

दो०–राम सकोची प्रेमवस, भरत सप्रेम पयोधि।
बनी बात बिगरन चहति, करिय जतन छल सोधि॥२१८॥

बचन सुनत सुरगुरु मुसुकाने। सहस नयन बिनु लोचन जाने॥
कह गुरु बादि छोभ छल छाड़ू। इहाँ कपट कर होइहि भाँडू॥
माया पति-सेवक सन माया। करइ ते उलटि परइ सुरराया॥
तब कछु कीन्ह रामरुख जानी। अब कुचाल करि होइहि हानी॥
सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निजअपराध रिसाहिं न काऊ॥
जो अपराध भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥
लोकहु वेद विदित इतिहासा। यह महिमा जानहिं दुरवासा॥
भरतसरिस को रामसनेही। जग जप राम राम जप जेही॥

दो०-मनहुँ न आनिय अमरपति, रघुबर भगत अकाज।
अजस लोक परलोक दुख, दिन दिन सोकसमाज॥२१६॥

सुनु सुरेस उपदेसु हमारा। रामहिं सेवक परमपियारा॥
मानत सुख सेवकसेवकाई। सेवकबैर बैर अधिकाई॥
यद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पुन्य गुन दोषू॥
करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा॥
तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा॥
अगुन अलेप अमान एक रस। राम सगुन भये भगत-प्रेम बस॥
राम सदा सेवकरुचि राखी। बेद - पुरान - साधु-सुर-साखी॥
अस जिय जानि तजहु कुटिलाई। करहु भरत पद-प्रीति सुहाई॥

दो०-रामभगत परहितनिरत, परदुख दुखी दयाल।
भगतसिरोमनि भरत तें, जनि डरपहु सुरपाल॥२२०॥

सत्यसंध प्रभु सुर हित कारी। भरत राम आयसु-अनुसारी॥
स्वारथबिबस बिकल तुम्ह होहू। भरतदोस नहिं राउर मोहू॥
सुनि सुरबर सुर-गुरु बर बानी। भा प्रमोद मन मिटी गलानी॥
बरषि प्रसून हरषि सुरराऊ। लगे सराहन - भरत सुभाऊ॥
एहि बिधि भरत चले मग जाहीं। दसा देखि मुनि सिद्ध सिहाहीं॥
जबहिं राम कहि लेहिं उसासा। उमगत प्रेम मनहुँ चहुँ पासा॥

द्रवहिं बचन सुनि कुलिस पषाना। पुरजन प्रेम न जाइ बखाना॥
बीच बास करि जमुनहिं आये। निरखि नीरु लोचन जल छाये॥
दो०-रघु-बर-बरन-बिलोकि बर, बारि समेत समाज।
होत मगन बारिधि बिरह, चढ़े बिबेक जहाज॥ २२१॥

जमुनतीर तेहि दिन करि बासू। भयउ समयसम सबहिं सुपासू॥
रातिहिं घाट घाट की तरनी। आईं अगनित जाहिं न बरनी॥
प्रात पार भये एकहि खेवा। तोषे रामसखा की सेवा॥
चले नहाइ नदिहि सिर नाई। साथ निषादनाथ दोउ भाई॥
आगे मुनि-बरबाहन आछे। राजसमाज जाइ सब पाछे॥
तेहि पाछे दोउ बंधु पयादे। भूषन बसन बेष सुठि सादे॥
सेवक सुहृद सचिवसुत साथा। सुमिरत लषन सीय रघुनाथा॥
जहँ जहँ राम बास बिस्रामा। तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा॥
दो०-मगबासी नरनारि सुनि, धामकाम तजि धाइ।
देखि सरूप सनेह सब, मुदित जनमफलु पाइ॥ २२२॥

कहहिं सप्रेम एक एक पाहीं। रामलषन सखि होहिं कि नाहीं॥
वय बपु बरन रूपु सोइ आली। सील सनेह सरिस सम चाली॥
बेष न सो सखि सीय न संगा। आगे अनी चली चतुरंगा॥
नहिं प्रसन्नमुख मानस खेदा। सखि संदेह होइ येहि भेदा॥
तासु तरक तियगन मन मानी। कहहिं सकल तोहि सम न सयानी॥
तेहि सराहि बानी फुरि पूजी। बोली मधुरबचन तिय दूजी॥
कहि सप्रेम सब कथाप्रसंगू। जेहि बिधि राम-राज-रस-भंगू॥
भरतहि बहुरि सराहन लागी। सील सनेह सुभाय सुभागी॥
दो०-चलत पयादेहि खात फल, पिता दीन्ह तजि राज।
जात मनावन रघुबरहिं, भरतसरिस को आज॥ २२३॥

भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दुख-दूषन-हरनू॥
जो कछु कहब थोर सखि सोई। रामबंधु अस काहे न होई॥

हम सब सानुज भरतहिं देखे । भयउँ धन्य जुवतीजन लेखे ॥
सुनि गुन देखि दसा पछिताहीं । कैकेइ-जननि जोग सुत नाहीं ॥
कोउ कह दूषन रानिहि नाहिं न । बिधि सब कीन्ह हमहिं जो दाहिन॥
कहँ हम लोक-बेद बिधि हीनी । लघुतिय कुल करतूति-मलीनी ॥
बसहिं कुदेस कुगाँव कुबामा । कह यह दरसु पुन्यपरिनामा ॥
अस अनद अचरज प्रतिग्रामा । जनु मरुभूमि कलपतरु जामा ॥

दो०-भरतदरस देखत खुलेउ, मग लोगन्ह कर भागु ।
जनु सिंहल बासिन्ह भयउ, बिधिबस सुलभ प्रयागु ॥२२४॥

निज-गुन-सहित राम-गुन गाथा । सुनत जाहिं सुमिरित रघुनाथा ॥
तीरथ मुनिआस्रम सुरधामा । निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा॥
मनहीं मन माँगहिं बरु एहू । सीय-राम - पद - पदुम सनेहू ॥
ी । बैखानस बटु जती उदासी ॥
ी । केहि बन लषनु रामु बैदेही ॥
ीं । भरतहिं देखि जनमफलु लहहीं ॥
। ते प्रिय राम-लषन सम लेखे ॥
। सुनत राम बन-बास कहानी ॥
चले सुमिरि रघुनाथ ।
भरत सरिस सब साथ ॥२२५॥

फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू ॥
मिलहहिं राम मिटिहि दुखदाहू ॥
गहिं सनेहसुरा सब छाके ॥
हबल बचन प्रेमबस बोलहिं ॥
नसिरोमनि सहज सुहावा ॥
ासमेत बसहिं दोउ बीरा ॥
' जय जानकिजीवन रामा ॥
ऽ फिरि अवध चले रघुराजू ॥

दो०-भरत प्रेम तेहि समय जस, तस कहि सकइ न सेषु।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुख, अह मम मलिन-जनेषु॥

सकलसनेह सिथिल रघुबर के। गये कोस दुइ दिनकर ढरके॥
जल थल देखि बसे निसि बीते। कीन्ह गवन रघु-नाथ पिराते॥
उहाँ राम रजनीअवसेखा। जागे सीय सपन अस देखा॥
सहित समाज भरत जनु आये। नाथ बियोग ताप तन ताये॥
सकल मलिनमन दीन दुखारी। देखी सासु आन अनुहारी॥
सुनि सियसपन भरे जल लोचन। भये सोचबस सोच बिमोचन॥
लषन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई॥
अस कहि बधुसमेत नहाने। पूजि पुरारि साधु सनमाने॥

छन्द-सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उतर दिसि देखत भये।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आस्रम गये॥
तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचकित रहे।
सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे॥

सो०-सुनत सुमगल बैन, मन प्रमोद तन पुलक भर।
सरदसरोरुह नैन, तुलसी भरे सनेह जल॥२२७॥

बहुरि सोचबस भे सियरमनू। कारन कवन भरत आगमनू॥
एक आइ अस कहा बहोरी। सेन सग चतुरग न थोरी॥
सो सुनि रामहिं भा अति सोचू। इत पितुबच उत बधुसँकोचू॥
भरतसुभाउ समुझि मन माहीं। प्रभुचित हितथिति पावत नाहीं॥
समाधान तब भा यह जाने। भरत कहे महँ साधु सयाने॥
लषन लखेउ प्रभु-हृदय खभारू। कहत समयसम नीतिबिचारू॥
बिन पूछे कछु कहउँ गोसाईं। सेवकसमय न ढीठ ढिठाई॥
तुम्ह सर्वज्ञ सिरोमनि स्वामी। आपनि समुझि कहउँ अनुगामी॥

दो०-नाथ सुहृद सुठि सरलचित, सील-सनेह निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जिय, जानिय आपु समान॥२२८॥

बिषयी जीव पाइ प्रभुताई । मूढ मोहबस होहिं जनाई ॥
भरत नीतिरत साधु सुजाना । प्रभु-पद प्रेम सकल जग जाना ॥
तेऊ आज राजपद पाई । चले धरममरजाद मेटाई ॥
कुटिल कुबधु कुअवसर ताकी । जानि राम बनवास एकाकी ॥
करि कुमन्त्र मन साजि समाजू । आये करइ अकटक राजू ॥
कोटिप्रकार कलपि कुटिलाई । आये दल बटोरि दोउ भाई ॥
जौं जिय होति न कपट कुचाली । केहि सोहाति रथ बाजि गजाली ॥
भरतहि दोष देइ को जाये । जग बौराइ राजपद पाये ॥

दो०-ससि गुरु तिय गामी नहुष, चढेउ भूमि-सुर-जान ।
लोकबेद तें बिमुख भा अधम न बेनु समान ॥२२९॥

सहसबाहु सुरनाथ त्रिसकू । केहि न राजमद दीन्ह कलकू ॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ । रिपु रिन रच न राखब काऊ ॥
एक कीन्ह नहिं भरत भलाई । निदरे राम जानि असहाई ॥
समुझि परिहि सोउ आजु बिसेखी । समर सरोख रामसुख पेखी ॥
इतना कहत नीतिरस भूला । रन रस बिटप पुलक मिस फूला ॥
प्रभुपद बदि सीस रज राखी । बोले सत्य सहज बल भाखी ॥
अनुचित नाथ न मानब मोरा । भरत हमहिं उपचार न थोरा ॥
कहँ लगि सहिय रहिय मन मारे । नाथ साथ धनु हाथ हमारे ॥

दो०-छत्रिजाति रघु कुल जनम, राम अनुज जग जान ।
लातहुँ मारे चढति सिर, नीच को धूरिसमान ॥२३०॥

उठि कर जोरि रजायसु माँगा । मनहु बीर रस सोवत जागा ॥
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा । साजि सरासन सायक हाथा ॥
आज राम सेवक जसु लेऊँ । भरतहिं समर सिखावन देऊँ ॥
रामनिरादर कर फल पाई । सोवहु समरसेज दोउ भाई ॥
आइ बना भल सकल समाजू । प्रकट करउँ रिस पाछिल आजू ॥
जिमि करि निकर दलइ मृगराजू । लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू ॥

तसेहि भरतहि सेनसमेता। सानुज निदरि निपातउ खेता॥
जौं सहाय कर संकर आई। तौ मारउँ रन राम दोहाई॥

दो०-अतिसरोप माखे लखन, लखि सुनि सपथ प्रवान।
सभय लोक सब लोकपति, चाहत भभरि भगान॥२३१॥

जग भयमगन गगन भइ बानी। लखन-बाहु बल बिपुल बखानी॥
तात प्रतापप्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकइ को जाननिहारा॥
अनुचित उचित काज कछु होऊ। समुझि करिय भल कह सब कोऊ॥
सहसा करि पाछे पछिताहीं। कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं॥
सुनि सुरबचन लखन सकुचाने। राम सीय सादर सनमाने॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सबतें कठिन राजमद भाई॥
जो अँचवत मातहिं नृप तेई। नाहिं न साधु सभा जेहि सेई॥
सुनहु लखन भल भरतसरीसा। बिधिप्रपंच महँ सुना न दीसा॥

दो०-भरतहि होइ न राजमद बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजीसीकरनि, छीरसिंधु बिनसाइ॥२३२॥

तिमिर तरुन तरनिहि सकु गिलई। गगन मगन सकु मेघहि मिलई॥
गोपद जल बूडहिं घटजोनी। सहज छमा बरु छाडइ छोनी॥
मसकफूँक बरु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमद भरतहि भाई॥
लखन तुम्हार सपथ पितुआना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥
सगुनछीर अवगुनजल ताता। मिलइ रचइ परपंच बिधाता॥
भरत हंस रबि-बंस तडागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा॥
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्हि उजियारी॥
कहत भरत-गुन-सील-सुभाऊ। प्रेमपयोधि मगन रघुराऊ॥

दो०-सुनि रघुबर बानी बिबुध, देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सो, प्रभु को कृपानिकेतु॥२३३॥

जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को॥
कबि कुल-अगम भरत गुन गाथा। को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा॥

लषन राम सिय सुनि सुरबानी। अतिसुख लहेउ न जाइ बखानी॥
इहाँ भरत सब सहित सहाये। मन्दाकिनी पुनीत नहाये॥
सरितसमीप राखि सब लोगा। माँगि मातु-गुरु-सचिव नियोगा॥
चले भरत जहँ सियरघुराई। साथ निषादनाथ लघुभाई॥
समुझि मातुकरतब सकुचाहीं। करत कुतर्क कोटि मन माहीं॥
राम-लषन सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ॥

दो०-मातु मते महँ मानि मोहि, जो कछु कहहिं सो थोर।
अघअवगुन छमि आदरहिं, समुझि आपनी ओर॥२३४॥

जौं परिहरहिं मलिन मन जानी। जौं सनमानहिं सेवक मानी॥
मोरे सरन राम की पनहीं। राम सुस्वामि दोष सब जनहीं॥
जग जसभाजन चातक मीना। नेम प्रेम निज निपुन नवीना॥
अस मन गुनत चले मग जाता। सकुच सनेह सिथिल सब गाता॥
फेरति मनहिं मातुकृत खोरी। चलत भगतिबल धीरजधोरी॥
जब समुझत रघुनाथसुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ॥
भरतदसा तेहि अवसर कैसी। जलप्रवाह जल अलि-गति-जैसी॥
देखि भरत कर सोच सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू॥

दो०-लगे होन मंगल सगुन, सुनि गुनि कहत निषाद।
मिटिहि सोच होइहि हरष, पुनि परिनाम बिषाद॥२३५॥

सेवकबचन सत्य सब जाने। आस्रम निकट जाइ नियराने॥
भरत दीख बन सैल-समाजू। मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू॥
ईति भीति जनु प्रजा दुखारी। त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रहभारी॥
जाइ सुराज सुदेस सुखारी। होहिं भरतगति तेहि अनुहारी॥
रामबास बनसपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा॥
सचिव बिराग बिबेक नरेसू। बिपिन सुहावन पावन देसू॥
भट जमनियम सैल रजधानी। सांति सुमति सुचि सुन्दर रानी॥
सकल अंग संपन्न सुराऊ। रामचरनआस्रित चित चाऊ॥

दो०-जीति मोह-महि पाल दल, सहित विवेक भुआल।
करत अकटक राज्य पुर, सुख सपदा सुकाल
वनप्रदेस मुनिवास घनेरे। जनु पुर नगर गाउँ गन
विपुल विचित्र विहग मृग नाना। प्रजासमाज न जाइ बल
खगहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष वृष सा न सर
बयरु विहाय चरहिं एक संगा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा।
झरना झरहिं मत्तगज गाजहिं। मनहुँ बा
चक चकोर चातक सुक पिक गन। कूजत मंजु मराल मुदितमन।
अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा।
वेलि विटप तृन सफल सफूला। सब समाज मुद मंगल-मूला।
दो०-रामसैल सोभा निरखि, भरत हृदय अतिप्रेम।
तापस तपफल पाइ जिमि, सुखी सिराने नेम ॥२३७॥
तब केवट ऊचे चढ़ि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई।
नाथ देखियहि विटपविसाला। पाकरि जंबु रसाल
तिन्ह तरुवरन्ह मध्य वटु सोहा। मंजु बिसाल देखि मन मोहा।
नील सघन पल्लव फल लाला। अबिचल छाँह सुखद सब काला।
मानहुँ तिमिर-अरुन मय रासी। विरची विधि सकेलि सुखमासी।
एहि तरु सरितसमीप गोसाईं। रघुवर परन कुटी जहँ छाई।
तुलसी तरुवर विविध सुहाये। कहुँ सिय पिय कहुँ लषन लगाये।
वटछाया वेदिका बनाई। सिय निज-पानि सरोज सुहाई।
दो०-जहाँ बैठि मुनि गन-सहित, नित सिय राम सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब, आगम निगम पुरान ॥ २३८॥
सखावचन सुनि विटप निहारी। उमगे भरत बिलोचन बारी।
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई॥
हरषहिं निरखि राम पद अंका। मानहुँ पारस पायेउ रंका॥
रज सिर धरि हिय नयनन्हि लावहिं। रघुवर मिलन सरिस सुख पावहिं।

देखि भरतगति अकथ अतीवा। प्रेम मगन मृग खग जडजीवा॥
सखहिं सनेह बिबस मग भूला। कहि सुपथ सुर बरसहिं फूला॥
निरखि सिद्धसाधक अनुरागे। सहससनेह सराहन लागे॥
होत न भूतल भाव भरत को। अचर सचर चर अचर करत को॥

दो०-प्रेमअमिय मदर बिरह, भरत पयोधिगँभीर।
मथि प्रगटे सुर साधु हित, कृपासिंधु रघुबीर॥ २३६॥

सखासमेत मनोहर जोटा। लखेउ न लखन सघन वन ओटा॥
भरत दीख प्रभुआस्रम पावन। सकल सु मंगल-सदन सुहावन॥
करत प्रवेस मिटे दुखदावा। जनु जोगी परमारथ पावा॥
देखे भरत लखन प्रभु आगे। पूछे बचन कहत अनुरागे॥
सीस जटा कटि मुनिपट बाँधे। तून कसे कर सर धनु काँधे॥
बेदी पर मुनि साधु समाजू। सीयसहित राजत रघुराजू॥
बलकल बसन जटिल तन स्यामा। जनु मुनिबेष कीन्ह रतिकामा॥
करकमलनि धनुसायक फेरत। जिय की जरनि हरत हँसि हेरत॥

दो०-लसत मजु मुनि मंडली, मध्य सीय रघुचंद।
ज्ञानसभा जनु तनु धरे, भगति सच्चिदानंद॥२४०॥

सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हरष सोक सुख दुख-गन॥
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं॥
बचन सप्रेम लखन पहिचाने। करत प्रनाम भरत जिय जाने॥
बंधुसनेह सरस एहि ओरा। इत साहिबसेवा बरजोरा॥
मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई। सुकबि लखनमन की गति भनई॥
रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू॥
कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा॥
उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषग धनु तीरा॥

दो०-बरबस लिये उठाइ उर, लाये कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि, बिसरे सबहिं अपान॥२४१॥

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कबि कुल अगम करम मन बानी॥
परम-प्रेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई॥
कहहु सुप्रेम प्रगट को करई। केहि छाया कबि मति अनुसरई॥
कबिहिं अरथ आखर बल साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नट नाचा॥
अगमसनेह भरतरघुबर को। जह न जाइ मनु बिधि-हरि-हर को॥
सो मैं कुमति कहउ केहि भाँती। बाज सुराग कि गाँडरताँती॥
मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की। सुरगन सभय धकधकी धरकी॥
समुझाये सुरगुरु जड जागे। बरषि प्रसून प्रससन लागे॥

दो०-मिलि सप्रेम रिपुसूदनहिं, केवट भेंटेउ राम।
भूरि भाय भेंटे भरत, लछिमन करत प्रनाम ॥२४२॥

भेटेउ लपन ललकि लघु भाई। बहुरि निषाद लीन्ह उर लाई॥
पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बंदे। अभिमत आसिष पाइ अनंदे॥
सानुज भरत उमगि अनुरागा। धरि सिर सिय पद पदुम परागा॥
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाये। सिर करकमल परसि बैठाये॥
सीय असीस दीन्हि मन माहीं। मगन सनेह देहसुधि नाहीं॥
सबबिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच उर अपडर बीता॥
कोउ कछु कहइ न कोउ कछु पूछा। प्रेम भरा मन निजगति छूछा॥
तेहि अवसर केवट धीरज धरि। जोरि पानि बिनवत प्रनाम करि॥

दो०-नाथ साथ मुनि नाथ के, मातु सकल पुरलोग।
सेवक सेनप सचिव सब, आये बिकल बियोग ॥२४३॥

सीलसिंधु सुनि गुरुआगमनू। सिय समीप राखे रिपुदमनू॥
चले सबेग राम तेहि काला। धीर-धरम-धुर दीनदयाला॥
गुरुहि देखि सानुज अनुरागे। दण्डप्रनाम करन प्रभु लागे॥
मुनिबर धाइ लिये उर लाई। प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई॥

म पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि ते दंडप्रनामू॥
ामसखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा॥
घुपति भगति सुमंगल मूला। नभ सराहि सुर बरिषहिं फूला॥
हि सम निपट नीच कोउ नाहीं। बड़ बसिष्ठ को सम जग माहीं॥

दो०-जेहि लखि लखनहुँ तें अधिक, मिले मुदित मन राउ।
सो सीता पति भजन को, प्रगट प्रतापप्रभाउ॥२४४॥

आरत लोग राम सब जाना। करुनाकर सुजान भगवाना॥
जो जेहि भाय रहा अभिलाषी। तेहि तेहि कै तसि तसि रुचि राखी॥
सानुज मिलि पल महुँ सब काहू। कीन्ह दूरि दुख दारुन दाहू॥
यह बड़ि बात राम कै नाहीं। जिमि घट कोटि एक रबि छाहीं॥
मिलि केवटहि उमगि अनुरागा। पुरजन सकल सराहहिं भागा॥
देखी राम दुखित महतारी। जनु सुबेलि अवली हिम मारी॥
प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभाय भगति मति भेई॥
ग परि कीन्ह प्रबोध बहोरी। काल करम बिधि सिर धरि खोरी॥

दो०-भेंटी रघुबर मातु सब, करि प्रबोध परितोष।
अब ईस आधीन जग, काहु न देइय दोष॥२४५॥

रु तिय पद-बंदे दुहुँ भाई। सहित बिप्रतिय जे सँग आई॥
ग-गौरि सम सब सनमानी। देहिं असीस मुदित मृदुबानी॥
हि पद लगे सुमित्राअंका। जनु भेंटी संपति अति रंका॥
नि जननीचरननि दोउ भ्राता। परे प्रेम ब्याकुल सब गाता॥
ति अनुराग अब उर लाये। नयन सनेह सलिल अन्हवाये॥
हि अवसर कर हरष बिषादू। किमि कबि कहइ मूक जिमि स्वादू॥
लि जननिहिं सानुज रघुराऊ। गुरुसन कहेउ कि धारिय पाऊ॥
रजन पाइ मुनीसनियोगू। जल थल तकि तकि उतरे लोगू॥

दो०-महिसुर मंत्री मातु गुरु, गने लोग लिये साथ।
पावन आस्रम गवनु किय, भरत लखन रघुनाथ॥२४६॥

सीय आइ मुनि वर पग लागी। उचित असीस लही मनमाँगी॥
गुरुपतिनिहिं मुनितियन्ह समेता। मिली प्रेम कहि जाइ न जेता॥
बंदि बंदि पग सिय सबही के। आसिरवचन लहे प्रिय जी के॥
सासु सकल जब सीय निहारी। मूँदे नैन सहमि सुकुमारी॥
परी बधिकबस मनहुँ मराली। काह कीन्ह करतार कुचाली॥
तिन्ह सिय निरखि निपट दुख पावा। सो सब सहिय जो दैव सहावा॥
जनकसुता तब उर धरि धीरा। नील-नलिन-लोयन भरि नीरा॥
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई। तेहि अवसर करुना महि छाई॥

दो०-लागि लागि पग सबनि सिय, भेंटति अति अनुराग।
हृदय असीसहिं प्रेमबस, रहिअहु भरी सोहाग॥२४४॥

बिकल सनेह सीय सब रानी। बैठन सबहिं कहेउ गुरु ज्ञानी॥
कहि जगगति मायिक मुनिनाथा। कहे कछुक परमारथ गाथा॥
नृप कर सुर-पुर-गवन सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुख पावा॥
मरनहेतु निजनेह बिचारी। भे अति बिकल धीर धुर धारी॥
कुलिसकठोर सुनत कटुबानी। बिलपत लषन सीय सब रानी॥
सोकबिकल अति सकल समाजू। मानहुँ राज अकाजेउ आजू॥
मुनिबर बहुरि राम समुझाये। सहित समाज सुसरित नहाये॥
व्रत निरबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहु कहे जल काहु न लीन्हा॥

दो०-भोर भये रघुनन्दनहिं, जो मुनि आयसु दीन्ह।
स्रद्धा-भगति समेत प्रभु, सो सब सादर कीन्ह॥२४५॥

करि पितुक्रिया वेद जसि बरनी। भे पुनीत पातक-तम-तरनी॥
जासु नाम पावक अघतूला। सुमिरत सकल सुमंगल मूला॥
सुद्ध सो भयउ साधु समत अस। तीरथआवाहन सुरसरि जस॥
सुद्ध भये दुइ बासर बीते। बोले गुरुसन राम पिरीते॥
नाथ लोग सब निपट दुखारी। कंद मूल फल अंबु अहारी॥
सानुज भरत सचिव सब माता। देखि मोहि पल जिमि जुग जाता॥

सबसमेत पुर धारिय पाऊ। आपु इहाँ अमरावति राऊ॥
बहुत कहेउँ सब कियउँ ढिठाई। उचित होइ तस करिय गुसाईं॥

दो०-धर्मसेतु करुनायतन, कस न कहहु अस राम।
लोग दुखित दिन दुइ दरस, देखि लहहुँ बिस्राम॥२४६॥

रामबचनसुनि सभय समाजू। जनु जलनिधि महँ बिकल जहाजू॥
सुनि गुरुगिरा सुमंगल मूला। भयहु मनहुँ मारुत अनुकूला॥
पावन पय तिहुँ काल नहाहीं। जो बिलोकि अघओघ नसाहीं॥
मंगलमूरति लोचन भरि भरि। निरखहिं हरषि दंडवत करि करि॥
राम-सैल बन देखन जाहीं। जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं॥
झरना झरहिं सुधासम बारी। त्रिबिधि ताप हर त्रिबिध बयारी॥
बिटप बेलि तृन अगनित जाती। फल प्रसून पल्लव बहु भाँती॥
सुन्दर सिला सुखद तरु छाहीं। जाइ बरनि बनछबि केहि पाहीं॥

दो०-सरनि सरोरुह जल बिहग, कूजत गुंजत भृङ्ग।
बैर बिगत बिहरत बिपिन, मृग बिहंग बहुरंग॥२५०॥

कोल किरात भिल्ल बनबासी। मधु सुचि सुन्दर स्वादु सुधा सी॥
भरि भरि परनपुटी रचि रूरी। कंद मूल फल अंकुर जूरी॥
सबहिं देहिं करि बिनय प्रनामा। कहि कहि स्वादुभेद गुन नामा॥
देहिं लोग बहु मोल न लेहीं। फेरत राम दोहाई देहीं॥
कहहिं सनेहमगन मृदुबानी। मानत साधु प्रेम पहिचानी॥
तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा। पावा दरसन रामप्रसादा॥
हमहि अगम अति दरस तुम्हारा। जस मरुधरनि देवधुनि धारा॥
रामकृपाल निषाद नेवाजा। परिजन प्रजउ चहिय जस राजा॥

दो०-यह जिय जानि सँकोच तजि, करिय छोह लखि नेहु।
हमहि कृतारथ करन लगि, फल तृन अंकुर लेहु॥२५१॥

तुम्ह प्रिय पाहुन बन पग धारे। सेवाजोग न भाग हमारे॥
देब काह हम तुमहिं गोसाईं। ईंधन पात किरात मिताईं॥

यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चोराई।
हम जड़ जीव जीव गन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती।
पाप करत निसि बासर जाहीं। नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं।
सपनेहुँ धरम बुद्धि कस काऊ। यह रघुनंदन-दरस प्रभाऊ।
जब तें प्रभु पद पदुम निहारे। मिटे दुसह दुख दोष हमारे।
बचन सुनत पुरजन अनुरागे। तिन्ह के भाग सराहन लागे॥

छन्द-लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनावहीं।
बोलनि मिलनि सिय राम-चरन सनेह लखि सुख पावहीं॥
नरनारि निदरहिं नेह निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा।
तुलसी कृपा रघुबंस-मनि की लोह लेइ नौका तिरा॥

सो०-बिहरहिं बन चहुँ ओर, प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब।
जल ज्यों दादुर मोर, भये पीन पावस प्रथम॥२५०॥

पुरजन नारि मगन अतिप्रीती। बासर जाहिं पलक सम बीती॥
सीय सासु प्रति बेष बनाई। सादर करइ सरिस सेवकाई॥
लखा न मरम राम बिनु काहू। माया सब सियमाया माहू॥
सीय सासु सेवा बस कीन्ही। तिन्ह लहि सुख सिख आसिष दीन्ही॥
लखि सियसहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई॥
अवनि जमहि जाचति कैकेई। महि न बीचु बिधि मीचु न देई॥
लोकहु बेद बिदित कबि कहहीं। राम बिमुख थल नरक न लहहीं॥
यह ससउ सब के मन माही। राम गमन बिधि अवध कि नाही॥

दो०-निसि न नींद नहिं भूख दिन, भरत बिकल सुठि सोच॥
नीच कीच बिच मगन जस, मीनहिं सलिल सकोच॥२५१॥

कीन्हि मातु मिस काल कुचाली। ईति भीति जस पातक साली॥
केहि बिधि होइ राम अभिषेकू। मो कहँ फुरत उपाउ न एकू॥
अवसि फिरहिं गुरु आयसु मानी। मुनि पुनि कहब रामरुचि जानी॥
मातु कहेहु बहुरहिं रघुराऊ। रामजननि हठ करबि कि काऊ॥

मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेहि महँ कुसमउ बाम बिधाता॥
जौं हठ करउँ त निपट कुकरमू। हरगिरि तें गुरु सेवकधरमू॥
एकउ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहिं रैन बिहानी॥
प्रात नहाइ प्रभुहिं सिर नाई। बैठत पठये रिषय बोलाई॥

दो०-गुरु पद कमल प्रनाम करि, बैठे आयसु पाइ।
बिप्र महाजन सचिव सब, जुरे सभासद आइ॥२५४॥

बोले मुनिबर समय समाना। सुनहु सभासद भरत सुजाना॥
धरमधुरीन भानु-कुल-भानू। राजा राम स्वबस भगवानू॥
सत्यसंध पालक स्रुतिसेतू। रामजनम जग मंगलहेतू॥
गुरु पितु मातु-बचन-अनुसारी। खल-दल-दलन देव हित-कारी॥
नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न रामसम जान जथारथ॥
बिधिहरि हर ससि रबि दिसिपाला। माया जीव करम कुलि काला॥
अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई। जोग सिद्धि निगमागम गाई॥
करि बिचार जिय देखहु नीके। रामरजाइ सीस सबही के॥

दो०-राखे राम रजाइ रुख, हम सब कर हित होइ।
समुझि सयाने करहु अब, सब मिलि संमत सोइ॥२५५॥

सब कहँ सुखद रामअभिषेकू। मंगल-मोद-मूल मग एकू॥
केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ। कहहु समुझि सोइ करिय उपाऊ॥
सब सादर सुनि मुनि बर बानी। नय-परमारथ-स्वारथ-सानी॥
उतर न आव लोग भये भोरे। तब सिर नाइ भरत कर जोरे॥
भानुबंस भये भूप घनेरे। अधिक एक तें एक बड़ेरे॥
जनम हेतु सब कहँ पितु माता। करम सुभासुभ देइ बिधाता॥
दलि दुख सजइ सकल कल्याना। अस असीस राउरि जग जाना॥
सोइ गोसाँइ बिधिगति जेहि छेंकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी॥

दो०-बूझिय मोहि उपाय अब, सो सब मोर अभाग।
सुनि सनेह-मय-बचन गुरु, उर उमगा अनुराग॥२५६॥

तात-बात, फुरि, राम कृपाहीं। रामबिमुख सिधि सपनेहु नाहीं॥
सकुचउँ तात कहत एक बाता। अरध तजहिं बुध, सरबस जाता॥
तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिय लषन सीय, रघुराई॥
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता। भे प्रमोद परि पूरन गाता॥
मन प्रसन्न तनु तेज बिराजा। जनु जिय राउ राम भये राजा॥
बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी। सम दुखसुख सब रोवहिं रानी॥
कहहिं भरत मुनि कहा सो कीन्हे। फल जग जीवन अभिमत दीन्हे॥
कानन करउँ जन्म भरि बासू। एहि तें अधिक न मोर सुपासू॥

दो०-अन्तरजामी राम सिय, तुम सरबज्ञ सुजान।
जो फुर कहहु त नाथ निज, कीजिय बचन प्रमान॥२५७॥

भरतबचन सुनि देखि सनेहू। सभासहित मुनि भयउ बिदेहू॥
भरत-महा महिमा जलरासी। मुनिमति ठाढि तीर अबला सी॥
गा चह पार जतनु हिय हेरा। पावति नाव न बोहित बेरा॥
अउर करहि को भरत बड़ाई। सर सीपी की सिंधु समाई॥
भरत मुनिहि मनभीतर भाये। सहितसमाज राम पहिं आये॥
प्रभु प्रनाम करि दीन्ह सुआसन। बैठे सब सुनि मुनि अनुसासन॥
बोले मुनिबर बचन बिचारी। देस काल अवसर अनुहारी॥
सुनहु राम सरबज्ञ सुजाना। धरम-नीति-गुन ज्ञान निधाना॥

दो०-सबके उर अन्तर बसहु, जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन-जननी भरत हित, होय सो कहिय उपाउ॥२५८॥

आरतकहहिंबिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ॥
सुनि मुनिबचन कहत रघुराऊ। नाथ-तुम्हारेहि हाथ उपाऊ॥
सब कर हित रुख राउरि राखे। आयसु किये मुदित फुर भाखे॥
प्रथम जो आयसु मो-कहँ होई। माथे मानि करउँ सिख सोई॥
पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाईं। सो सब भाँति करिहि सेवकाई॥
कह मुनि राम सत्य तुम भाखा। भरत-सनेह बिचार न राखा॥

हि तें कहउ बहोरि बहोरी। भरत भगति-बस भइ मति मोरी॥
मोरे जान भरतरुचि राखी। जो कीजिय सो सुभ सिव साखी॥
दो०-भरतबिनय सादर सुनिय, करिय विचार बहोरि।
करब साधुमत लोकमत, नृपनय निगम निचोरि॥२५९॥

गुरुअनुराग भरत पर देखी। रामहृदय आनन्द बिसेखी॥
भरतहि धरम धुर धर जानी। निज सेवक तन मानस-बानी॥
बोले गुरु आयसु-अनुकूला। बचन मंजु मृदु मंगलमूला॥
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयउ न भुवन भरतसम भाई॥
जे गुरु पद-अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी॥
राउर जा पर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू॥
लखि लघुबंधु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरतबड़ाई॥
भरत कहहिं सोइ किये भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई॥
दो०-तब मुनि बोले भरत सन, सब सँकोच तजि तात।
कृपासिंधु प्रियबंधु सन, कहहु हृदय कइ बात॥२६०॥

सुनि मुनि बचन राम रुख पाई। गुरु साहिब अनुकूल अघाई॥
लखि अपने सिर सब छरभारू। कहि न सकहिं कछु करहिं बिचारू॥
पुलकि सरीर सभा भये ठाढ़े। नीरजनयन नेहजल बाढ़े॥
कहब मोर मुनिनाथ निबाहा। एहि ते अधिक कहउँ मैं काहा॥
मैं जानउँ निजनाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥
मो पर कृपा सनेह बिसेखी। खेलत खुनस न कबहूँ देखी॥
सिसुपन तें परिहरेउ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥
मैं प्रभु कृपारीति जिय जोही। हारेहु खेल जितावहिं मोही॥
दो०-महूँ सनेह-सकोच बस, सनमुख कहे न बैन।
दरसन तृपित न आजु लगि, प्रेम पियासे नैन॥२६१॥

बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच बीच जननी मिस पारा॥
यहउ कहत मोहि आजु न सोभा। अपनी समुझि साधु सुचि को भा॥

मातु मद मैं साधु सुचाली। उर अस आनत ... ॥
फरइ कि कोदव बालि सुसाली। मुकता प्रसव कि संबुक ताली॥
सपनेहु दोस कलेस न काहू। मोर अभाग उदधि अवगाहू॥
बिनु समुझे निज अघ परिपाकू। जारिउँ जाय जननि कहि काकू॥
हृदय हेरि हारेउँ सब ओरा। एकहि भाँति भलेहि भल मोरा॥
गुरु गोसाइँ साहिब सियरामू। लागत मोहि नीक परिनामू॥

दो०-साधु सभा गुरु प्रभु निकट, कहउ सुथल सतिभाउ।
प्रेम प्रपंच कि झूठ फुर, जानहि मुनि रघुराउ॥२६१॥

भूपतिमरन प्रेमपनु राखी। जननी कुमति जगत सब ... ॥
देखि न जाहि बिकल महतारी। जरहिं दुसह ज्वर पुर नर-नारी॥
मही सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहेउ सब सूला॥
सुनि बनगवन कीन्ह रघुनाथा। करि मुनिबेष लखन सिय-साथा॥
बिन पानहिन्ह पयादेहि पाये। संकर साखि रहेउँ एहि घाये॥
बहुरि निहार निषादसनेहू। कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू॥
अब सब आँखिन्ह देखेउँ आई। जियत जीव जड सबइ सहाई॥
जिन्हहिं निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहिं विषमविष तामस तीछी॥

दो०-तेइ रघुनंदन लखन सिय, अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख, दैव सहावइ काहि॥२६२॥

सुनि अतिबिकल भरत बर बानी। आरति प्रीति बिनय-नय-सानी॥
सोकमगन सब सभा खभारू। मनहुँ कमलबन परेउ तुपारू॥
कहि अनेकबिधि कथा पुरानी। भरतप्रबोध कीन्ह मुनि ज्ञानी॥
बोले उचितवचन रघुनंदू। दिन-कर-कुल-कैरव-बन चंदू॥
तात जाय जिन करहु गलानी। ईसअधीन जीवगति जानी॥
तीनि काल त्रिभुवन मत मोरे। पुन्यसलोक तात तर तोरे॥
उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोक-परलोक-नसाई॥
दोष देहिं जननिहि जड तेई। जिन्ह गुरु-साधु सभा नहिं सेई॥

दो०-मिटिहहिं पाप प्रपंच सब, अखिल अमंगल भार।
लोक सुजस परलोक सुख, सुमिरत नाम तुम्हार ॥२६४॥

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी। भरत भूमि रह राउरि राखी ॥
तात कुतर्क करहु जनि जाये। वैर प्रेम नहिं दुरइ दुराये ॥
मुनि गुनि निकट बिहँग मृग जाहीं। बाधक बधिक बिलोकि पराहीं ॥
हित अनहित पसु पच्छिउ जाना। मानुपतनु गुन ज्ञान-निधाना ॥
तात तुम्हहिं मैं जानउँ नीके। करउँ काह असमंजस जी के ॥
राखेउ राय सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ प्रेमपन लागी ॥
तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि ते अधिक तुम्हार सँकोचू ॥
ता पर गुरु मोहि आयसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा॥

दो०-मन प्रसन्न करि सकुच तजि, कहहु करउँ सोइ आजु।
सत्य संध-रघुबर-बचन, सुनि भा सुखी समाजु ॥२६५॥

सुर-गन सहित सभय सुरराजू। सोचहिं चाहत होन अकाजू ॥
बनत उपाय करत कछु नाहीं। रामसरन सब गे मन माहीं ॥
बहुरि बिचारि परसपर कहहीं। रघुपति भगत भगति बस अहहीं ॥
सुधि करि अंबरीष दुरबासा। भे सुर सुरपति निपट निरासा ॥
सहे सुरन्ह बहुकाल बिषादा। नरहरि किये प्रगट प्रहलादा ॥
लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा। अब सुरकाज भरत के हाथा ॥
आन उपाय न देखिय देवा। मानत राम सु-सेवक-सेवा ॥
हिय सप्रेम सुमिरहु सब भरतहिं। निज-गुन-सील रामबस करतहिं ॥

दो०-सुनि सुमरत सुरगुरु कहेउ, भल तुम्हार बड भाग।
सकल सु-मंगल मूल जग, भरत-चरन अनुराग ॥२६६॥

सीता-पति-सेवक-सेवकाई। कामधेनु सय सरिस सुहाई ॥
भरतभगति तुम्हरे मन आई। तजहु सोच बिधि बात बनाई ॥
देखु देवपति भरतप्रभाऊ। सहज-सुभाय-बिवस रघुराऊ ॥
मन थिर करहु देव डर नाहीं। भरतहिं जानि रामपरिछाहीं ॥

सुनि सुरगुरु-सुर समत सोचू। अतरजामी प्रभुहिं सकाचू।
निजसिर भार भरत जिय जाना। करत कोटिविधि उर अनुमाना॥
करि बिचार मन दीन्हा ठीका। रामरजायसु आपन नीका॥
निजपन तजि राखेउ पन मोरा। छोह सनेह कीन्ह नहिं थोरा।

दो०–कीन्ह अनुग्रह अमित अति, सब विधि सीतानाथ।
करि प्रनाम बोले भरत, जोरि जल-ज-जुग-हाथ॥ ६८

कहउँ कहावउ का अब स्वामी। कृपा अबु - निधि अतरजामी।
गुरु प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटी मलिन मनकलपित सूला।
अपडर डरेउँ न सोच समूले। रबिहि न दोष देव दिसि भूले॥
मोर अभाग मातकुटिलाई। बिधिगति बिषम कालकठिनाई॥
पाउँ रोपि सब मिलि मोहि घाला। प्रनतपाल पन आपन पाला॥
यह नइ रीति न राउरि होई। लोकहु बेद बिदित नहिं गोई॥
जग अनभल भल एक गोसाईं। कहिय होय भल कासु भलाई॥
देव देव - तरु - सरिस सुभाऊ। सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ।

दो०–जाइ निकट पहिचान तरु, छाहँ समनि सब सोच।
माँगत अभिमत पाव जग, राउ रक भल पोच॥ २६८॥

लखि सब बिधि गुरु स्वामि सनेहू। मिटेउ छोभ नहिं मन सन्देहू।
अब करुनाकर कीजिय सोई। जनहित प्रभुचित छोभ न होई॥
जो सेवक साहिबहिं सकोची। निजहित चहइ तासु मति पोची।
सेवकहित साहिब - सेवकाई। करइ सकल सुख लोभ बिहाई।
स्वारथ नाथ फिरे सबही का। किये रजाइ कोटि-बिधि नीका।
यह स्वारथ - परमारथ - सारू। सकलसुकृत फलसुगति सिंगारू।
देव एक बिनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी।
तिलकसमाजु साजि सब आना। करिय सुफल प्रभु जौं मनमाना।
दो०–सानुज पठइय मोहिं बन, कीजिय सबहिं सनाथ।
न तरु फेरियहि बन्धु दोउ, नाथ चलउँ मैं साथ॥ ६६॥

तरु जाहिं बन तीनउँ भाई। बहुरिय सीयसहित रघुराई ॥
हि विधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुनासागर कीजिय सोई ॥
दीन्ह सब मोहि सिर भारू। मोरे नीति न धरम बिचारू ॥
हउ बचन सब स्वारथ हेतू। रहत न आरत के चित चेतू ॥
तर देइ सुनि स्वामिरजाई। सो सेवक लखि लाज लजाई ॥
स मैं अवगुन उदधि अगाधू। स्वामि सनेह सराहत साधू ॥
ब कृपाल मोहि सो मत भावा। सकुच स्वामि मन जाइ न पावा॥
सु पद सपथ कहउँ सतिभाऊ। जग - मंगल - हित एक उपाऊ॥

दो०-प्रभु प्रसन्नमन सकुच तजि, जो जेहि आयसु देव।
सो सिर धरि धरि करहि सब, मिटिहि अनट अवरेब ॥२७०॥

भरत बचन सुचि सुनि सुर हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे ॥
असमंजसबस अवधनिवासी। प्रमुदित मन तापस बन बासी ॥
चुपहि रहे रघुनाथ सँकोची। प्रभुगति देखि सभा सब सोची ॥
जनकदूत तेहि अवसर आये। मुनि बसिष्ठ सुनि बेगि बोलाये ॥
करि प्रनाम तिन्ह राम निहारे। बेष देखि भये निपट दुखारे ॥
दूतन्ह मुनिवर बूझी बाता। कहहु बिदेह भूप कुशलाता ॥
सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा। बोले चरबर जोरे हाथा ॥
बूझब राउर सादर साईं। कुसलहेतु सो भयउ गोसाईं ॥

दो०-नाहि त कोशलनाथ के, साथ कुसल गइ नाथ।
मिथिला अवध बिसेष तें, जगु सब भयउ अनाथ ॥२७१॥

कोशलपति गति सुनि जनकौरा। भे सब लोक सोकबस बौरा ॥
जेहि देखे तेहि समय बिदेहू। नाम सत्य अस लाग न केहू ॥
रानि कुचाल सुनत नरपालहि। सूझ न कछु जस मनि बिनु ब्यालहि॥
भरतराज - रघुबर - बन - बासू। भा मिथिलेसहि हृदय हरासू ॥
नृप बूझे बुध सचिव समाजू। कहहु बिचारि उचित का आजू ॥
समुझि अवध असमंजस दोऊ। चलिय कि रहिय न कह कछु कोऊ॥

नृपहिं धीर धरि हृदय विचारी। पठये अवध चतुर चर चारी॥
बूझि भरत गतिभाउ कुभाऊ। आयहु बेगि न होइ लखाऊ॥

दो०-गये अवधि चरभरतगति, बूझि देखि करतूति।
चले चित्रकूटहि भरत, चार चले तिरहूति॥२७२॥

दूतन्ह आइ भरत कै करनी। जनकसमाज जथामति बरनी॥
सुनि गुरु परिजन सचिव महीपति। भे सब सोच सनेह बिकल अति॥
धरि धीरज करि भरत बड़ाई। लिये सुभट साहनी बोलाई॥
घर पुर देस राखि रखवारे। हय गय रथ बहु जान सँवारे॥
दुघरी साधि चले ततकाला। किय बिस्राम न मग महिपाला॥
भोरहिं आजु नहाइ प्रयागा। चले जमुन उतरन सब लागा॥
खबरि लेन हम पठये नाथा। तिन्ह कहि अस महि नायउ माथा॥
साथ किरात छसातक दीन्हे। मुनिबर तुरत बिदा चर कीन्हे॥

दो०-सुनत जनक आगवन सब, हरषेउ अवधसमाज।
रघुनन्दनहिं सकोच बड़, सोचबिबस सुरराज॥२७३॥

गरइ गलानि कुटिल कैकेई। काहि कहइ केहि दूषन देई॥
अस मन आनि मुदित नरनारी। भयउ बहोरि रहब दिन चारी॥
एहि प्रकार गतबासर सोऊ। प्रात नहान लाग सब काऊ॥
करि मज्जन पूजहिं नरनारी। गनपति गौरि पुरारि तमारी॥
रमा - रमन - पद बन्दि बहोरी। बिनवहिं अंजलि अंचल जोरी॥
राजा राम जानकी रानी। आनँदअवधि अवध रजधानी॥
सुबस बसउ फिरि सहित समाजा। भरतहिं राम करहु जुवराजा॥
एहि सुखसुधा सींचि सब काहू। देव देहु जग - जीवन लाहू॥

दो०-गुरुसमाज भाइन्ह सहित, रामराजु पुर होउ।
अछत रामराजा अवध, मरिय माँग सब कोउ॥२७४॥

सुनि सनेहमय पुर-जन-बानी। निंदहिं जोग बिरति मुनि ग्यानी॥
एहि बिधि नित्यकरम करि पुरजन। रामहिं करहिं प्रनाम पुलकि तन॥

ँच नीच मध्यम नरनारी। लहहिं दरस निज निज अनुहारी॥
ावधान सबही सनमानहिं। सकल सराहत कृपानिधानहिं॥
रिकाइहि तें रघुबरबानी। पालत नीति प्रीति पहिचानी॥
ील सँकोच-सिंधु रघुराऊ। सुमुख सुलोचन सरलसुभाऊ॥
हत राम-गुन गन अनुरागे। सब निजभाग सराहन लागे॥
म सम पुन्यपुंज जग थोरे। जिन्हहिं राम जानत करि मोरे॥

दो०-प्रेममगन तेहि समय सब, सुनि आवत मिथिलेस।
सहित सभा सभ्रम उठेउ, रबि कुल कमल दिनेस॥२७५॥

भाइ सचिव गुरु पुरजन-साथा। आगे गवन कीन्ह रघुनाथा॥
गेरिवर दीख जनकपति जबहीं। करि प्रनाम रथ त्यागेउ तबहीं॥
ाम-दरस लालसा-उछाहू। पथस्रम लेस कलेस न काहू॥
न तहँ जहँ रघुबर बैदेही। बिनु मन-तन दुखसुख सुधि केही॥
ावत जनक चले एहि भाँती। सहित समाज प्रेम मद माँती॥
ाये निकट देखि अनुरागे। सादर मिलन परसपर लागे॥
गे जनक मुनि-जन पद बंदन। रिषिन्ह प्रनाम कीन्ह रघुनन्दन॥
ाइन्ह सहित राम मिलि राजहिं। चले लेवाइ समेत समाजहिं॥

दो०-आस्रम सागर सांतरस, पूरन पावन पाथ।
सेन मनहुँ करुनासरित, लिये जाहिं रघुनाथ॥२७६॥

ोरति ज्ञान बिराग करारे। बचन ससोक मिलत नद नारे॥
ोच उसास समीरतरंगा। धीरज तट-तरु बर कर भंगा॥
ापम बिषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भँवर अवर्त अपारा॥
वट बुध बिद्या बडि नावा। सकहिं न खेइ एक नहिं आवा॥
नचर कोल किरात बिचारे। थके बिलोकि पथिक हिय हारे॥
ाास्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई॥
ोक बिकल दोउ राजसमाजा। रहा न ज्ञान न धीरज लाजा॥
प-रूप-गुन सील सराही। रोवहिं सोकसिंधु अवगाही॥

छन्द-अवगाहि सोकसमुद्र सोचहिं नारि नर व्याकुल महा।
देइ दोष सकल सरोष बोलहिं बाम बिधि कीन्हो
सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा बिदेह की।
तुलसी न समरथ कोउ जो तरि सकइ सरित सनेह की॥
सो०-किये अमित उपदेस, जहँ तहँ लोगन्ह मुनिबरन्ह।
धीरज धरिय नरेस, कहेउ बसिष्ठ बिदेह सन।७७

जासु ज्ञान रबि भव निसि नासा। बचन किरन मुनि कमल बि
तेहि कि मोह ममता नियराई। यह सिय राम सनेह बड़ा
बिषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिबिध जीव जग बेद बखाने
राम सनेह सरस मन जासू। साधुसभा बड़ि आदर
सोह न रामप्रेम बिनु ज्ञानू। करनधार बिनु जिमि जल
मुनि बहुबिधि बिदेह समुझाये। रामघाट सब लोग
सकल सोक-सकुल नरनारी। सो बासर बीतेउ बिनु
पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू। प्रिय परिजन कर कवन बिचारू

दो०-दोउ समाज निमिराज रघुराज नहाने प्रात।
बैठे सब बट बिटप तर, मन मलीन कृस गात॥७८

जे महिसुर दसरथ पुर बासी। जे मिथिला पति-नगर निवासी
हंस-बंस गुरु जनकपुरोधा। जिन्ह जग मग परमारथ सोधा
लगे कहन उपदेस अनेका। सहित धरमनय बिरति बिबेका
कौसिक कहि कहि कथा पुरानी। समुझाई सब सभा सुबानी।
तब रघुनाथ कौसिकहिं कहेऊ। नाथ कालि जल बिनु सब रहेऊ।
मुनि कह उचित कहत रघुराई। गयउ बीति दिन पहर अढ़ाई।
रिषि रुख लखि कह तिरहुतिराजू। इहाँ उचित नहिं असन अनाजू।
कहा भूप भल सबहिं सुहाना। पाइ रजायसु चले नहाना।
दो०-तेहि अवसर फल फूल दल, मूल अनेक प्रकार।
लेइ आये बनचर बिपुल, भरि भरि काँवरि भार॥७९

ामद सो गिरि रामप्रसादा। अवलोकत अपहरत बिषादा॥
र सरिता बन भूमि बिभागा। जनु उमगत आनँद अनुरागा॥
ेलि बिटप सब सफल सफूला। बोलत खग मृग अलि अनुकूला।
ेहि अवसर बन अधिक उछाहू। त्रिबिधि समीर सुखद सब काहू॥
जाइ न बरनि मनोहरताई। जनु महि करति जनक पहुनाई॥
तब सब लोग नहाइ नहाई। राम जनक मुनि आयसु पाई॥
देखि देखि तरुवर अनुरागे। जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे॥
दल फल मूल कंद बिधि नाना। पावन सुन्दर सुधासमाना॥

दो०-सादर सब कह रामगुर, पठये भरि भरि भार।
पूजि पितर सुर अतिथि गुर, लगे करन फलहार॥२८०॥

एहि बिधि बासर बीते चारी। रामनिरखि नरनारि सुखारी॥
दुहुँ समाज असि रुचि मन माहीं। बिनु सियराम फिरब भल नाहीं।
सीताराम संग बनबासू। कोटि अमर पुर-सरिस सुपासू॥
परिहरि लषन-राम बैदेही। जेहि घर भाव बाम बिधि तेही॥
दाहिन दैव होइ जब सबही। रामसमीप बसिय बन तबहीं॥
मदाकिनिमज्जन तिहुँकाला। रामदरस मुद-मंगल माला॥
अटन राम गिरि बन तापस थल। असन अमियसम कंद मूल फल॥
सुखसमेत संवत दुइ साता। पलसम होहिं न जनियहिं जाता॥

दो०-एहि सुख जोग न लोग सब, कहहिं कहाँ अस भाग।
सहज सुभाय समाज दुहुँ, राम चरन अनुराग॥२८१॥

एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं। बचन सप्रेम सुनत मन हरहीं॥
सीयमातु तेहि समय पठाई। दासी देखि सुअवसर आई॥
सावकास सुनि सब सिय सासू। आयउ जनक राज रनिवासू॥
कौसल्या सादर सनमानी। आसन दिये समयसम आनी॥
सील सनेह सकल दुहुँ ओरा। द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा।
पुलक सिथिल तनु बारि बिलोचन। महिनख लिखन लगीं सबसोचन

सब सिय राम प्रीति की मूरति। जनु करुना बहुबेष [illegible]
सीयमातु कह बिधिबुधि बाँकी। जो पयफेनु फोर पबिटाँकी॥
दो०—सुनिय सुधा देखिय गरल, सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल॥२८२॥
सुनि ससोच कह देबि सुमित्रा। बिधिगति बड़ि बिपरीत बिचि[illegible]
जो सृजि पालइ हरइ बहोरी। बाल केलि सम बिधिमति भो[illegible]
कौसल्या कह दोसु न काहू। करमबिवस दुख सुख छति [illegible]
कठिन करमगति जान बिधाता। जो सुभ असुभ [illegible]
ईस रजाइ सीस सबही के। उतपति थिति लय [illegible]
देबि मोहबस सोचिय बादी। बिधि प्रपंच अस अचल अना[illegible]
भूपति जियब मरब उर आनी। सोचियसखि लखि निज हित हानी
सीय मातु कह सत्य सुबानी। सुकृती अवधि अवध पति रानी
दो०—लखन राम सिय जाहु बन, भल परिनाम न पोच।
गहबरि हिय कह कौसला, मोहि भरत कर सोच॥२८३॥
ईसप्रसाद असीस तुम्हारी। सुत - सुत बधू देव-सरि बारी।
रामसपथ मैं कीन्ह न काऊ। सो करि कहउँ सखी सतिभाऊ
भरत सील गुन बिनय बड़ाई। भायप भगति भरोस भलाई।
कहत सारदहु के मति हीचे। सागर सीप कि जाहिं उलीचे।
जानउ सदा भरत कुलदीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा।
कसे कनक मनि पारिखि पाये। पुरुष परिखियहिं समय सुभाये
अनुचित आजु कहब अस मोरा। सोक सनेह सयानप थोरा।
सुनि सुर सरि-सम पावनि बानी। भईं सनेह बिकल सब रानी।
दो०—कौसल्या कह धीर धरि, सुनहु देबि मिथिलेसि।
को बिबेक निधि बल्लभहि, तुम्हहिं सकइ उपदेसि॥२८४॥
रानि राय सन अवसरु पाई। अपनी भाँति कहब समुझाई
रखियहिं लखन भरतगवनहिं बन। जौं यह मत मानइ महीपमन

भल जतन करब सुबिचारी। मोरे सोच भरत कर भारी॥
गूढ़ सनेह भरत मन माहीं। रहे नीक मोहि लागत नाहीं॥
लखि सुभाउ सुनि सरल सुबानी। सब भइ मगन करुनरस रानी॥
नभ प्रसून झरि धन्य धन्य धुनि। सिथिल सनेह सिद्ध जोगी मुनि॥
सब रनिवास बिथकि लखि रहेऊ। तब धरि धीर सुमित्रा कहेऊ॥
देवि दंड जुग जामिनि बीती। राममातु सुनि उठी सप्रीती॥

दो०-बेगि पाय धारिय थलहिं, कह सनेह सतिभाय।
हमरे तौ अब ईस गति, कै मिथिलेस सहाय॥२८५॥

लखि सनेह सुनि बचन बिनीता। जनकप्रिया गहि पाय पुनीता॥
देवि उचित असि बिनय तुम्हारी। दसरथ-घरनि राम महतारी॥
प्रभु अपने नीचहु आदरहीं। अगिनि धूम गिरि सिर तृन धरहीं॥
सेवक राउ करम-मन-बानी। सदा सहाय महेस भवानी॥
रउरे अंग जोगु जग को है। दीप सहाय कि दिनकर सोहै॥
राम जाइ बन करि सुर काजू। अचल अवधपुर करिहहिं राजू॥
अमर नाग नर राम बाहुबल। सुख बसिहहिं अपने अपने थल॥
यह सब जागबलिक कहि राखा। देबि न होइ मुधा मुनि भाषा॥

दो०-अस कहि पग परि प्रेम अति, सियहित बिनय सुनाइ।
सियसमेत सियमातु तब, चली सुआयसु पाइ॥२८६॥

प्रिय परिजनहि मिली बैदेही। जो जेहि जोगु भाँति तेहि तेही॥
तापसबेष जानकी देखी। भा सब बिकल बिषाद बिसेषी॥
जनक रामगुरु आयसु पाई। चले थलहिं सिय देखी आई॥
लीन्हि लाइ उर जनक जानकी। पाहुनि पावन प्रेम प्रान की॥
उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू। भयहु भूपमन मनहुँ प्रयागू॥
सियसनेह बटु बाढ़त जोहा। तापर राम प्रेम सिसु सोहा॥
चिरजीवी मुनि ग्यान बिकल जनु। बूड़त लहेउ बालअवलंबनु॥
मोह मगन मति नहिं बिदेह की। महिमा सिय रघुबर सनेह की॥

दो०-सिय पितु-मातु सनेह बस, बिकल न सकी सँभारि।
धरनिसुता धीरज धरेउ, समउ सुधरमु बिचारि॥

तापसबेष जनक सिय देखी। भयउ प्रेम परितोष बिसेषी॥
पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ। सुजस धवल जग कह सब कोऊ॥
जिति सुरसरि कीरतिसरि तोरी। गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी॥
गंग अवनिथल तीनि बड़ेरे। एहि किय साधुसमाज घनेरे॥
पितु कह सत्य सनेह सुबानी। सीय सकुचि महुँ मनहुँ समानी॥
पुनि पितु मातु लीन्हि उर लाई। सिख आसिष हित दीन्ह सुहाई॥
कहति न सीय सकुचि मन माहीं। इहाँ बसब रजनी भल नाहीं॥
लखि रुख रानि जनायेउ राऊ। हृदय सराहत सील सुभाऊ॥

दो०-बार बार मिलि भेंटि सिय, बिदा कीन्ह सनमानि।
कही समय सिर भरतगति, रानि सुबानि सयानि॥२८७॥

सुनि भूपाल भरतब्यवहारू। सोन सुगंध सुधा ससिसारू॥
मूदे सजल नयन पुलके तन। सुजस सराहन लगे मुदित मन॥
सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि। भरतकथा भवबंध बिमोचनि॥
धरम राजनय ब्रह्मबिचारू। इहाँ जथामति मोर प्रचारू॥
सो मति मोरि भरत महिमाहीं। कहइ काह छलि छुअति न छाहीं॥
बिधि गनपति अहिपति सिव सारद। कबि कोबिद बुध बुद्धिबिसारद॥
भरत चरित कीरति करतूती। धरम सील गुन बिमल बिभूती॥
समुझत सुनत सुखद सब काहू। सुचि सुरसरि रुचि निदर सुधाहू॥

दो०-निरवधि गुन निरुपम पुरुष, भरत भरतसम जानि।
कहिय सुमेरु कि सेरसम, कबि कुल-मति सकुचानि॥२८८॥

अगम सबहिं बरनत बरबरनी। जिमि जलहीन मीन गमु धरनी॥
भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं राम न सकहिं बखानी॥
बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ। तियजिय की रुचि लखि कह राऊ॥

रहिं लपन भरत बन जाहीं। सब कर भल सब के मन माहीं॥
पे परन्तु भरत रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी॥
त सनेह अवधि ममता की। जद्यपि राम सींव समता की॥
मारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे॥
धन सिद्धि रामपग नेहू। मोहि लखि परत भरतमत एहू॥

दो०–भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं, मनसहुँ रामरजाइ।
करिय न सोच सनेहबस, कहेउ भूप बिलखाइ॥२६०॥

म भरत-गुन गनत सप्रीती। निसि दंपतिहि पलकसम बीती॥
मसमाज प्रात जुग जागे। न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे॥
नहाइ गुरु पहिं रघुराई। बंदि चरन बोले रुख पाई॥
नाथ भरत पुरजन महतारी। सोकबिकल बनबास दुखारी॥
हित समाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिवस भये सहत कलेसू॥
चित होइ सोइ कीजिय नाथा। हित सबही कर रउरे हाथा॥
स कहि अतिसकुचे रघुराऊ। मुनि पुलके लखि सील सुभाऊ॥
न्ह बिनु राम सकल सुख साजा। नरकसरिस दुहुँ राजसमाजा॥

दो०–प्रान प्रान के जीव के, जिव सुख के सुख राम।
तुम्ह तजि तात सुहात गृह, जिन्हहिं तिन्हहिं बिधि बाम॥२६१॥

गि सुख धरम करम जरि जाऊ। जहँ न राम पद पकज भाऊ॥
जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं रामप्रेम परधानू॥
न्ह बिनु दुखी सुखी तुम्ह तेही। तुम्ह जानहु जिय जो जेहि केही॥
राउर आयसु सिर सबही के। बिदित कृपालहिं गति सब नीके॥
आपु आस्रमहिं धारिय पाऊ। भयउ सनेहसिथिल मुनिराऊ॥
करि प्रनाम तब राम सिधाये। रिषि धरि धीर जनक पहिं आये॥
रामबचन गुरु नृपहिं सुनाये। सील सनेह सुभाय सुहाये॥
महाराज अब कीजिय सोई। सब कर धरमसहित हित होई॥

दो०-ज्ञाननिधान सुजान सुचि, धरमधीर नरपाल।
तुम्ह बिन असमंजससमन, को समरथ एहिकाल॥२६

सुनि मुनिबचन जनक अनुरागे। लखि गति ज्ञान बिराग बि०
सिथिल सनेह गुनत मन माहीं। आये इहाँ कीन्ह भल ना॰
रामहिं राय कहेउ बन जाना। कीन्ह आपु प्रिय
हम अब बन तें बनहिं पठाई। प्रमुदित फिरब बिबेक बड़ा
तापस मुनि महिसुर सुनि देखी। भये प्रेमबस बिकल बिसर
समउ समुझि धरि धीरज राजा। चले भरत पहिं सहितसमा॰
भरत आइ आगे भइ लीन्हे। अवसरसरिस सुआसन
तात भरत कह तिरहुतिराऊ। तुम्हहिं बिदित रघुबीर सुभा॰

दो०-राम सत्यब्रत धरमरत, सब कर सील सनेहु।
सकट सहत सँकोचबस, कहिय जो आयसु देहु॥२६

सुनि तन पुलकि नयनभरि बारी। बोले भरत धीर धरि भा॰
प्रभु प्रिय पूज्य पितासम आपू। कुल गुरु सम हित माय न
कौसिकादिमुनि सचिवसमाजू। ज्ञान अबु निधि आपुन
सिसु सेवक आयसु अनुगामी। जानि मोहि सिख देइय
एहि समाज थल बूझब राउर। मौन मलिन मैं बोलब ब॰
छोटे बदन कहउँ बडि बाता। छमब तात लखि बाम बिधा॰
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। सेवाधरम कठिन जग जा॰
स्वामि धरम स्वारथहिं बिरोधू। बैरअध प्रेमहिं न प्रबो॰

दो०-राखि राम रुख धरमुब्रत, पराधीन मोहि जानि।
सब के समत सर्वहित, करिय प्रेम पहिचान॥२६७

भरतबचन सुनि देखि सुभाऊ। सहितसमाज सराहत रा॰
सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे। अरथ अमित अति आखर थ॰
ज्यों मुख मुकुर मुकुर निजपानी। गहि न जाइ अस अदभुत
भूप भरत मुनि साधु समाजू। गे जहँ बिबुध कुमुद द्विज रा॰

े सुधि सोच विकल सब लोगा। मनहुँ मीनगन नवजल जोगा॥
: प्रथम कुल-गुरु-गति देखी। निरखि विदेह सनेह विसेखी॥
त भगति मय भरत निहारे। सुर स्वारथी हहरि हिय हारे॥
ब कोउ राम प्रेममय पेखा। भये अलेख सोचबस लेखा॥

दो०-राम सनेह सकोच बस, कह ससोच सुरराज।
रचहु प्रपचहि पच मिलि,नाहिं त भयउ अकाज॥२९५॥

ुरन्ह सुमिरि सारदा सराही। देवि देव सरनागत पाही॥
ेरि भरतमति करि निजमाया। पालु विबुधकुल करि छलछाया॥
विबुधविनय सुनि देवि सयानी। बोली सुर स्वारथ जड जानी॥
ो सन कहहु भरत मति फेरू। लोचन सहस न सूझ सुमेरू॥
विधि-हरि-हर माया बडि भारी। सोउ न भरतमति सकइ निहारी॥
ो मति मोहि कहत करु भोरी। चाँदिनि कर कि चदकर चोरी॥
भरतहृदय सिय राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनिप्रकासू॥
अस कहि सारद गइ विधिलोका। विबुध बिकल निसि मानहुँ कोका॥

दो० सुर स्वारथी मलीन मन, कीन्ह कुमत्र कुठाटु।
रचि प्रपच माया प्रबल, भय भ्रम अरति उचाटु॥२९६॥

रि कुचालि सोचत सुरराजू। भरतहाथ सब काजु अकाजू॥
ये जनक रघुनाथसमीपा। सनमाने सब रबि कुल दीपा॥
मय समाज धरम अविरोधा। बोले तब रघु बस पुरोधा॥
नक भरत सवाद सुनाई। भरत कहाउति कही सुनाई॥
ात राम जस आयसु देहू। सो सब करइ मोर मत एहू॥
सुनि रघुनाथ जोरि जुगपानी। बोले सत्य सरल मृदु बानी॥
विद्यमान आपुन मिथिलेसू। मोर कहब सब भाँति भदेसू॥
राउर राय रजायसु होई। राउरि सपथ सही सिर सोई॥

दो०-रामसपथ सुनि मुनि जनक, सकुचे सभासमेत।
सकल बिलोकत भरतमुख, बनइ न ऊतरु देत॥२९७॥

सभा सकुचवस भरत निहारी। रामबधु धरि धीरज ...
कुसमउ देखि सनेहु सँभारा। बढ़त बिंधि जिमि घटज ...
सोक कनकलोचन मति छोनी। हरी बिमल-गुन-गन जग ...
भरतबिबेक बराहु बिसाला। अनायास उधरी तेहि काला ...
करि प्रनाम सब कहँ कर जोरे। राम राउ गुरु साधु निहोरे ...
छमब आजु अतिअनुचित मोरा। कहउँ बचन मृदु बचन ...
हिय सुमिरी सारदा सुहाई। मानस तें मुखपंकज आई ...
बिमल बिबेक धरम नय साली। भरतभारती मंजु मराली ...

दो०–निरखि बिबेक बिलोचननिह, सिथिल सनेह समाजु।
करि प्रनाम बोले भरत, सुमिरि सीय रघुराजु ॥

प्रभु पितु मातु सुहृद गुरु स्वामी। पूज्य परमहित ...
सरल सुसाहिब सीलनिधानू। प्रनतपाल सर्वज्ञ ...
समरथ सरनागत हितकारी। गुनगाहक अवगुन ...
स्वामि गोसाइँहिं सरिस गोसाईं। मोहि समान मैं स्वामि ...
प्रभु पितु बचन मोहबस पेली। आयेउँ इहाँ समाज सकेली ...
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू। अमिय अमरपद माहुर मीचू ...
रामरजाइ मेट मन माहीं। देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं ...
सो मैं सब बिधि कीन्हि ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई ...

दो०–कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषन भे भूषनसरिस, सुजस चारु चहुँ ओर ॥ ...

राउरिरीति सुबानि बड़ाई। जगत बिदित निगमागम गाई ...
कूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निसील निरीस ...
तेउ सुनि सरन सामुहे आये। सकृत प्रनाम किये अपनाये ...
देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधुसमाज ...
को साहिब सेवकहि नेवाजी। आपु समान साज सब साजी ...
निज करतूति न समुझिय सपने। सेवक सकुच सोच उर अपने ...

ो गोसाईं नहिं दूसर कोपी। भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी॥
ु नाचत सुक पाठ प्रबीना। गुनगति नट पाठक आधीना॥

दो०-यों सुधारि सनमानि जन, किये साधु सिरमोर।
को कृपाल बिनु पालिहइ, बिरदावलि बरजोर॥ ३००॥

ोक सनेह कि बाल सुभाये। आयउँ लाइ रजायसु बाये॥
ाहूँ कृपालु हेरि निज ओरा। सबहि भाँति भल मानेउ मोरा॥
ेखेउँ पाय सु-मंगल-मूला। जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला॥
ड़े समाज बिलोकेउँ भागू। बड़ी चूक साहिबअनुरागू॥
ृपा अनुग्रह अंग अघाई। कीन्हि कृपानिधि सब अधिकाई॥
ाखा मोर दुलार गोसाईं। अपने सील सुभाय भलाई॥
ाथ निपट मैं कीन्हि ढिठाई। स्वामि समाज सकोच बिहाई॥
अविनय बिनय जथारुचि बानी। छमहिं देव अतिआरति जानी॥

दो०-सुहृद सुजान सुसाहिबहि, बहुत कहब बड़ि खोरि।
आयसु देइय देव अब, सबइ सुधारिय मोरि॥ ३०१॥

प्रभु पद पदुम पराग दोहाई। सत्य सुकृत सुखसीवँ सुहाई॥
सा करि कहउँ हिये अपने की। रुचि जागत सोवत सपने की॥
सहज सनेह स्वामिसेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई॥
आज्ञा सम न सुसाहिबसेवा। सो प्रसाद जन पावहि देवा॥
अस कहि प्रेमबिबस भये भारी। पुलक शरीर बिलोचन बारी॥
प्रभु-पद कमल गहे अकुलाई। समउ सनेह न सो कहि जाई॥
कृपासिंधु सनमानि सुबानी। बैठाये समीप गहि पानी॥
भरतबिनय सुनि देखि सुभाऊ। सिथिल सनेह सभा रघुराऊ॥

छंद—रघुराउ सिथिल सनेह साधु समाज मुनि मिथिलाधनी।
मन महँ सराहत भरत-भायप भगति की महिमा घनी॥
भरतहिं प्रसंसत बिबुध बरषत सुमन मानसमलिन से।
तुलसी बिकल सब लोग सुनि सकुचे निसागम नलिन से॥

सो०-देखि दुखारी दीन, दुहुँ समाज नरनारि सब ।
मघवा महामलीन, मुयेहिं मारि मगल चहत ॥३०२॥

कपट कुचालि-सीव सुरराजू । पर अकाज प्रिय आपन काजू ॥
काकसमान पाक रिपु रीती । छली मलीन कतहुँ न प्रतीती ॥
प्रथम कुमत करि कपट सकेला । सो उचाट सबके सिर मेला ॥
सुरमाया सब लोग बिमोहे । राम प्रेम अतिशय न बिछोहे ॥
भये उचाटबस मन थिर नाहीं । छन बन रुचि छन सदन सुहाहीं ॥
दुबिध मनोगत प्रजा दुखारी । सरित सिंधु सगम जनु बारी ॥
दुचित कतहुँ परितोष न लहहीं । एक एक सन मरम न कहहीं ॥
लखि हिय हँसि कह कृपानिधानू । सरिस स्वान मघवान जुवानू ॥

दो०-भरत जनक मुनिजन सचिव,साधु सचेत बिहाइ ।
लागि देव माया सबहिं, जथाजोग जन पाइ ॥३०३॥

कृपासिंधु लखि लोग दुखारे । निजसनेह सुर पति छल भारे ॥
सभा राउ गुरु महिसुरि मत्री । भरत भगति सब कै मति जत्री ॥
रामहिं चितवत चित्र लिखे से । सकुचत बोलत बचन सिखे से ॥
भरत - प्रीति - नति बिनय बड़ाई । सुनत सुखद बरनत कठिनाई ॥
जासु बिलोकि भगति लवलेसू । प्रेममगन मुनिगन मिथिलेसू ॥
महिमा तासु कहइ किमि तुलसी । भगति सुभाय सुमति हिय हुलसी ॥
आपु छोटि महिमा बड़ि जानी । कबिकुल कानि मानि सकुचानी ॥
कहि न सकति गुन रुचि अधिकाई । मतिगति बालबचन की नाईं ॥

दो०-भरत बिमल-जस बिमल बिधु, सुमति चकोर कुमारि ।
उदित बिमल जन हृदय नभ, एक टक रही निहारि ॥३०४॥

भरत सुभाउ न सुगम निगमहूँ । लघुमति चापलता कबि छमहूँ ॥
कहत सुनत सतिभाउ भरत को । सीय राम पद होइ न रत को ॥
सुमिरत भरतहिं प्रेम राम को । जेहि न सुलभ तेहि सरिस बाम को ॥
देखि दयाल दसा सबही की । राम सुजान जानि जन जी की ॥

धरमधुरीन धीर नयनागर। सत्य सनेह सील सुख सागर॥
देस काल लखि समयसमाजू। नीति - प्रीति - पालक रघुराजू॥
बोले बचन बानि सरबस से। हित परिनाम सुनत ससिरस से॥
तात भरत तुम्ह धरमधुरीना। लोक - बेद - बिद परमप्रबीना॥

दो०–करम बचन मानस बिमल, तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुरुसमाज लघु-बधु-गुन, कुसमय किमि कहि जात॥३०५॥

जानहु तात तरनि-कुल रीती। सत्यसंध पितु कीरति प्रीती॥
समउ समाज लाज गुरुजन की। उदासीन हित अनहित मन की॥
तुम्हहिं बिदित सबही कर करमू। आपन मोर परमहित धरमू॥
मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा। तदपि कहउँ अवसर अनुसारा॥
तात तात बिनु बात हमारी। केवल गुरु कुल-कृपा सँभारी॥
न तरु प्रजा पुरजन परिवारू। हमहिं सहित सब होत खुआरू॥
जौं बिनु अवसर अथव दिनेसू। जग केहि कहहु न होइ कलेसू॥
तस उतपात तात बिधि कीन्हा। मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा॥

दो०–रामकाज सह लाज पति, धरम धरनि धन धाम।
गुरुप्रभाउ पालिहि सबहिं, भल होइहि परिनाम॥३०६॥

सहित समाज तुम्हार हमारा। घर बन गुरुप्रसाद रखवारा॥
मातु - पिता गुरु -स्वामि - निदेसू। सकलधरम धरनीधर सेसू॥
सो तुम्ह करहु करावहु मोहू। तात तरनि-कुल पालक होहू॥
साधक एक सकलसिधि देनी। कीरति सुगति भूतिमय बेनी॥
सो बिचार सहि संकट भारी। करहु प्रजा परिवार सुखारी॥
बाँटी बिपति सबहिं मोहि भाई। तुम्हहिं अवधि भरि बड़ि कठिनाई॥
जानि तुम्हहिं मृदु कहउँ कठोरा। कुसमय तात न अनुचित मोरा॥
होहिं कुठाय सुबंधु सहाये। ओडियहिं हाथ असनि के घाये॥

दो०-सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिब होइ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि, सुकवि सराहहिं सोइ ॥३०७।

सभा सकल सुनि रघुवर बानी। प्रेम पयोधि अमिय जनु सानी ॥
सिथिलसमाज सनेह समाधी। देखि दसा चुप सारद साधी ॥
भरतहिं भयउ परम सतोषू। सनमुख स्वामि विमुख दुख दोषू ॥
मुख प्रसन्न मन मिटा विषादू। भा जनु गूँगेहि गिरा प्रसादू ॥
कीन्ह सप्रेम प्रनाम बहोरी। बोले पानिपकरुह जोरी ॥
नाथ भयउ सुख साथ गये को। लहेउ लाहु जग जनम भये को ॥
अब कृपाल जस आयसु होई। करउँ सीस धरि सादर सोई ॥
सो अवलंब देव मोहिं देई। अवधि पार पावउँ जेहि सेई ॥

दो०-देव देव अभिषेक हित, गुरुअनुसासन पाइ।
आनेउँ सब तीरथसलिल, तेहि कहँ काह रजाइ ॥३०८॥

एक मनोरथ बड मन माहीं। सभय सकोच जात कहि नाहीं ॥
कहहु तात प्रभुआयसु पाई। बोले बानि सनेह सुहाई ॥
चित्रकूट मुनि थलतीरथ बन। खगमृग सरिसर निर्झर गिरिगन ॥
प्रभु पद अंकित अवनि बिसेखी। आयसु होइ त आवउँ देखी ॥
अवसि अत्रिआयसु सिर धरहू। तात बिगतभय कानन चरहू ॥
मुनिप्रसाद बन मंगल दाता। पावन परम सुहावन भ्राता ॥
रिषिनायक जहँ आयसु देही। राखेउ तीरथजल थल तेही ॥
सुनि प्रभुवचन भरत सुख पावा। मुनि पद कमल मुदित सिर नावा॥

दो०-भरत-राम-संवाद सुनि, सकल सुमंगल-मूल।
सुर स्वारथी सराहि कुल, बरषत सुर तरु-फूल ॥३०९॥

धन्य भरत जय राम गोसाईं। कहत देव हरषत बरिआईं ॥
मुनि मिथिलेस सभा सब काहू। भरत बचन सुनि भयउ उछाहू ॥
भरत-राम-गुन-ग्राम सनेहू। पुलकि प्रसंसत राउ बिदेहू ॥
सेवक स्वामी भाउ सुहावन। नेम प्रेम अति पावन पावन ॥

मतिअनुसार सराहन लागे। सचिव सभासद सब अनुरागे॥
सुनि सुनि राम भरत सवादू। दुहुँ समाज हिय हरष विषादू॥
राममातु दुख-सुख-सम जानी। कहि गुन राम प्रबोधी रानी॥
एक कहहिं रघुबीर बडाई। एक सराहत भरत भलाई॥

दो०-अत्रि कहेउ तब भरत सन, सैल समीप सुकूप।
राखिय तीरथतोय तहँ, पावन अमिय अनूप॥३१०॥

भरत अत्रिअनुसासन पाई। जलभाजन सब दिये चलाई॥
सानुज आप अत्रि मुनि साधू। सहित गये जहँ कूप अगाधू॥
पावन पाथ पुन्य थल राखा। प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाखा॥
तात अनादिसिद्ध थल एहू। लोपेउ काल बिदित नहिं केहू॥
तब सेवकन्ह सरस थल देखा। कीन्ह सुजल हित कूप बिसेखा॥
विधिबस भयउ बिस्वउपकारू। सुगम अगम अति धरम विचारू॥
भरतकूप अब कहिहहिं लोगा। अतिपावन तीरथ जलजोगा॥
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी। होइहहिं बिमल करम मनबानी॥

दो०-कहत कूपमहिमा सकल, गये जहाँ रघुराउ।
अत्रि सुनायउ रघुबरहिं, तीरथ-पुन्य प्रभाउ॥३११॥

कहत धरम इतिहास सप्रीती। भयउ भोर निसि सो सुख बीती॥
नित्य निबाहि भरत दोउ भाई। राम - अत्रि - गुरु आयसु पाई॥
सहित समाज साज सब सादे। चले राम बन अटन पयादे॥
कोमल चरन चलत बिनु पनही। भइ मृदु भूमि सकुचि मनमनहीं॥
कुस कंटक काँकरी कुराई। कटुक कठोर कुबस्तु दुराई॥
महि मंजुल मृदु मारग कीन्हे। बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हे॥
सुमन बरषि सुर घन करि छाहीं। बिटप फूल फल तृन मृदुताहीं॥
मृग बिलोकि खग बोलि सुबानी। सेवहिं सकल रामप्रिय जानी॥

दो०-सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु, राम कहत जमुहात।
राम प्रान प्रिय भरत कहुँ, यह न होइ बडि बात॥३१२॥

एहि विधि भरत फिरत बनमाहीं। नेम प्रेम लखि मुनि सकुचाहीं॥
पुन्य जलास्रय भूमि बिभागा। खग मृग तरु तृन गिरि बन बागा॥
चारु बिचित्र पवित्र बिसेखी। बूझत भरत दिव्य सब देखी॥
सुनि मन मुदित कहत रिषिराऊ। हेतु नाम गुन पुण्य प्रभाऊ॥
कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा। कतहुँ बिलोकत मन अभिरामा॥
कतहुँ बैठि मुनि आयसु पाई। सुमिरत सीयसहित दोउ भाई॥
देखि सुभाउ सनेह सुसेवा। देहिं असीस मुदित बनदेवा॥
फिरहिं गये दिन पहर अढाई। प्रभु-पद कमल बिलोकहिं आई॥

दो०–देखे थलतीरथ सकल, भरत पाँच दिन माँझ।
कहत सुनत हरिहर सुजस, गयउ दिवस भइ साँझ॥३१३॥

भोर न्हाइ सब जुरा समाजू। भरत भूमिसुर तिरहुतिराजू॥
भल दिन आजु जानि मन माहीं। राम कृपालु कहत सकुचाहीं॥
गुरु नृप भरत सभा अवलोकी। सकुचि राम फिरि अवनि बिलोकी॥
सील सराहि सभा सब सोची। कहुँ न रामसम स्वामि सँकोची॥
भरत सुजान रामरुख देखी। उठि सप्रेम धरि धीर बिसेखी॥
करि दंडवत कहत कर जोरी। राखी नाथ सकल रुचि मोरी॥
मोहि लगि सबहि सहेउ संतापू। बहुत भाँति दुख पावा आपू॥
अब गोसाइँ मोहि देउ रजाई। सेवउँ अवध अवधि भर जाई॥

दो०–जेहि उपाय पुनि पाय जन, देखइ दीनदयाल।
सो सिख देइए अवधि लगि, कोसलपाल कृपाल॥३१४॥

पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं। सब सुचि सरस सनेह सगाईं॥
राउर बदि भल भव दुख-दाहू। प्रभु बिनु बादि परम पद-लाहू॥
स्वामि सुजान जानि सब ही की। रुचि लालसा रहनि जन जी की॥
प्रनतपाल पालहिं सब काहू। देव दुहू दिसि ओर निबाहू॥
अस मोहि सब बिधि भूरि भरोसो। किये बिचार न सोच खरो सो॥
आरति मोर नाथ कर छोहू। दुहुँ मिलि कीन्ह ढीठ हठि मोहू॥

यह बड दोष दूरि कर स्वामी। तजि सँकोच सिखइय अनुगामी॥
भरतविनय सुनि सबहि प्रससी। छीर - नीर विवरन गति हसी॥

दो०-दीनबधु सुनि बधु के,बचन दीन छल हीन।
देस काल अवसर सरिस, बोले राम प्रबीन॥३१५॥

तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिंता गुरुहिं नृपहिं घर वन की॥
माथे पर गुरु मुनि मिथिलेसू। हमहिं तुम्हहिं सपनेहुँ न कलेसू॥
मोर तुम्हार परमपुरुपारथ। स्वारथ सुजस धरम परमारथ॥
पितुआयसु पालिय दुहुँ भाई। लोक बेद भल भूपभलाई॥
गुरु पितु मातु स्वामि सिख पाले। चलेहु कुमग पग परहिं न खाले॥
अस बिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई॥
देस कोस पुरजन परिवारू। गुरुपद रजहिं लाग छरु भारू॥
तुम्ह मुनि मातु सचिव सिखमानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी॥

दो०-मुखिया मुख सो चाहिये, खान पान कहँ एक।
पालइ पोपइ सकल अँग, तुलसी सहित बिवेक॥३१६॥

राज - धरम - सरबसु एतनोई। जिमि मन माहँ मनोरथ गोई॥
बधुप्रबोध कीन्ह बहु भाती। बिनु अधार मन तोप न साती॥
भरत सील गुरु सचिव समाजू। सकुच सनेह बिबस रघुराजू॥
प्रभु करि कृपा पावँरी दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्ही॥
चरनपीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के॥
सपुट भरत सनेह रतन के। आखर जुग जनु जीवजतन के॥
कुलकपाट कर कुशल करम के। बिमलनयन सेवा-सु धरम के॥
भरत मुदित अवलब लहे तें। अस सुख जस सिय राम रहेतें॥

दो०-मागेउ बिदा प्रनाम करि, राम लिये उर लाइ।
लोग उचाटे अमरपति, कुटिल कुअवसरु पाइ॥३१७॥

सो कुचालि सब कहँ भइ नीकी। अवधि आससम जीवनि जीकी॥
न तरु लपन सिय राम बियोगा। हहरि मरत सब लोग कुरोगा॥

रामकृपा अवरेब सुधारी। बिबुधधारि भइ गुनद गोहारी॥
भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो। राम प्रेम रस कहि न परत सो॥
तन मन बचन उमग अनुरागा। धीर धुर धर धीरज त्यागा॥
बारिजलोचन मोचत बारी। देखि दसा सुरसभा दुखारी॥
मुनिगन गुरुजन धीर जनक से। ज्ञानअनल मन कसे कनक से॥
जे बिरंचि निरलेप उपाय। पदुमपत्र जिमि जग जलजाये॥

दो०—तेउ बिलोकि रघुबर भरत प्रीति अनूप अपार।
भये मगन मन तन बचन, सहित बिराग बिचार॥३१८॥

जहाँ जनक गुरु गति मति भोरी। प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी॥
बरनत रघुबर भरत-बियोगू। सुनि कठोर कबि जानिहि लोगू॥
सो सकोच रस अकथ सुबानी। समउ सनेह सुमिरि सकुचानी॥
भेंटि भरत रघुबर समुझाये। पुनि रिपुदमन हरषि हिय लाये॥
सेवक सचिव भरत रुख पाई। निज निज काज लगे सब जाई॥
सुनि दारुनदुख दुहू समाजा। लगे चलन के साजन साजा॥
प्रभु पद-पदुम बंदि दोउ भाई। चले सीस धरि रामरजाई॥
मुनि तापस बनदेव निहोरी। सब सनमानि बहोरि बहोरी॥

दो०—लखनहिं भेंटि प्रनाम करि, सिर धरि सिय पद धूरि।
चले सप्रेम असीस सुनि, सकल सुमंगल-मूरि॥३१९॥

सानुज राम नृपहिं सिर नाई। कीन्हि बहुत बिधि बिनय बड़ाई॥
देव दयाबस बड़ दुख पायेउ। सहित समाज काननहिं आयेउ॥
पुर पग धारिय देइ असीसा। कीन्ह धीर धरि गवन महीसा॥
मुनि महिदेव साधु सनमाने। बिदा किये हरि-हर-सम जाने॥
सासुसमीप गये दोउ भाई। फिरे बंदि पग आसिप पाई॥
कौसिक बामदेव जाबाली। परिजन पुरजन सचिव सुचाली॥
जथाजोग करि बिनय प्रनामा। बिदा किये सब सानुज रामा॥
पुरुष लघु मध्य बड़ेरे। सब सनमानि कृपानिधि फेरे॥

दो०-भरत मातु पद बंदि प्रभु, सुचि सनेह मिलि भेंटि।
विदा कीन्हि सजि पालकी, सकुच सोच सब मेंटि ॥३२०॥

परिजन मातु पितहिं मिलि सीता। फिरी प्रान प्रिय प्रेम पुनीता ॥
करि प्रनाम भेंटी सब सासू। प्रीति कहत कबि हिय न हुलासू॥
सुनि सिख अभिमत आसिष पाई। रही सीय दुहुँ प्रीति समाई ॥
रघुपति पटु पालकी मँगाई। करि प्रबोधु सब मातु चढाई ॥
बार बार हिलि मिलि दुहुँ भाई। सम सनेह जननी पहुँचाई ॥
साजि बाजि गज बाहन नाना। भूप भरतदल कीन्ह पयाना ॥
हृदय राम सिय लखन समेता। चले जाहिं सब लोग अचेता ॥
बसह बाजि गज पसु हिय हारे। चले जाहिं परबस मन मारे ॥

दो०-गुरु गुरु तिय पद बंदि प्रभु, सीता लषन समेत।
फिरे हरष बिसमय सहित, आये परननिकेत ॥३२१॥

बिदा कीन्ह सनमानि निषादू। चलेउ हृदय बड बिरह बिषादू ॥
कोल किरात भिल्ल बनचारी। फेरे फिरे जोहारि जोहारी ॥
प्रभु सिय लषन बैठि बट छाहीं। प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं ॥
भरत सनेह सुभाव सुबानी। प्रिया अनुज सन कहत बखानी॥
प्रीति प्रतीति बचन मन करनी। श्रीमुख राम प्रेमबस बरनी ॥
तेहि अवसर खग मृग जल मीना। चित्रकूट चर अचर मलीना ॥
बिबुध बिलोकि दसा रघुबर की। बरषि सुमन कहि गति घर घर की।
प्रभु प्रनाम करि दीन्ह भरोसो। चले मुदित मन डर न खरो सो ॥

दो०-सानुज सीयसमेत प्रभु, राजत परनकुटीर।
भगति ज्ञान बैराग जनु, सोहत धरे सरीर ॥३२२॥

मुनि महिसुर गुरु भरत भुआलू। रामबिरह सब साज बिहालू ॥
प्रभु-गुन-ग्राम गुनत मन माहीं। सब चुपचाप चले मग जाहीं ॥
जमुना उतरि पार सब भयऊ। सो बासर बिनु भोजन गयऊ ॥
उतरि देवसरि दूसर बासू। रामसखा सब कीन्ह सुपासू ॥

सई उतरि गोमती नहाये। चौथे दिवस अवधपुर आये॥
जनक रहे पुर बासर चारी। राज काज सब साज सँभारी।
सौंपि सचिव गुरु भरतहि राजू। तिरहुति चले साजि सब साजू॥
नगर नारि नर गुरु सिख मानी। बसे सुखेन राम रज धानी॥

दो०–रामदरस लगि लोग सब, करत नेम उपवास।
तजि तजि भूपन भोग सुख, जियत अवधि की आस॥३२३॥

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे। निजनिज काज पाइ सिख ओधे॥
पुनि सिख दीन्ह बोलि लघु भाई। सौंपी सकल मातु सेवकाई॥
भूसुर बोलि भरत कर जोरे। करि प्रनाम बरविनय निहोरे॥
ऊँच नीच कारज भल पोचू। आयसु देव न करव सँकोचू॥
परिजन पुरजन प्रजा बोलाये। समाधान करि सुबस बसाये॥
सानुज गे गुरगेह बहोरी। करि दण्डवत कहत कर जोरी॥
आयसु होइ त रहउँ सनेमा। बोले मुनि तन पुलकि सप्रेमा॥
समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरमसार जग होइहि सोई॥

दो०–सुनि सिख पाइ असीस बडि, गनक बोलि दिन साधि।
सिंहासन प्रभुपादुका, बैठारे निरुपाधि॥३२४।

राममातु गुरपद सिरु नाई। प्रभु-पद पीठ रजायसु पाई॥
नदिगाव करि परनकुटीरा। कीन्ह निवास धरम धुरधीरा॥
जटाजूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि कुससाथरी सवारी॥
असन बसन बासन व्रत नेमा। करत कठिन रिषिधरम सप्रेमा॥
भूपण बसन भोग सुख भूरी। मन तन वचन तजे तृन तूरी॥
अवधराज सुरराज सिहाई। दसरथधन सुनि धनद लजाई॥
तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। चचरीक जिमि चपक बागा॥
रमाविलास राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड भागी॥

दो०–राम प्रेम भाजन भरत, बडे न यहि करतूति।
चातक हंस सराहियत, टेंक बिबेक बिभूति॥३२५॥

देह दिनहुँ दिन दूबर होई। घट न तेज बल मुखछबि सोई॥
नित नव राम प्रेम पन पीना। बढ़त धरमदल मन न मलीना॥
जिमि जल निघटत सरद प्रकासे। बिलसत बेतस बनज बिकासे॥
सम दम संयम नियम उपासा। नखत भरत हिय बिमल अकासा॥
ध्रुव बिस्वास अवधि राकासी। स्वामिसुरति सुरबीथि बिकासी॥
राम प्रेम बिधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नित चोखा॥
भरत रहनि समुझनि करतूती। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती॥
बरनत सकल सुकवि सकुचाहीं। सेस - गनेस - गिरा-गमु नाहीं॥

दो०-नित पूजत प्रभु पाँवरी, प्रीति न हृदय समाति।
माँगि माँगि आयसु करत, राज काज बहु भाँति॥३२६॥

पुलकि गात हिय सियरघुबीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू॥
लषन राम सिय कानन बसहीं। भरत भवन बसि तप तनु कसहीं॥
दोउ दिसि समुझि कहत सबलोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू॥
सुनि ब्रत नेम साधु सकुचाहीं। देखि दसा मुनिराज लजाहीं॥
परमपुनीत भरत आचरनू। मधुर - मंजु - मुद-मंगल-करनू॥
हरन कठिन कलि-कलुष कलेसू। महा-मोह निसि दलन दिनेसू॥
पाप - पुंज - कुंजर - मृग,- राजू। समन सकल संताप-समाजू॥
जनरंजन भंजन भवभारू। रामसनेह सुधाकरसारू॥

छंद-सिय-राम प्रेम पियूष-पूरन होत जनम न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को।
दुखदाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को॥
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि रामसनमुख करत को॥

सो०-भरतचरित करि नेम तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद प्रेम अवसि होइ भव-रस बिरति॥ ३२७॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने
विमलविज्ञानवैराग्यसम्पादनो नाम
द्वितीय सोपान समाप्त।



टिप्पनियां

राम-चरित-मानस=यहाँ श्रीरामचन्द्रजी के चरित्र को 'मानस' अर्थात् मानसरोवर से उपमा दी गई है। यह मानसरोवर कैलास पर्वत के समीप स्थित है। सोपान=सीढ़ी या पौड़ी। काण्ड=प्रकरण या अध्याय।

संस्कृत श्लोक—वामाङ्के=बाईं गोद या वाम भाग में। च=ओर। विभाति=शोभित है। भूधर-सुता=पहाड़ की पुत्री, पार्वती। देवापगा=गंगा। मस्तके=माथे पर। भाले=ललाट पर। बालविधु=द्वितीया का चन्द्रमा। गले=कण्ठ में। गरलम्=हलाहल विष। यस्योरसि=जिसकी छाती या वक्षःस्थल पर। व्यालराट्=नागराज। स अयम्=वे। भूतिविभूषण=भस्म से विभूषित। सुरवर=देवताओं में श्रेष्ठ। सर्वाधिप=सब के स्वामी। सर्वदा=हमेशा। शर्व=महादेव। सर्वगत=सब के अन्तर्यामी। शिव=कल्याण रूप। शशिनिभ=चन्द्रमा का सा शुक्ल वर्ण धारण करने वाले। पातुमाम्=मेरी रक्षा करें।

प्रसन्नता=खुशी को। या=जो। न=नहीं। गता=प्राप्त हुई। अभिषेकत=राज्यतिलक से। तथा=उसी प्रकार। न मम्लौ=मलिन नहीं हुई। वनवास दुःखत=वनवास के दुःख से। मुखाम्बुजश्री=मुख कमल की शोभा। रघुनन्दनस्य=श्रीरामचन्द्रजी के। सदाऽस्तु=सदैव हो। सा=वह शोभा। सुन्दर=अच्छी। मङ्गलप्रदा=आनन्द देने वाली।

नीलाम्बुज = नील कमल। श्यामल = श्याम। कोमलाङ्गम् = कोमल अङ्ग। सीता = जनककुमारी। समारोपित = सुशोभित। पाणौ = हाथों में। महासायक = श्रेष्ठबाण। चारु चापम् = सुन्दर धनुष। नमामि = नमस्कार करता हूँ। रघुवंश नाथम् = रघुकुल के नाथ को।

भावार्थ–१—जिनकी बाईं गोद में पार्वती, मस्तक पर गंगा, ललाट पर द्वितीया का चन्द्रमा, कण्ठ में विष और छाती पर नागराज सुशोभित हैं, वे घट-घट वासी सर्वस्वामी भस्म विभूषित, देवताओं में श्रेष्ठ, चन्द्रमा के समान शुक्ल वर्ण वाले कल्याणकारी महादेव मेरी रक्षा करें।

२—श्रीरामचन्द्र के मुख-कमल की जो शोभा न राज्य तिलक के कारण प्रसन्नता को प्राप्त हुई और न वनवास के कष्टों से मलिन हुई, वह मेरे लिए सदैव सुन्दर और आनन्द देने वाली हो।

३—नील कमल के समान जिनके साँवले और कोमल अंग हैं, जनकनन्दिनी श्रीसीताजी जिनके वाम भाग में सुशोभित हैं, जिनके हाथों में सुन्दर धनुष और बड़े बाण हैं, उन रघुकुल नायक भगवान् रामचन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ।

दोहा १—मुकुर = दर्पण। सुधारि = सुधार कर या साफ करके। जसु (यश) = बड़ाई। दायक = देने वाला। फल चारि = चार फल अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। श्रीगुरु सुधारि = गुरुजी के चरण-कमलों की धूल से अपना मन रूपी दर्पण स्वच्छ करके। शीशे का रेत से साफ होना प्रसिद्ध है, साधारणत भी किसी चीज़ को स्वच्छ करने के लिए रेत की ही आवश्यकता होती है। मोद बधाये = सहर्ष मंगल गान। भुवन चारिदस = चौदह लोक अर्थात् तल,

अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, पाताल, भूलोक, भुवलोक, स्वर्गलोक, महलोक, जनलोक, तपोलोक और सत्य लोक। भूधर = पहाड़। सुकृत = पुण्य। मेघ = बादल। बारी = पानी। रिधि (ऋद्धि) = वृद्धि, ऐश्वर्य। सिधि (सिद्धि) = सिद्धि आठ हैं अर्थात् अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व। उमगि = उमड़कर। अम्बुधि = समुद्र। सुचि (शुचि) = पवित्र।

यहा तुलसीदासजी ने १४ लोक रूपी विशालकाय पर्वतों पर पुण्य मेघों द्वारा सुख सलिल की वर्षा कराई है, जिसके कारण ऋद्धि-सिद्धि रूपी नदियों में सम्पत्ति रूपी जल बह निकला और वे अयोध्या रूपी समुद्र में जा मिलीं। समुद्र में रत्न भी होते हैं, अतएव गोस्वामी तुलसीदासजी ने अयोध्या के सागर में नगर निवासी नर-नारियों की रत्नोंसे उपमा दी है। कैसा सुन्दर रूपक और कितना अच्छा भाव है।

बिभूती = ऐश्वर्य। जनु = मानो। एतनिय = इतनी ही। फलित = फली हुई। बेली = लता। सील (शील) = चरित्र, स्वभाव। राऊ = राजा।

दोहा २—अस = यह। आपु अछत (अक्षत) = अपने जीते जी। जुबराज (युवराज) = राज्य का उत्तराधिकारी, नायब या छोटा राजा। नरनाह = राजा। उछाह = उत्साह। लोकप = इन्द्रादि लोकपाल। त्रिभुवन = आकाश, पाताल और मर्त्य। तीनिकाल = भूत, भविष्यत और वर्तमान। भूरि भाग = बड़भागी। सुभाय = स्वाभाविक रूप से, मामूली तौर से। बदन = मुंह। सम कीन्हा = ठीक किया। जरठपन = बुढ़ापा। लाहु = लाभ। जीवन लेहु = जीवन जन्म सफल क्यों नहीं कर लेते?

दोहा ३—उरआनि=दिल में लाकर। प्रेम पुलकि=प्रेम से पुलकित होकर। गुरुहिं=गुरु (वसिष्ठ) को। भुआल (भूपाल)= राजा। मुनिनायक=मुनिराज। सचिव=मन्त्री। प्रभु सोही=मानो वह (रामचन्द्र) आपके आशीर्वाद की साक्षात् मूर्ति हैं। छोह=प्रेम। रउरहिं नाइ =आपकी ही तरह। अनु-भयउ = अनुभव। पावनि = पवित्र। पूजिहि=पूरी होगी। सहज सनेह=स्वाभाविक प्रीति। रजायसु=आदेश, आज्ञा।

दोहा ४—राउर = आपका। अभिमत दातार=मनोरथों को पूरा करने वाला। महिप-मनि=राजाओं के सिरमोर। अनु-गामी=पीछे चलने वाला। फल तुम्हार = हे नृपश्रेष्ठ फल तो आपकी इच्छाओं के पीछे लगे फिरते हैं, अर्थात् जो आप चाहते हैं, वही हो जाता है। रहसि = प्रसन्न होकर। मृदु = कोमल। प्रसाद = कृपा, आशीर्वाद। निवाहीं = पूर्ण करेंगे। विमुख = खिलाफ। जरनि = जलन। तनय = पुत्र। पुनीत = पवित्र।

दोहा ५—साजिय = सजाओ, तैयार करो। 'जयजीव' = पहले समय में, प्रजाजन राजाओं का अभिवादन करते समय 'जयजीव' ही कहा करते थे। पाचहि = पच लोगों को। बिरव= पोधा। बढ़त सुसाखा = मानो बढती हुई बेल में टह नियाँ फूट निकली हों।

दोहा ६—आयसु = आज्ञा। राज अभिषेक हित = राज तिलक के लिए। आनहु = लाओ। पाना = पत्ते। चामर= चँवर। चरम = मृगछाला। वसन = वस्त्र। रोम पाट पट= ऊनी तथा रेशमी वस्त्र। वेद विदित=वेदमें कही गई। विताना= चँदोवा, मण्डप। सफल = फल सहित। रसाल = आम।

पुंगफल=सुपारी । वीथि=गली । रोपहु=आरोप करो, लगाओ । चौकई=चौक ।

दोहा ७—तोरन=वन्दनवार । तुरग=घोड़ा । नाग=हाथी । लाग=लग गये । बाज बधावा=अयोध्या में ढमाढम बधाई के बाजे बजने लगे । रामहिं ••• भाँती=राम को अपने भ्राता भरत का उसी प्रकार रात-दिन सोच है जिस तरह कछुए को अपने अण्डों का रहता है । कहते हैं कि कछुआ अपने अण्डों को बैठकर नहीं सेता, किन्तु वह दूर बैठा हुआ मन ही मन उन्हें सेता रहता है ।

दोहा ८—विधु=चन्द्रमा । वारिधि=समुद्र । बीच (वीचि)= लहर, तरंग । सोभ ••• विलासु=जैसे बढ़ते हुए चन्द्रमा को देखकर समुद्र लहरों से लहराता हुआ शोभा को प्राप्त होता है । हँकारी=बुलाकर । बहोरि=फिर । मृग-सावक नयनी=हिरन के बच्चे के से नेत्रवाली । विधु बदनी= चन्द्रमुखी ।

दोहा ९—अरघ=आने वाले के स्वागतार्थ पात्र से जल छोड़ने की क्रिया को 'अरघ' (अर्घ्य) देना कहते हैं । आने= लाए गये । 'सोरह भाँति पूज सनमाने'=शास्त्रों में षोडशोपचार पूजा का वर्णन है, अर्थात् आवाहन, आसन, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आरती, दक्षिणा, प्रदक्षिणा और विसर्जन ।

दोहा १०—कस=कैसे । हंस-बंस अवतंस=सूर्य वंश के मुकुटमणि । संजम (संयम)=ब्रह्मचर्यादि जितेन्द्रियता का पालन । केलि=खेलकूद । अनुज=पीछे पैदा हुआ अर्थात् छोटा भाई । बिहाय=छोड़कर ।

दोहा ११—रघु-कुल-कैरव-चन्द = रघुवश रूपी कुमुद को खिलाने वाला चन्द्रमा। अथाई=बैठक या चौपाल पर एकत्र समुदाय। केतिक बारा = कितनी देर। विधि=विधाता। चित चेता = मनचीती। कुचाली = खोटी चाल वाले। सारद (शारदा)=सरस्वती।

दोहा १२—भइउँ राती = कमल के वन के लिए मैं पाले की रात बनती हूँ। निहोरी= विनयपूर्वक, कृतज्ञता के भाव से। खोरी=दोष। विबुध मत पोची=देवताओं की बुद्धि कच्ची है, उसमें नीचता आगई है। जनु ... दुखदायी= मानो घोर कष्ट देने वाली कोई ग्रह दशा आई है।

दोहा १३—चेरी=दासी। अजस (अयश) पिटारी= कलंकिनी। गिरा=सरस्वती। देखि भाती=जिस प्रकार शहद के छत्ते को देखकर कुटिल भीलनी अवसर तकती है कि उसे किस प्रकार तोड़ लूं। बिलखाती=बिलखकर। का रानी=रानी ने हँस कर कहा कि तू (मन्थरा) अनमनी (उदास) क्यों हो रही है? गाल बड़ तोरे=तेरे बड़े गाल हैं, तू बड़ी बढ़कर बातें मारा करती है।

दोहा १४—कहसि किन = कहती क्यों नही। रिपु दमन= शत्रुघ्न। भा साल=कुबडी मन्थरा के हृदय में बडा उपताप हुआ। कत=क्या। गालु करब=मुहजोरी करना, गाल बजाना। दाहिन=अनुकूल। कस=क्यों। तुराई= तोशक। अरगानी=चुप। घरफोरी=घर फोडने वाली, भेदभाव डालने वाली।

दोहा १५—खोरे=लगड़े। फुर=सच्चा। आली=सखी। छोह=अनुग्रह, प्रेम। पतोहू=पुत्रवधू। छोभ (क्षोभ)=दुःख।

दोहा १६—परिहरि = छोड़कर। फोरइ जोगु (योग्य) = फोड़ने लायक। बया सो लुनिय = जो बोया है सो काटना है। लहिय जो दीन्हा = जो दिया है वही मिलेगा। अनभल = बुरा।

दोहा १७—तीय रानि = स्त्रियों की बुद्धि ओठों में होती है, अर्थात् वे किसी की चिकनी-चुपड़ी बातों में आकर उसका तुरन्त विश्वास कर लेती हैं। सुहृद = मित्र। पतियानि = विश्वास कर लिया। सुरमाया वश = देवताओं की माया के फन्दे में फँस कर। पुराणों में लिखा है कि देवताओं के बहुत आग्रह करने पर सरस्वती ने दुन्दभी नामकी कुबड़ी को ही शाप-वश मन्थरा के रूप में प्रकट किया था। इस कुबड़ी ने ही कैकेई की मति पलटी तथा राम को वनवासी बनाया। और इस प्रकार देवताओं का मनोरथ सफल हुआ। देवताओं का मनोरथ यह था कि रामचन्द्र राज-पाट में न फँस कर वनवासी बनें तथा राक्षसों का विध्वंस करें जिससे फिर कोई यज्ञ का विरोधी न रहे। स(श)वरी = भीलनी। घात जनु फावी = मानो घात लग गई। गढ़ि छोली = छील कर और बना कर, सिखा पढ़ा कर। अवध बोली = मानो उस समय मन्थरा के बोलने से साढ़े सात साता के लिए अयोध्या पर शनि सवार होगया। पिरीते = मित्र। जर = जल। रुँधहु " " वारी = उपाय रूपी उत्तम जल से गोड़ कर उसे रोक दो अथवा उसके चारों ओर अच्छी तरह बाढ़ लगा दो।

दोहा १८—राउर = आपका। बीचु पाई = अवसर पाकर। सालु = खटका। कपट जनाई = चतुर का कपट भी नहीं जाना जा सकता। प्रपच = जाल, षड्यन्त्र।

दोहा १९—कीन्हेसि कपट प्रबोध = कपट का पाठ पढ़ा दिया। स (श) त = सैकड़ों। प्रतीति = विश्वास। रेख खँचाइ = लकीर खींचकर, प्रतिज्ञापूर्वक। दूध की माखी = जब दूध में मक्खी पड जाती है तो न वह वहा से उड सकती है और न कुछ खा पी ही सकती है।

दोहा २०—कद्रू विनतहि = पुराणों में लिखा है कि कश्यपमुनि की कद्रू और विनता नामक दो स्त्रिया थीं। इनमें से कद्रू के बेटे सर्प और विनता के गरुड़ हुए। एक दिन इन दोनों स्त्रियों में सूर्य के घोड़े की पूँछ की रगत पर झगडा उठ खडा हुआ। कद्रू कहती थी पूँछ काली है, परन्तु विनता उसे सफेद बताती थी। अन्त में निणय यह हुआ कि दोनों स्त्रिया स्वयम् जाकर घोडे की पूँछ देखें और जिसकी बात गलत हो वही दासी बन कर रहे। कद्रू के बेटे सर्पों ने इस समय बडी चालाकी से काम लिया, वे इन दोनों के जाने से पहले ही सूर्य के घोडे की पूँछ से जा लिपटे जिससे वह काली दिखाइ देने लगी। फिर क्या था, विनता हार गई और उसे कद्रू की दासी बनकर रहना पडा। इस कथा की ओर मन्थरा का सकेत है।

बन्दिगृह सेइहहिं = कैद काटेंगे। नेव = नायब। पसेउ = पसीजना। दस (श) न = दाँत। चाँपी = दबाली। उकठ कुकाठू = गाँठ गठीला टेढ़ा लक्ड। बकिहि मराली = बगुली को हसनी समझ कर उसकी प्रशसा करने लगी। दहिनि मोरी = मेरी दाहिनी आँख रोज फडकती है। स्त्रियों का दक्षिण भाग फडकना अशुभसूचक समझा जाता है।

दोहा २१—अपने चलत = अपनी चलती में, जहा तक मेरी चली है, यथाशक्ति। अघ = पाप। मानि मन ऊना = जी को

छोटा जानकर। वासर = दिन। जामिनि (यामिनि) = रात्रि। रेख खींचना = गणित करके बताना।

दोहा २२—कुबलो = कुगति का पशु। उर-पाहन = हृदय रूपी पत्थर। टेई = पैनाई। माहुर = विष। थाती = धरोहर। जुड़ावहु छाती = छाती ठंडी करलो। लेहु = छीन लो। दुई वरदान = दो वरदान। इन वरदानों के सम्बन्ध में निम्नलिखित दो कथाएं प्रसिद्ध हैं (१) एक बार दक्षिण देशान्तर्गत वैजयन्त नगर में इन्द्र और शम्बरासुर के मध्य युद्ध हुआ। इस युद्ध में राजा दशरथ भी केकई को साथ लेकर लड़ने गये। एक दिन युद्ध करते-करते रात होगई, राक्षसों का बल बढ़ गया, उन्होंने बहुत से वीरों को काट डाला, दशरथ भी घायल होगये और उनके प्राणों पर आ बनी। राजा दशरथ का सारथी भी काट डाला गया। ऐसी दशा में केकई ने रथ हांका और वह अपने कौशल से उसे भगा ले गई, जिससे राजा के प्राण बच गये। होश आने पर दशरथ ने रानी को दो वरदान देने का अभिवचन दिया। रानी ने कहा आप इन वरदानों को धरोहर रूप रखिए, जब चाहूँगी, ले लूंगी। यह भी कथा है कि युद्ध में रथ का एक पहिया गिर गया तो रानी ने कीली की जगह अपना हाथ लगा दिया, जिससे रथ बराबर चलता रहा और जब राजा ने युद्ध में विजयी होकर रानी को धुरी की जगह इस प्रकार हाथ लगाये देखा तो वह बड़ा खुश हुआ और दो वरदान देने की बात कही।

दोहा २३—कुघात = बुराघात। सजग = होशियारी से। बहे जात कर = बहते हुए की। पुरव = पूरा करेगा। चष पूतरि = आँख की पुतली। दल = पत्ता। बिगोई = बिगाड़ दी। कुलाहल = हल्ला-गुल्ला।

दोहा ७४—प्रविसहिं = अन्दर जाते हैं। निर्गमहिं=बाहर आते हैं। भीर = भीड। फिरहिं = लौट जाते हैं। सरिस = समान। भ्रमहीं = जन्म लेते और मरते हैं। नात = नाता। ओर=अन्त। दाहू = दाह, जलन। नीच मते = खोटी सलाह मानने से।

दोहा ७५—गवन सनेहु = मानो स्नेह शरीर धारण कर निठुरता के पास गया। अर्थात् इस समय राजा के प्रेम और केकइ के कठोरपन की हद हो चुकी थी।

अगहुँड = आगे। रुखताके = मुँह ताकते रहना। सूल = त्रिशूल। कुलिस = वज्र। असि = तलवार। अगवनि हारे = सहने वाला। रतिनाथ = कामदेव। सुमन सर (शर) = फूलों के बाण। अन-अहिवातु = वैधव्य, रँडापा।

छन्द—परसत = छूना। पानि(णि) = हाथ। निवारई = हटा देना। दोउ देखइ = कवि ने केकइ की नागिन से उपमा दी है। नागिन के दो जीभ होती है, सो यहां केकई के दोनों वरदानों को मांगने की वासना ही दो जीभें हैं, वरदान दाँत हैं जिनसे काटने के लिए वह मर्मस्थान देख रही है। भवितव्यता = होनहार।

सोरठा २६—सुलोचनि = अच्छी आँखों वाली। पिक बचनि = कोयल की सी आवाज वाली। गज गामिनि = हाथी की सी चाल वाली। दुइ सिर = दो सिर वाला। रक = कंगाल। अमर = देवता। बपुरे = बेचारे। कीट = कीड़ा बरोरू = सुन्दर जाँघ वाली। तव = तेरा। आनन = मुँह। वेगि = शीघ्र।

दोहा २७—मन गुनि = मन में विचार कर। भूपन फन्द = गहने पहनने लगी, मानो हिरन को देखकर उसे फँसाने के

लिए भीलनी फदा तय्यार कर रही है। मञ्जुल=सुन्दर। उलकि उठेऊ=दहल उठा। पाक बरतोड़=पका बलतोड़, जब बल तोड़ हो जाता है तो उसके छूने से भी बड़ा दुःख होता है। पीर=दुःख। गोइ=छिपाई, गुप्त रक्खी। कोटि कुटिल मनि (मणि)=करोड़ों कुटिल गुरुओं की शिरोमणि। नीति निपुण=राजकाज तथा व्यवहार में प्रवीण। जलनिधि=समुद्र। अवगाह=अथाह।

दोहा २८—पिय=प्रिय, पति। कोहाय=रूठना। भोर-स्वभाऊ=भोला स्वभाव। जनि=निषेधात्मक। पातक=पाप। पुंजा=ढेर। गुंजा=घुंघची। कुमत जोली=मानो कुबुद्धि रूपी किसी बुरे पक्षी का कुलह (परदा, ढकन या टोपी) खोला गया हो। शिकारी पक्षियों को शिकार पर उड़ाने के वक्त उनकी आँखों से टोपी हटादी जाती है।

दोहा २९—ससि (शशि) कर=चन्द्रमा की किरण। ससि-कर कोकू=जिस प्रकार चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से चकवा व्याकुल हो जाता है। रात में चकवा-चकई एक स्थान पर नहीं रह सकते, इसलिए उन्हें चन्द्रमा की किरणें सुखद होने के बदले दुःखदायिनी बन जाती हैं। जनु लावा=मानो बटेर के बन में बाज ने हमला किया। बिवरन (ण)=बदरंग, फीका। दामिनि=बिजली। सुरतरु=कल्पवृक्ष। फरत=फलते ही। करिनि=हथिनी। नेई=नींव।

दोहा ३०—जोग=योग। जतिहि=यती को। झाँखा=झींखना। माखा=नाराज होना। बेसाहि=खरीद कर। सत्य-सध=सच्ची प्रतिज्ञा वाले। 'सिवि दधीचि बलि जो कछु भाषा'=(१) राजा शिवि बड़े याज्ञिक थे, उन्हें यज्ञ में बड़ा

आनन्द आता था, एक दिन परीक्षा के लिए इन्द्र बाज का और अग्नि कबूतर का रूप धारण कर शिवि के पास पहुँचे। बाज कबूतर पर झपटा तो कबूतर राजा की गोद में जा बैठा। बाज ने राजा से कहा—'मुझे मेरा शिकार दे दो नहीं तो मैं भूख से मर जाऊंगा। मैं मर गया तो मेरे परिवार की भी रक्षा न हो सकेगी। सारा पाप तुम्हारे ऊपर पड़ेगा।' राजा ने उत्तर दिया—'मैं इस शरणागत कबूतर को नहीं त्याग सकता। हां, जितना इस कबूतर में बोझ है उतना ही मैं तुम्हें अपने शरीर से मांस दिये देता हूँ। उससे तुम अपना पेट भर लेना।' तराजू में एक ओर कबूतर रक्खा गया, दूसरी तरफ राजा ने अपना मांस काट कर रक्खा तो वह पूरा ही न हो। जब राजा अपना मस्तक काटने को उद्यत हुआ तो इन्द्र और अग्नि दोनों ने प्रकट होकर राजा का हाथ पकड़ लिया और उसकी प्रशंसा की।

(२) इन्द्र और वृत्रासुर का युद्ध हो रहा था। परन्तु वृत्र किसी अस्त्र से मरने वाला न था। इन्द्र को बड़ी परेशानी हुई तब उसे ब्रह्मा ने बताया कि दधीचि मुनि की हड्डी लाओ, उससे यह असुर मरेगा। इन्द्र दधीचि के पास गये और उनसे हड्डी मांगी। मुनि ने बड़ी प्रसन्नता से हड्डियां देदीं और स्वयम् प्राण त्याग दिये।

(३) राजा बलि यज्ञ कर रहा था, विष्णु भगवान् उसके पास याचक का रूप धारण करके गये और उससे तीन पैंड धरती मांगने लगे। राजा ने बड़ी खुशी से यह दान दे दिया। परन्तु विष्णु ने अपने दो ही पैंडों में आकाश और पाताल सब नाप लिये फिर भी एक पैंड बाकी रह गया। इसके लिए राजा ने अपनी पीठ दान करदी। इससे विष्णु प्रसन्न हो गये और उसे पाताल का राजा बना दिया।

दोहा ३१—धर्म धुरन्धर = धर्म की धुरी धारण करने वाले, धर्मात्माओं में श्रेष्ठ । कुठाय = बुरी जगह । उघारी = नंगी । सान (शान) = पानी रखना । भीरु 'हाँती = भय, विश्वास, और प्रीति का नाश करके । साखी (साक्षी) = गवाह । पठउव = भेजूगा । सुदिन सोधि = अच्छा दिन देखकर । वजाई = बड़ी धूमधाम से ।

दोहा ३२-३७ छूँछे = व्यर्थ । रिस परिहरु = क्रोध छोडकर । असमंजस = उटपटाग, आगा पीछा । फनिक = सर्प । वरु = चाहे, भले ही । अनल = अग्नि । तरंगिनि = नदी । कूल = किनारा । मीच = मृत्यु । निपाता = उखाड फेंका । पाठीन = मछली । मरम (मर्म) वचन = चुभने वाली बात । कुठाहर = बुरा समय । मारसि गाइ नहारुहि लागी = वाज के लिए गाय को मारती है । नहारू काशमीर में बाज को कहते हैं । दोहावली में आया भी है—'वाज नहारू कहत हैं काशमीर के देश ।' कुछ लोग नाहरू का अर्थ नाहर (सिंह) और तात का भी करते हैं । अवधि = सीमा । भिनुसारा = प्रात काल । मगल जैसे = राजा को उसी प्रकार मगल अच्छे नहीं लगते जिस प्रकार पति की चिता पर सती होने वाली स्त्री को आभूषण ।

दोहा ३८-४२—धाइ खाइ = खाने को दौडता है । विवरन = बेहाल । सभीत = डर के मारे । वसेरा = डेरा । सुभ छूछी = शुभ से शून्य, अशुभ । भूप रजाई = राजाज्ञा । कुसाज = बुरी हालत । सहमि ' गजराज = राजा इस प्रकार बुरी तरह धरती पर पडे थे । मानो कोई बूढ़ा गजराज सिंहनी को देख कर पछाड खाकर गिर पडा हो । सरुप = क्रुद्ध । बाग विभूषण = वाणी की शोभा बढाने वाले । तोषनि हारा = सन्तुष्ट

करने वाला। अरँडु = परराड। उदधि = समुद्र। सति भाऊ = सच्चे भाव से।

दोहा ४३-४६—मगह जैसे = जैसे मगध देश में गयादि तीर्थ अच्छे लगते हैं। मगध देश अच्छा नहीं समझा जाता, परन्तु उसकी महिमा इन तीर्थों के कारण ही है। जिमि सुहाये = जिस प्रकार गंगा में जाकर खराब पानी भी अच्छा हो जाता है। अकनि = कान में पड़ते ही। आसु (शु) तोष = शीघ्र प्रसन्न हो जाने वाले। अवढर दानी = उदार दानी, मन मौजी दानी, जब जो चाहे सो दे डालने वाले। आरति = दु:ख। जगती तल = पृथ्वी पर। सुनीछी=सुतीक्ष्ण, खूब तेज। छुअत बीछी = जैसे बिच्छू के डंक मारते ही सारे शरीर में विष चढ़ जाता है। दवारी = वन की आग। करकई=सेना। माँझ = मझधार म, बीच में। छाई = छाये हुए। चीखा = चखना। पालव (पल्लव) = पत्ते, डाली से मतलब है। अगम= न जानने लायक। अगाध = अथाह। दुराऊ = गुप्त। निज प्रतिबिम्ब बरुक गहि जाइ = अपनी परछाइ को कोई भले ही पकड़ ले।

दोहा ४७-४८—गाजनु = मानो गया-नष्ट हो गया। "सिवि, दधीचि हरिचन्द कहानी" = सिवि और दधीचि की कथा तो ३० वें दोहे के सम्बन्ध में आ चुकी है। राजा हरिश्चन्द्र की कथा भी प्रसिद्ध है राजा ने विश्वामित्र को अपना सारा राज पाट दान दिया तो मुनि ने फिर उनसे दक्षिणा मांगी। जिसे राजा ने अपनी रानी बेचकर तथा स्वयम् काशी में एक चाण्डाल की चाकरी करके चुकाया। अन्त में हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहितादव मर गया। रानी उसका शव अन्त्येष्टि क्रिया के लिए श्मशान में लाई। चाण्डाल की तरफ स पहरे

पर हरिश्चन्द्र थे। इन्होंने अपनी रानी से निसंकोच कहा— "कर दिये बिना तुम शव का सस्कार नहीं कर सकती।" इस प्रकार सत्य की रक्षा कर इन्होंने स्वर्ग प्राप्त किया।

रद=दाँत। अलीक=झूठ।

दोहा ४६-५३—तूल (तुल्य)=समान। खरभर=खलबली। जठेरी=बडी। सवति आरेसू=सौतिया डाह। कोहु=क्रोध। गयन्द=हाथी। अलान=जजीर। सीव=सीमा। मकरन्द=पुष्प रस। स्त्रिय (श्री)=राज लक्ष्मी।

दोहा ५४-६०—जिमि जवास =मानो जवासे पर बरसात का पानी पड गया। जवासा काँटेदार छोटा पोदा होता है, यह गरमी में तो खूब पनपता है पर बरसात में पानी पडते ही सूख जाता है। माजहि मापी=मानो मछली को 'माजा' मार गया हो। 'माजा' एक रोग होता है, जिससे बहुधा वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में बहुत सी मछलियां तडप-तडप कर मर जाती हैं। कृसानू=अग्नि। 'भई गति केरी= साँप छछूदर को पकड कर बडे असमजस में पड जाता है, निगलता है तो कोढ़ी होता है और उगलता है तो उसे अन्धा बनना पडता है। अम्बु=पानी। बिलाप-कलापा=दुखों का समूह। नमित=नीचा। नूपुर=बिछिए, उगलियों में पहनने का गहना। अवनि=पृथ्वी। सुरसर=मान सरोवर। डावर=पोखर।

दोहा ६१-६५—बिपिन=वन। हठ नरेस=गालव और नहुष नामक राजाओं ने हठ करके अनेक सकट सहे थे। (१) गालव मुनि विश्वामित्र के शिष्य थे। जब यह पढ़ाई समाप्त कर चुके तो उन्होंने गुरू से दक्षिणा स्वीकार करने की

आग्रह पूर्ण प्रार्थना की। अपने शिष्य का ऐसा हठ देख कर विश्वामित्र ने कहा—'अच्छा, तुम गुरु-दक्षिणा देना ही चाहते हो तो ८०० श्याम कर्ण घोडे दो।' श्यामकर्ण घोडे एकत्र करने में गालव को घोर कष्ट सहना पडा और इस प्रकार उन्हें अपने आग्रह का फल मिल गया।

(२) राजा नहुप बडे ज्ञानी तथा तपस्वी थे। एक बार राजा इन्द्र ब्रह्म हत्या के कारण अपना सिंहासन त्याग इधर उधर छिपते फिरे। उस समय नहुप ही उनकी गद्दी पर विराजमान हुए। इन्द्र की गद्दी पर बैठ कर नहुप को प्रमाद हो गया और वह इन्द्राणी को प्राप्त करने का हठ करने लगा। इन्द्राणी ने वृहस्पति द्वारा सन्देश भेजा कि यदि नहुप पालकी में बैठ कर मेरे पास आवे तो मैं उसे स्वीकार कर सकती हूँ, परन्तु वह पालकी ब्राह्मणों द्वारा उठवा कर लाई जाय। नहुप तो पद के मद में अन्धा हो ही रहा था वह सप्त ऋषियों से पालकी उठवा कर इन्द्राणी के महलों की ओर चल पडा। पालकी में बैठ कर नहुप ने ऋषियों से शीघ्रगामी होने को कहा, इसपर उन्होंने क्रुद्ध हो कर उसे ऐसा शाप दिया कि वह सर्प हो गया। बस इन्द्र पद से भ्रष्ट होकर नहुप सर्प बन गया और घोर सकट सहता फिरा।

अवनि कुमारी = सीता। तरनि = सूय।

दोहा ६६–७४ किसलय = कोमल पत्ते। साथरी = बिछौना। अवध = अयोध्या। अवधि = १४ वर्ष की मियाद। पखारि = धो कर। पाय पलोटहि = पाँव दाबा करेगी। ससक = खरगोश। अहिवात = सौभाग्य। सिअरे जैसे = उन ठंडे वचनों से लक्ष्मण उसी तरह सूख गये जैसे तुहिन (पाला) से

तामरस (कमल) झुलस जाते हैं। कदराई=कायरता । निगम-नीति=शास्त्र और नीति। मन्दर मेरु=मन्दराचल। मराला=हंस। भूति=ऐश्वर्य । भा=हुआ । स्वारथ रहित सखा सब ही के=श्री रामचन्द्रजी को यहाँ निःस्वार्थ सखा कहा गया है। मित्र चार तरह के होते हैं। बन्धु, सुहृत्, मित्र और सखा। बन्धु वह जो अलग नहीं हो सकता। सुहृत् वह जो आज्ञा में रह कर काम करता है। एक ही सा काम करने वाले को मित्र कहते हैं और सखा वह है जो प्राणों के समान प्यारा हो।

दोहा ७५-८० नतरु=नहीं तो। वादि बिआनी=व्यर्थ कुपुत्र जना। राग=प्रेम। सुपासू=सुभीता। सुरति=याद । अविरल=अत्यन्त, अधिक। वागुर भागवस=मानो कोई मृग सौभाग्य से बेडौल वागुर (खेत के चारों ओर लगी हुई काटों की बाढ़) को तोड़ फोड़ कर फाँद गया हो । बिकल छीने=उस प्रकार विकल थे जिस प्रकार शहद छिन जाने पर मक्खियाँ व्याकुल हो जाती हैं। मीजहिं=मलते हैं। प्रमाद=असावधानी। अपवाद=निन्दा। अनुहारी=अनुसार। तमकि उठी=लाल हो गई। भीरा=भीड़। पयान (प्रयाण)=कूच, निकलना। बिरह दव-दाढ़े=विरह रूपी अग्नि में जल रहे हैं। बरषासन=बरसों के लिए भोजन। मीत=मित्र। सार सँभार=देख भाल। जुग पानी (युगल पाणि)=दोनों हाथ।

दोहा ८१-८४—विषादू=रंज। आरतनादू=हाहाकार । 'हरष-विषाद विवस सुर लोगू'=रामचन्द्र जी के वनगमन से देवताओं को आनन्द भी हुआ और दुःख भी। आनन्द तो इस बात का हुआ कि अब उनके द्वारा राक्षसों का वध होगा, और दुःख का कारण यह कि राम परिवार तथा अयोध्या निवासियों की राम के वियोग से ऐसी दयनीय दशा हो रही है।

सुठि = अत्यन्त । फिरेहु = फेरना, वापस बुला लाना । उपाय कदम्बा = बहुत से उपाय । कदम्ब = समूह । आनि दिखाऊ = लाकर दिखाओ । नाइ = नवाकर । परिजन = कुटुम्बी लोग । हय = घोड़ा । गय = हाथी । केलि मृग = पालतू हिरन । पिक = कोयल । रथाँग = चकवा । सुक सारिका = तोता-मैना । गहर भारी = बड़ा भयकर । मन्त्र दृढ़ाइ = पक्की सलाह करके । सुर दुलभ = देवताओं को भी कठिनता से प्राप्त होने वाले ।

दोहा ८५-८८—सदय = दयायुक्त । जा (या) म जु (यु) ग = दोपहर । खोज मारि = किसी को पता न चले । आन (अन्य) = और, दूसरा । जान (यान) = सवारी, रथ । निन्दहिं आप सरा हहिं मीना = अपनी निन्दा और मछलियों की प्रशंसा करते हैं, क्योंकि मछली विना पानी के मर जाती है, परन्तु अयोध्या वासियों के प्राण रामचन्द्रजी के वियोग में नहीं निकले । परितापा = दुःख । अवधि प्राना = रामचन्द्रजी वनवास की अवधि समाप्त कर वापस आवेंगे इसी आशा पर लोग जीवित हैं । मनहु तमारि = जिस प्रकार चकवा-चकई और कमल तमारि (सूर्य) के विना दीन हीन हो जाते हैं । देवसरि = गंगा । मज्जन = स्नान । सुमिरत व्यवहारू = तुलसीदासजी कहते हैं कि जिन रामके स्मरण मात्र से थकावट आती रहती है, उनके सम्बन्ध में श्रम होने तथा उसके मिटजाने आदि की बात कहना केवल लौकिक व्यवहार है । केतु = पताका । नर अनुहरत = मनुष्यों के समान । सघन-सागर-सेतु = ससार-समुद्र को पार करने के लिए पुल रूप । भाग भाजन = धन्य, सौभाग्य शाली । जन = सेवक ।

दोहा ८९-९२—लोयन (लोचन) = नेत्र । तरु सिंसुपा = शीशम का पेड । पाहरू प्रतीती = विश्वासपात्र पहरेदार ।

भाथा=तरकस। न पटतर पावा=समता नहीं कर सकता। रतिपति=कामदेव। सुभोगमय=भोग्य पदार्थों से सम्पन्न। वसन=वस्त्र। उपधान=गद्दे। तुराइ=तकिये। छीर (क्षीर) फेन= दूध के झाग। विसद=सफेद। जोगवहिं=रक्षा करते हैं, देखते भालते हैं। सुरेस-सखा=इन्द्र के मित्र। केही=किसको। नन्दिनि=पुत्री। विटप=वृक्ष। कुठारी=कुल्हाडी। जोग (योग)=संयोग मिलना। भल-मन्दा=भला बुरा। मध्यम= उदासीन जो न हित है और न अनहित।

दोहा ९३-९५—रंक=कंगाल। नागपति=स्वर्ग का राजा इन्द्र। तिमि प्रपंच जिय जोय=उसी प्रकार जीव के लिए यह संसार प्रपंच रूप है, स्वप्न के समान है। वादि=व्यर्थ। अविगत=सब में होते हुए भी किसी में न होना। गत भेदा= भेद-भाव से दूर। नेति=इतना ही नहीं, इससे भी अधिक। सुरभि=गौ। बटछीर=बरगद का दूध। रतिदेव बलि सुजाना=रतिदेव बडा धर्मात्मा राजा होगया है, वह अपना राज पाट छोड कर अपने पुत्र कलत्र सहित वन को चला गया और वहाँ कठिन तपस्या करने लगा। ४८ दिन की तपस्या के बाद उसे भोजन मिला। इतने ही में एक भगता वहाँ आगया और दीन वाणी से भोजन माँगने लगा। ४८ दिन के भूखे रन्तिदेव ने स्वयम् कुछ न खाकर सारा भोजन उस भिक्षुक को दे दिया। यहाँ तक कि स्त्री और पुत्र का भाग भी उसे खिला दिया। इससे प्रसन्न हो विष्णु भगवान ने उसे दर्शन दिया तथा परम-पद प्रदान किया। आगम=वेद। संभावित=प्रतिष्ठित या कीर्तिमान।

दोहा ९९-१००—नति = नम्रता । कवनिहुँ = किसी भी । निपट = बिलकुल । मनुमान = मन चाहे, इच्छा हो । सुखेन = सुख से । बिहान = दूर हो जाय । खभारु = दुख, क्षोभ । प्रभा = धूप, चमक, रोशनी । चन्द्रिका = चाँदनी । गिरा = वाणी । आरजसुत = आर्य पुत्र, पति के लिए प्रयुक्त होता है, श्रीरामचन्द्र । डीठा = देखा । नृपमनि पीठा = जिनके चरणों में बड़े बड़े राजाओं के मुकुट टकराते हैं । चक्कवइ = चक्रवर्ती । आगे लेई = आगे बढ़कर इन्द्र जिनका स्वागत करते हैं । एतादृस = ऐसे । पगग = रज । कुरग = हिरन । सन = से । मोरिहुति = मेरी ओर से । भोरे = भूल कर । फनि = सप । मूरु = मूल, पूजी । हेरि हेरि = देख देख कर । न आना = नहीं लाया । वाट परइ उडाई = अवसर पड़ते ही आप मेरी नाव उड़ा देंगे अथवा नाव उड़गई तो मेरी जीविका का मार्ग (वाट) पट (परइ) हो जायगा । कवारू = कारवार । तरनिउँ आइ – कहीं नाव भी मुनि की स्त्री न होजाय । मुनि की स्त्री की कथा इस प्रकार है—

ब्रह्माजी ने अपनी इच्छा से अहल्या नाम की एक परम सुन्दरी कन्या पैदा कर उसका विवाह गोतम मुनि के साथ कर दिया । यह बात देवताओं को बहुत बुरी लगी और वे ईर्ष्या करने लगे । इन्द्र ने तो यहाँ तक किया कि वह एक दिन गोतम का रूप धारण कर अहल्या के पास पहुँच गये और उसके साथ विषय करने लगे । अहल्या को सन्देह हुआ तो उसने पूछा—"तू कौन है ?" नकली गोतम ने कहा—"मैं इन्द्र हूँ।" इतने ही में गोतमजी आगये और उन्होंने दरवाजा खुलवाया । अहल्या इन्द्र को छिपा कर कुछ देर से दरवाजा खोलने गई । गोतमजी ने विलम्ब का कारण पूछा तो अहल्या ने बात

बनादी। परन्तु गोतमजी ने अपने योग-बल से सारा हाल जान कर इन्द्र को शाप दिया कि तेरे शरीर पर सो भग होजायँ और अहल्या से कहा कि तेने झूठ बोला है अतएव तू पाषाण बन जा। जब रामचन्द्र अवतार लेंगे तब उनके चरणों की धूल से तेरा उद्धार होगा।

अभिप्राय यह है कि केवट रामचन्द्रजी से कहता है कि आपके चरणों की धूल से जब कठोर पाषाण मुनि पत्नी का रूप धारण कर लेता है तो नाव तो काठ की ही है, इसका कुछ का कुछ हो जाना तो बहुत ही आसान है, इसलिए नाथ ' नाव में चढ़ने से पूर्व आप अपने पाँवों की धूल धो लेने दीजिए जिससे नाव के मुनि घरनी बन जाने या उड़ जाने का भय जाता रहे। आन = सौगन्द। अटपटे = जिन पर कुछ उत्तर न देते बने।

दोहा १०१-१०७—पद नख करपी = रामचन्द्रजी के चरणों के नखों को देख कर गंगाजी प्रसन्न हुईं । परन्तु फिर राम के वचन सुनकर उनकी बुद्धि मोह की ओर आकृष्ट होने लगी। यह वचन क्या थे ?—"होत विलम्ब उतारहु पारू" देर होती है, जल्दी पार उतारो। गगाजी समझीं कि रामचन्द्र केवट से क्रुद्ध होकर योंही मुझे पार कर जायँ तो मैं चरणों का स्पर्श न कर पाऊँगी, परन्तु अब वह मोह हट गया। यह भी अर्थ होसकता है कि रामचन्द्र ने जल्दी पार होने की इच्छा प्रकट की इससे गंगाजी को मोह हुआ कि अब वह मुझसे शीघ्र ही अलग हो जायँगे।

पार्थिव = मिट्टी की बनाई हुइ शिव-मूर्ति । बागीसा = वाणी। हुलासू = प्रसन्नता। छेत्र (क्षेत्र) = फैलाव। गाढ = मज-बूत। कलुष = पाप। अनीक = सेना। कुंजर = हाथी। मृगराज=

सिंह। तीरथपति = प्रयाग। प्रतिपछ (च्छ) = वैरी। अपय वट = अजय वट। सुकृती = पुण्यवान। शुचि = पवित्र। गुन ग्राम = गुणगण। बेनी = त्रिवेणी। असीस = आशीर्वाद। लोचन

आनि = मानो विधाता ने हमारे पुण्यों का फल आँखों के सामने लाकर रख दिया है। अमी के = अमृत समान। बिगत स्रम (श्रम) = थकावट दूर होगई। लाभ दूजी = लाभ और सुख के लिए इससे बढ़कर दूसरी अवधि नहीं है।

दोहा १०८-१११—उपचार = उपाय। अघाने = तृप्त, भरे हुए। गेहू = घर। वचन अगोचर = अकथनीय। सुअन = पुत्र। पाहीं = से। सन = से। धाई = दौड़ कर आना। फिरहि

पठाइ = मन उनके साथ भेज कर स्वयम् वापस लौट आते थे। फिरे पाय मन काम = अपनी मन कामना पूरी करके लौटे। जुगुति = युक्ति, तरकीब। तापस=तपस्वी। लघु वयस= छोटी आयु। कवि अलखित गति = विद्वान् भी गति को नहीं जानते। पियत नयन पुट रूप पियूखा। मुदित भूखा = वह तपस्वी अपने नेत्र रूपी दोने से रामचन्द्र की रूपसुधा का पान कर ऐसा प्रसन्न हुआ मानो किसी भूखे को अच्छे भोजन मिल गये हों।

दोहा ११२-११५—रवितनुजा = यमुना। राज लषन = राज-लक्षण। पयादेहि = पैदल ही। जाइन जोई = देखा नहीं जाता। नाग-सुर-नगर सिहाहीं = नागलोक और देवलोक भी प्रशंसा करते हैं। अमरावति = इन्द्रपुरी। अवगाहहिं = प्रात होते हैं, स्नान करते हैं। परसि = छूकर। सुमन = फूल। मगन = खुश। सुरमनि = चिन्तामणि। बोलि = बुलाकर। छन एहीं = इसी क्षण। एक नयन =कोइ नेत्रों के रास्ते राम की छवि हृदय में लाकर शरीर, मन, वाणी सबकी ओर से शिथिल हो

जाता है। डासि = बिछाकर। तृनपात = घास पत्ते। अचइय = आचमन कीजिए। लोभा = लुभा गये। तरुन , सोहा = नवीन तमाल पत्र के रंग के समान शरीर का रंग सुहावना लगता था। दामिनि बरन = बिजली के से रंग वाला। नखसिख= सिर से पैर तक। तूनीरा = तरकस। धनुतीरा = धनुष तीर।

दोहा ११६-११७—सरद जाल = शरद ऋतु के पूर्ण चन्द्र के समान मुख मण्डल पर पसीने की बूँदों की पंक्तियां चमक रही हैं। बिलग न मानब = बुरा न मानना। सलोने = सुहावने। इन्हते सोने = इनकी दमक से मरकत मणि और सोना चमकने लगता है। ऐन = घर। सरद स (श) बरी नाथ = शरद के चन्द्रमा के समान। सरद सरोरुह नैन= शरद के कमल की सी आँखें। आहिं = हैं। सुमुखि = अच्छे मुख वाली। सुभग = सुन्दर। सैननि = इशारे से। रायरासि = रत्नों की ढेरी। बधूटी = बधुएँ, स्त्रिया।

दोहा ११८-१२४—जब लगि महि अहिसीस = जब तक शेषजी के मस्तक पर पृथ्वी है अर्थात् सदा। जन पोषी = मानो चाँदनी ने कुमुदनी को खिला दिया। निधि = सम्पत्ति। सोधि = खोजकर। लिए लाइ मन साथ = उनके मनों को साथ ही ले चले। निरकुश = स्वतन्त्र। निठुर (निष्ठुर) = कठोर। निसङ्कु = निडर। ससि = चन्द्रमा। सरुज = रोगी। रूखु = वृक्ष। पठये = भेजे। पदत्राना = जूते। बाहन = सवारी। कत = क्यों। धवल धाम = आलीशान महल। जटिल = जटा। असन = भोजन। पटतर जोग = उपमा के लिए। पेक (ऐक्य) = समता। इरषा = ईर्ष्या। हम लेखे = हमारे हिसाब से। गदगदि = गद्गद। अरुनारे = लाल। सैल = पहाड़। ठाऊँ = स्थान। बिरंचि = ब्रह्मा।

सोमित्र = लक्ष्मण। मधु = वसन्त। मदन = कामदेव। रति = कामदेव की स्त्री। पद श्रंक बराये = चरण चिन्हों को बचा कर। बटोही = मुसाफिर। भव सिराइ = उन्होंने संसार के कठिन मार्ग को सहज ही में पूरा कर लिया अर्थात् आसानी से भवसागर पार हो गये, मुक्त हो गये। बटाऊ = बटोही। अजहुँ = अब भी। मधुप = भौंरा। बिरहित वैर = वैर छोड़कर।

दोहा १२५-१२६—राजिवनैन = कमलाक्ष। जुड़ाने = ठंडे किये। त्रिकालदर्शी = तीनों काल की बात जानने वाला। बिस्व बदर हाथा = सारा संसार तुम्हारे हाथ पर बेर के समान रक्खा है। भाइ भरत अस राउ' = भरत जैसे भाइयों को राज्य। उद्वेग = कष्ट। पावक = अग्नि। विप्र परितोषे = ब्राह्मणों की प्रसन्नता से। दहइ = जलता है। साधु साधु = अच्छा, अच्छा। सतत = सदा। स्रुतिसेत = वेद मर्यादा। निसिचर अनी = राक्षस सेना। बुद्धि पर = बुद्धि से परे। विधि, हरि, संभु नचावनिहारे = ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव को नचाने वाले। प्राकृत = साधारण। निकेता = निवास स्थान। रूरे = उत्तम। जीहा = जीभ। जस = यश। मानस = मानसरोवर। मुकताफल = मोती। नासा = नाक। द्विज = ब्राह्मण।

दोहा १३०-१३४—छोभ (क्षोभ) = चिढ़ना। पराव = पराया। पर = पराई। धेनु = गाय। अपबरग = मोक्ष। अत्रि प्रिया = अनसूया। पोतक = बालक। कसहीं = कष्ट देते हैं। पय (पयस्विनी) = नदी। नारा = नाला। पनच = प्रत्यंचा। साउज = निशाना। अचल अहेरी = अचूक निशाना लगाने वाला। घात = निशाना। मुठ भेरी = एक ही मूठ में। राजत = शोभायमान था। ऋतुराज = वसन्त। अमर = देवता।

दोहा १३५-१३६—सुछन्द (स्वच्छन्द) स्वतन्त्रता पूर्वक। अपर=दूसरे लोग। निकाइ=भलमनसाहत, बड़ाइ। जोहार=प्रणाम। अहि=साँप। करि=हाथी। बराई=बचाकर। खोह=खड्ड। कन्दर=गुफा। अहेर=शिकार। वेहड=टीले, बेढंगे। मञ्जु वितान=लिपटी हुई सुन्दर बेलों के जाल छाये हुए हैं। त्रिविधि बयारि=शीतल, मन्द, सुगन्ध तीन प्रकार की हवा। कलकंठ=मोर, सुन्दर कंठ वाला। चक=चकवा। सुक (शुक)=तोता। कोल=सूअर। कुरंग=हिरन। उदय-अस्तगिरि=उदयाचल, अस्ताचल। मँदर=मन्दराचल। अचर=पहाड, पेड, पत्थर आदि। परमपद=मोक्ष। पय-पयोधि=क्षीर सागर। सहसानन=शेषजी। डाबर कमठ=पोखर का कछुवा।

दोहा १४०-१४५—सुरति=याद। फर=फल। मदन=कामदेव। वासव=इन्द्र। सची (शची)=इन्द्राणी। जयन्त=इन्द्र का पुत्र। मोचहिं=बहाते हैं। बाजि=घोडा। अढुकि परहिं=अटक जाते हैं। हिंकरि हिंकरि=हिनहिनाकर। मगन=डूब जाना। अघ=पाप। पराइ=भाग खडे होना। बिरद बाधि=वीर का बाना पहन कर।

दोहा १४६-१४८—वेद-विद=वेदज्ञ। समत=प्रतिष्ठित। सुजाति=उत्तम जाति में उत्पन्न, ब्राह्मण। डीठि भई थोरी=दृष्टि कमजोर होरही थी। लागि मुंह लाटी=मुंह लटा सा या उतरा हुआ सा लगता था। जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी=प्राण नहीं निकलते थे, क्योंकि हृदय पर १४ वर्ष बाद लौटने के किवाड लगे हुए थे। लवाइ=लवारी, नई ब्याई हुई। बच्छ (वत्स)=बच्चे, बछडे। दुखदीना=दुःख से दीन हुए। पैठत=घुसते ही। आतप=धूप। निघटत=घटने से।

अमिय विराजा=मानो विना अमृत का चन्द्रमा है
(अमावस्या वाचक)

सुरपुर जजाती=मानो स्वर्ग से ययाति खिसक गया हो। खिसकने की कथा इस प्रकार है—ययाति नामक राजा ने अनेक पुण्य कर इन्द्र पद प्राप्त किया था। जब वह इन्द्र-लोक में पहुँचा तो इन्द्र ने उसका बड़ा आदर सत्कार किया और पूछा कि आपने कौन कौन से तप करके यह पद प्राप्त किया है। तब ययाति ने एक-एक कर अपने सब मुख्य तप सुना दिये। इस प्रकार अपने मुँह से अपने पुण्यकार्यों का वर्णन करने के कारण ययाति का सारा तप नष्ट होगया, और वह इन्द्रलोक से धकेल दिया गया।

लेत सोच सपाती=राजा दशरथ दुःख से क्षण क्षण में हृदय भर लेते हैं, उनकी दशा ऐसी होगई है मानो सपाती पक्षी पंख जल जाने पर गिर पड़ा हो। सपाती की कथा—कश्यप के पुत्र अरुण के सपाती और जटायु नामक दो पुत्र थे। युवावस्था में मदान्ध होकर ये सूर्य के पास उड़ कर पहुँचे। सूर्य का तेज सहने में अशक्त होने के कारण जटायु तो लौट आया पर सम्पाती सूर्य के और भी समीप चला गया जिससे उसके पंख जल गये और वह महेन्द्र पहाड़ पर गिर गया।

दोहा १४६–१५५—सिगरौर=शृंगवेरपुर। कोसलधनी=अवधेश। सेवेहु=सेवा करो। कहन लिय=कहना चाहती थी। पुलक पल्लवित देह=स्नेह से रोमावली खड़ी होगई। ठाढ=खड़ा खड़ा। रहिगयऊ=चुप हो गया। सूत=सारथी। विषम मोहमन माया=घोर मोह ने उनका मन घेर लिया। अथयेउ=अस्त हुआ। तलफत=तड़पड़ाती। जुग सरिस=युग के

समान। सिराति न राती=रात नहीं कटती। तापस अन्ध साप सुधि आइ =राजा को अन्धे तपस्वी के श्राप की याद आई। इस अन्धे तपस्वी की कथा इस प्रकार है —

एक बार राजा दशरथ को तमसा नदी के तट पर शिकार खेलते-खेलते रात होगई पर कोई शिकार उसके हाथ न लगा। वह निराश खडा था कि इतने ही में श्रवण नामक तपस्वी अपने अन्धे माता-पिता को कुटी पर छोड कर नदी से पानी भरने आया। राजा ने घडे का शब्द सुनकर दूर से समझा कि कोई जगली हाथी पानी पी रहा है, झट उसके मारने की इच्छा से उसने बाण चला दिये, जिससे श्रवण घायल हो गया। राजा समझा शिकार मार लिया। परन्तु पास जाकर उसे दूसरा ही दृश्य दिखाई दिया। अपने तीर से श्रवण को मरणासन्न पा कर राजा को बडा दु ख हुआ। उसने उसके शरीर से ज्योंही तीर निकाला त्योंही वह मरगया। केवल इतना कह सका कि राजन्! मेरे प्यारे माता पिता को पानी पिला देना। राजा घडा लेकर अन्धी अन्धे के पास पहुँचा और उन्हें सब कथा कह सुनाई। अपने पुत्र के मरने का समाचार सुन दोनों को बडा दु ख हुआ, और उन्होंने राजा के साथ घटनास्थल पर पहुच कर चिता चुनी जिसमें दोनों अपने तपस्वी पुत्र के साथ भस्म हो गये। तथा राजा दशरथ को शाप देगये कि जिस प्रकार हम पुत्र शोक में मर रहे हैं, उसी प्रकार तू भी मरेगा।

प्रेम पन=प्रेम प्रण। प्राण पिरीते=प्राणों से भी प्यारे।

दोहा १५६-१६२—अण्ड=ब्रह्माण्ड। धावन=दूत। कराग=कौए। कुखेत=कुरेस्थान। दह दिसि=दश दिशाएँ। बनज=कमल। मरम ' देई=मानो वह घाव कर उसमें।

विष डालने लगी हो। विढई=बडे। पकिछत(क्षत) अगारू=मानो किसी ने पके घाव पर आग रक्खी हो। पात=पत्ते, टहनी। मसि=कालौंच।

दोहा १६३-१६८—दलित दसन=दाँत टूट गया। बेनुबन=बाँसों का वन। बलकल-बकल=पेडों की छाल। चीर=वस्त्र। गाइ गोठ=गोशाला। धर्म दुहि लेही=धर्म को दुह लेते हैं या कन्या बेचते हैं। पिसुन=चुगलखोर। भेऊ=भेद।

दोहा १६६-१७४—मातु सब राखीं=सती होने से सब माताओं को रोक लिया या रोने से बन्द कर दिया। भावी=होनहार। बयसु=वैश्य। मुखर=मुँह चलाने वाला। बटु=ब्रह्मचारी। बेखानस=तपस्वी। पर अपकारी=दूसरों का बुरा चीतने वाला। फुर=सत्य। परसुराम साखी=परशुरामजी ने अपनी माता रेणुका का वध किया था, इसे जगत् जानता है। यह कथा इस प्रकार है कि एक बार जमदग्नि की स्त्री रेणुका किसी तालाब पर जल भरने के लिए गई। वहाँ गन्धर्व क्रीडा कर रहे थे। वह भी उसे देखने लगी, यहाँ तक कि उसका मन डिग गया। सुध आने पर रेणुका अपने आश्रम की ओर चली। उधर जमदग्नि ने सारा हाल अपने योगबल से जान लिया। उन्होंने अप्रसन्न होकर अपने पुत्रों को आज्ञा दी कि रेणुका को मार डालो। जमदग्नि के और पुत्र तो देखते ही रह गये केवल परशुरामजी उठे और उन्होंने अपनी मा को मार डाला, परन्तु पिता की आज्ञा का तिरस्कार न किया।

"तनय जजातिहि यौवन दयऊ"=यह कथा इस प्रकार है कि राजा ययाति के देवयानी और शर्मिष्ठा नाम की दो रानियाँ थीं

देवयानी के पिता शुक्राचार्य ने ययाति को इस शर्त पर अपनी कन्या ब्याही थी कि वह शर्मिष्ठा के साथ सम्भोग न करेगा। परन्तु शर्मिष्ठा के गर्भ से पुत्र होने पर विदित हुआ कि ययाति ने अपनी उक्त प्रतिज्ञा भग करदी। इस पर शुक्राचार्य ने ययाति को शाप दिया कि वह बुड्ढा हो जाय। पीछे ययाति के बहुत प्रार्थना करने पर शुक्राचार्य ने अपने शाप में इतनी रियायत करदी थी कि इच्छा होने पर उसकी वृद्धावस्था में परिवर्तन हो सकता है। ययाति ने अपने पुत्रों से जवानी मागी पर किसी ने न दी। अन्त में उसके छोटे बेटे पुरु ने अपने पिता की आज्ञा मान कर उसे अपनी जवानी देदी और स्वयम् वृद्ध हो गया।

दोहा १७५-१८१ गलानी (ग्लानि) = घृणा, उदासीनता। कदराहू = घबराना। सींव = सीमा। धरि = सोचकर। अनुहरत = उचित। बादि = व्यर्थ। बिरति = वैराग्य। रसा = पृथ्वी। कुलिस = वज्र। कुलिस अस्थितें =वृत्रासुर को मारने के लिए दधीचि की हड्डियोंका वज्र बनाया गया था, इसीलिए उसे हड्डियों की अपेक्षा अधिक कठोर कहा गया है। जठर = पेट। ग्रह गृहीत = ग्रहोंसे पकडा गया, बुरे ग्रहों वाला। बातवश=सन्निपात या प्रलाप वश। बीछी = बिच्छू। बारुनी = शराब। भरतजी कहते हैं—एक तो मैं केकई का पुत्र, दूसरे पिता परलोक पधार गये तीसरे राम विरह दुःख भोग रहा हूँ। इतने पर भी आप लोग राजतिलक रूपी मदिरा पिलाना चाहते है। मैं नहीं समझता, इन सब मारक व्याधियों के होते हुए मेरे बचने का कौन सा उपाय है।

दोहा १८२-१८८—लागी = लिए। दारुन (ए) = कठोर। जिय कै = हृदय की, जी की बात। सबीज = सिद्ध। 'मन्त्र

जागे' = मानो कोई साँप का काटा बीज सहित (सिद्ध) मत्र को सुनकर जाग उठा हो। पाँवरु = नीच। सुगाई = सराय करता है। अहि = साँप। गरल = विष। निरनउ = निर्णय। गदन मारी = सजा दी। परभात (प्रभात) = तड़के। पयाना = कूच। निज धरम न डोले = अपने धर्म से विचलित न हुए। सुखासन = सुखपाल। यान = सवारी। चक-चकि = चकना-चकई। अरु धती = वसिष्ठ मुनि की स्त्री। मुनिराज = वसिष्ठ। अगिनि समाजू = यज्ञ का सब सामान। सि (शि) विका = पालकी। करि करिनि वारी = मानो प्यासे हाथी हथिनी पानी को देखकर दौड़ते हैं।

दोहा = १८६-१६१—बिहाने = प्रात काल होने पर। कट-काइ = फौज। जुझारा = योद्धा। समर = लड़ाई। ज्ञात = जाति के लोग। सजग = सावधान। हथवाँस = डाड़। तरनि = नाव। कोजिय घाटरोह = घाटों को रोकना। सजोइल = सावधान। मीचू = मौत। जस धवलिहहूँ = यश फैला दूँगा। निहोरे = लिए। सनाह = कवच। सजोऊ = तय्यार की। करषा = उमग। पनहीं = जूता। भाथा = तरकस। अगरी = कवच। कूड़ि = लोहे का टोप। वास = भाला। समकरहीं = सुधारने लगे। ओड़ नखाँड़े = खाँड़ा चलाने में या प्रहार से रक्षा करने में। छिति (क्षिति) = पृथ्वी।

दोहा १६२-१६७—घोरे = घोड़े। मेदिनि = पृथिवी। जुझाऊ = लड़ाई का, युद्ध का। सजोवन लागे = तय्यारी करने लगे। स्यन्दन = रथ। सींचा = सिंचन किया, पानी छिड़का या स्नान किया। करमनास जल धरइ = गगाजल में मिल जाने से कर्मनाशा नदी के पानी को भी सब शिरोधार्य समझते हैं। वैसे कर्मनाशा के जल को कोई स्पर्श नहीं करता क्योंकि

यह सारे पुण्यों को नष्ट कर देता है। उलटा समाना = राम का उलटा अर्थात् "मरा मरा" कहने से ही वाल्मीकि ब्रह्म के समान हो गये। यह कथा इस प्रकार है कि वाल्मीकिजी भीलों की सहायता से डाका डाला करते थे। एक दिन उन्हें अचानक ऋषि-मुनियों के उपदेश से वैराग्य हो गया और वह समझने लगे कि ससार में पाप या दु ख का साथी कोई नहीं है, सब लोग सुख ही सुख चाहते हैं। बस, उन्होंने राम का उलटा 'मरा-मरा' जपना प्रारम्भ कर दिया और इस प्रकार उन्हें ब्रह्म की प्राप्ति हो गई। विदेह = देह की सुधि भूल गया। 'जग विधि बचित सोइ' = वही विधाता द्वारा दला गया है, अर्थात् वही हतभाग्य है। सनकारे = सकेत कर दिया। सुरधेनू = कामधेनु।

दोहा १६८–२०० सोध = सम्हाल। कनक बिन्दु = सोने की बिन्दी। करतल = मुट्ठी में। पवि = वज्र। ताति बाऊ = गरम हवा। निदरे = निरादर कर दिया।

दोहा २०१–२०६—परदछिना (प्रदक्षिणा) = परिक्रमा। खोरि = दोष। दण्ड = घड़ी। कोतल डोरिआये = साथ में सजे-सजाये घोड़े बागडोर में बँधे जा रहे थे, अर्थात् उन पर सवारी नहीं की जा रही थी। सिरभर = सिर के बल। झलका = छाले। झलकत = चमकते हैं। पकज कोस = कमल की कलियाँ। ओस कन = ओस की बूदें। सितासित नीर = गगा यमुना का जल। स्यामल धवल हिलोर = गगा-यमुना की लहरें। बान = रग। चहत पैठे = मानो भाग कर सकोच के घर में घुसना चाहते हैं। गई गिरामति धूति = सरस्वती ने उसकी बुद्धि नष्ट करदी। अयानी = अज्ञानवश। प्रनत (प्रणत) = नम्रसेवक। भा यह समय गनेस = इस समय श्रीगणेश अर्थात् प्रारम्भ हुआ। यहाँ तुलसीदासजी ने चन्द्रमा का रूपक बाँधा है।

"गुरु अपमान" (अपमान) से यह मतलब है कि चन्द्रमा ने त्रिलोक को जीत कर राजसूय यज्ञ किया तो उसने अपने गुरु बृहस्पति की स्त्री तारा से भी सभोग किया, इससे बुद्ध पैदा हुआ। चन्द्रमा की इस पापपूर्ण अनधिकार चेष्टा से देवताओं में युद्ध छिड गया परन्तु ब्रह्माजी ने बीच में पडकर विवाद शान्त करा दिया। तारा तो बृहस्पतिजी को दिलाइ गइ और बुद्ध चन्द्रमा के पास रहा।

दोहा २१०-२१६—अजिन = मृगछाला। बारहबाट = अस्त-व्यस्त करना, मोह, दीनता, भय, अवनति हानि, ग्लानि, भूख, प्यास, मृत्यु, क्षोभ, झूठ और अपयश इन बारह आपत्तियों के आने पर ही बारहबाट होना कह सकते हैं। वितान = चँदोवा। सकुचात जमीं से = यमी या सयमी की तरह सकुचाने लगे अर्थात् जिस प्रकार कोई यमी विषय उत्पन्न करने वाली सामग्री के कारण सकुचाता है। सुर सुरभी = कामधेनु। स्रक = माला। सम्पति चक = सम्पत्ति चकइ है, भरत चकवा है, मुनिजी की आज्ञा बहेलिया (खिलवार) है और वह रात्रि पिंजडा है, जिसमें वे रात भर बन्द रहे। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार चकवा चकई रात को भोग-विलास नहीं करते उसी प्रकार विलास की सब सामग्री होते हुए भी भरतजी ने उनका उपयोग नहीं किया।

दोहा २१७-२२३—वर वात = अच्छी हवा। तरन तारन = स्वयम् तरने तथा दूसरे को तारने वाला। पोच = निबल, बुरा। सम = समदर्शी। सहस नयन जाने = सहस्र आँखों वाले इन्द्र को बिन लोचन अर्थात् अन्धा समझा।

'यह महिमा जानहिं दुरवासा' = इस महिमा को दुर्वासा मुनि अच्छी तरह जानते हैं। इस सम्बन्ध में कथा है कि— राजा अम्बरीप की भगवान् के चरणों में बडी भक्ति थी। एक बार उन्होंने एकादशी का व्रत किया, द्वादशी को उसका पारण होने वाला था। इतने ही में दुर्वासा ऋषि राजा के अतिथि हुए, राजा अम्बरीप ने उनका खूब स्वागत सत्कार किया और भोजन के लिए सादर निमन्त्रण दिया। दुर्वासाजी स्नान पूजन के लिए नदी पर चले गये, उनकी प्रतीक्षा में राजा को बहुत विलम्ब हो गया, अन्त में पारण का मुहूर्त्त बीत जाने के भय से राजा ने यथा नियम उसे सम्पन्न किया। थोडी देर बाद दुर्वासा आ गये, उन्हें अपनी अनुपस्थिति में पारण क्रिया की समाप्ति का हाल सुन कर बडा क्रोध आया। मारे गुस्से के जटाओं को खोल कर फटकारने लगे। इन जटाओं में स कृत्या नामक एक राक्षसी निकल पडी, और वह अम्बरीप को खाने के लिए लपकी। इस अवसर पर भगवान् ने अपने भक्त अम्बरीप की रक्षा की और सुदर्शन चक्र से राक्षसी को भस्म कर दिया। फिर सुदर्शन चक्र दुर्वासा के पीछे पडा तो वे प्राण लेकर ब्रह्मादि कई देवताओं के पास होते हुए विष्णु के दरबार में पहुँचे। विष्णु ने कहा—'दुर्वासा! तुम भक्त अम्बरीप की ही शरण में जाओ, वही तुम्हारी रक्षा करेगा।' ऋषि ने ऐसा ही किया। फिर अम्बरीप ने विनयपूर्वक सुदर्शन चक्र को शान्त किया और ऋषि को भोजन कराया। दुर्वासा की इस भाग-दौड़ में पूरा एक साल लग गया। इतने समय तक राजा सर्वथा निराहार रहा। वपु=शरीर। चतुरंग=चतुरंगिणी सेना (१) हाथी, (२) रथ, (३) पैदल और (४) घोडा।

दोहा २२४-२२६ —बिह्वल (बिह्वल) वचन=ऊट पटांग बातें। अह=अहंकार। मम=ममता। पिरीते=प्यारे। रजनी

अपसेखा = रात रहते ही, उप काल में। सोच विमोचन = रज दूर कर देने वाला। कुचाह = अनचाही। पुरारि = महादेव। जनाई = जान बूझ कर। ससि गुरु ' वेन समान = गुरु तियगामी चन्द्र की कथा के लिए पृष्ठ १६२ देखना चाहिए। नहुप की कथा पृष्ठ १४६ पर दी गई है। वेन की कथा इस प्रकार है—वेन बडा दुष्टात्मा था, उसकी दुष्टताओं से तंग आकर उसका पिता राज-पाट छोड कर वन में जा बसा। उसके चले जाने पर वेन राजगद्दी पर बैठा और उसने तपस्वी ब्राह्मणों को बडा कष्ट दिया, विष्णु के स्थान पर अपनी पूजा कराई। सब ऋषि-मुनियों ने वेन को समझाया कि वह अपनी नीचता छोड दे परन्तु उसकी समझ में कुछ न आया। अन्त में ऋषियों ने क्रुद्ध होकर उसे एक ही हुँकार में भस्म कर दिया। "सहसबाहु सुरनाथ त्रिसकु"—एक बार राजा सहस्रबाहु शिकार खेलता खेलता जमदग्नि मुनि के आश्रम पर जा निकला। मुनि के पास कामधेनु थी अतएव उन्होंने उसकी सहायता से अतिथि का बडा स्वागत-सत्कार किया। कामधेनु को देख कर राजा के मुँह में पानी भर आया और वह उसे मुनि से मागने लगा। मुनि के अस्वीकार करने पर राजा उनसे लडने को तैयार होगया और उन्हें मार कर कामधेनु ले चला। पर, कामधेनु छूट कर सीधी इन्द्रलोक पहुँची। जब जमदग्नि के पुत्र परशुराम को यह बात मालूम हुई तो उसने सहस्रबाहु को युद्ध में मार दिया और इक्कीस बार पृथ्वी क्षत्रियहीन करदी तथा अपनी तपस्या के प्रभाव से उसने अपने पिता जमदग्नि को जीवित कर दिया।

सुरनाथ (इन्द्र) की कथा—एक बार इन्द्र के दरबार में गुरु बृहस्पति जी गये, परन्तु वहा उनका उचित आदर

सत्कार न हुआ। अतएव यह वापस चले आये। इन्द्र की इस मदान्धता पर वृहस्पतिजी को बड़ा दुःख हुआ। फलस्वरूप इन्द्र पर दैत्यों ने चढ़ाई करदी और स्वर्ग से सबको मार भगाया। अन्त में ब्रह्माजी की सहायता से बड़ी कठिनता पूर्वक इन्द्र की रक्षा हो सकी।

त्रिशङ्कु—राजा त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग जाना चाहता था। वशिष्ठ और उनके पुत्र राजा को इस कार्य में सहायता न दे सके तो वह विश्वामित्रजी के पास गया। विश्वामित्रजी ने अपनी तपस्या के बल से राजा को स्वर्ग भेज दिया परन्तु स्वर्गवासियों ने सशरीर स्वर्ग में आये हुये राजा त्रिशंकु को धक्का देकर नीचे गिरा दिया, उधर विश्वामित्र ने अपने तेज-बल द्वारा उसे पृथ्वी पर न आने दिया। इस प्रकार बेचारा बीच ही में लटक गया। न उसे स्वर्ग ही प्राप्त हुआ और न वह पृथ्वी पर ही आ सका। वह राजा अब भी त्रिशंकु के तारे के नाम से प्रसिद्ध है।

रिपु, रिन, रंच न राखहु काहू=शत्रु और ऋण कभी किसी को जरा भी बाकी न रखना चाहिए।

दोहा २३०-२३९—चाहत भभरि भगान=भर्र भर्र भागने की इच्छा करने लगे। अंचवत=आचमन करते ही। सीकरनि= बूंदों से। बिनसाई=विनष्ट हो जाता या फट जाता है। मकु= चाहे। घटजोनी=अगस्त्यजी। छोनी (क्षोणि)=पृथ्वी। मसक (मशक)=मच्छड़। "जगजस ...... नवीना"=संसार में चातक और मछली दोनों ही यश के पात्र हैं, क्योंकि चातक स्वाति के अतिरिक्त और तरह का जल न पीने का नियम निबाहता रहता है और मछली पानी से अपना नित नया प्रेम बनाये रखने में निपुण है। उताइल=जल्दी। जल अति=पानी

का भँवर अथवा वह काला कीड़ा जो जल्दी-जल्दी पानी में चक्कर लगाता रहता है। ईति भीति जनु प्रजा दुखानी=ईति सात हैं अर्थात् अतिवृष्टि, अनावृष्टि, जगली चूहों का खेत खाजाना, टीढ़ी, तोता, अपने ही मित्र शत्रु हो जायँ, दूसरा शत्रु चढ़ आवे। भ्राजा=शोभित हुई। खगह=गेंडा। निसान=बाजा। पाकर=पिलखन। जम्बु=जामुन। वटु=बरगद। सकेलि=बटोरकर। सुखमा (सुषमा) सी=शोभा सी। अचर सचर चर अचर करत को=चर को अचर और अचर को चर कौन करता? अर्थात् भरत के वास्तविक प्रेम से अचर पत्थरादि भी पिघल जाते थे और चर ऋषि-मुनि आदि भी शिथिल से हो जाते थे। तून=तरकस।

दोहा २४०-२४१—गुदरत=छोड़ते। चढ़ी खेलारू=मानो खिलाडी चढ़ी हुई पतग (चग) को खींचने लगा हो। चढी हुइ पतंग को खींचने में बडी सावधानी करनी पडती है जिसमे वह फट न जाय या धरती पर न गिर पडे। जिस प्रकार खिलाडी पतग को उतारते समय कभी ढील देता है और कभी उसे खींचता है, उसी प्रकार लक्ष्मण जी कभी सेवा में लगते हैं और कभी भाई के प्रेम में मुग्ध हो जाते हैं। निपग=तरकस। बिसरे सबहिं अपान=सब अपना आपा भूल गय। आखर=अक्षर। भाजु सुराग कि गाडर ताँती=क्या कभी ऊन की तात से भी अच्छा राग निकल सकता है।

मिलनि बिलोकि धरकी।"
समुझाये • लागे।"

भरत और राम की मुलाकात देखकर देवताओं में खल बली मच गई कि कहीं राम वापस न लौट जायँ और हमारा स्वार्थ

सिद्ध न हो सके अर्थात् राक्षसों का विध्वंस होने से रह जाय। परन्तु जब देवताओं को गुरु बृहस्पतिजी ने समझाया तब वे शान्त हुए। देवताओं को इस चौपाई में जड इसलिए कहा गया है कि उन्होंने अब तक राम का स्वरूप नहीं समझा था।

दोहा २४२-२४८—जिमि घट कोटि एक रवि छाहीं= जैसे करोड़ों घड़ों में एक ही समय में सूर्य की छाया पड जाती है और एक के अनेक सूर्य दीखने लगते हैं। रंका=कंगाल। भेऊ=भिगोई, ठंडा कर दिया। अकाजेउ=मृत्यु हुई हो। निरम्बु=निर्जल। पातक-तम तरनी=पाप रूपी अन्धकार को दूर करने के लिए सूर्य समान।

दोहा २४९-२५४—मारुत=हवा। अघ ओघ=पापों का समूह। त्रिविधि ताप=तीन प्रकार के ताप अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधि दैविक। परन (पर्ण) पुटी= दोना। मरुधरनि=मरु देश। प्रतिवेश बनाइ=कई रूप बना कर, कई सीता बन कर। साली (शालि)=धान। हरगिरि= कैलास पर्वत। भगवान=षड्श्वर्य युक्त, प्राणियों की उत्पत्ति, मृत्यु, सद्गति, दुर्गति, विद्या और अविद्या को जानने वाला। अहिप=शेषनाग।

दोहा २५५ २६३—नय=नीति, नम्रता। साईं=गोसाईं। बोहित=जहाज। बेरा=बेडा। खुनस=क्रोध, द्वेष। महँ=मनैभी। फरइ सुसाली=क्या कभी कौदों की बाल पर उत्तम चावल लग सकते हैं। मुक्ता सबुक ताली=क्या तालाब की सीप कभी मोती पैदा कर सकती है? परिपाक=परिणाम। काकु=उलटा सुलटा कहना। बेह्=छेद। खभारु=घबराहट। पुन्यसिलोक (पुण्यश्लोक)=यशस्वी। तर=नीचा।

दोहा २६४-२७०—नरहरि प्रहलादा=प्रह्लादने नृसिंह अवतार प्रकट कराया। प्रह्लाद हिरण्यकशिपु नामक दैत्य का पुत्र था।

उसे बालकपन से ही भगवान् में अनुराग था। प्रह्लाद की ऐसी भगवद्भक्ति देखकर उसके बाप ने उसे घोर कष्ट दिये, कभी पानी में बहाया और कभी अग्नि में जलाया परन्तु भगवान् के अनुग्रह से उसका बाल भी बाँका न हुआ। परन्तु जब हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद के प्राण लेने की ठान ली तो भगवान् ने नृसिंह रूप धारण कर उसकी रक्षा की और हिरण्यकशिपु को मार डाला। सय = समान । टीक = टेक टिकाई । सनमुख = अनुकूल । देवतरु = कल्पवृक्ष । मिटहि अनट अवरेव = यह अड़चन दूर हो जायगी । चरवर = दूतशिरोमणि ।

दोहा २७१-२७३—जनकौरा = जनकपुर निवासी । तिरहुत = मिथिला । साहनी = सेनापति । दुघड़ी = एक प्रकार का मुहूर्त । बिनवहिं·· जोरी = अञ्जलि पसार और हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगे ।

दोहा २७४-२८०—जानत करि मोरे = अपना करके जानते हैं । सम्भ्रम = घबराहट । लेस (लेश) = थोड़ा । अवर्त्त = चक्र । ओक = आश्रय । निमिराज = जनक । जनक पुरोधा = जनक के पुरोहित (शतानन्द) । कौशिक = विश्वामित्र । काँवरि = कावर । अटन = पर्यटन ।

दोहा २८१-२८७—सावकाश = फुरसत । महिनख सोचन = सोच में नखों से पृथ्वी खुरचने लगी । स्त्रियों का स्वभाव होता है कि वे चिन्ता में पड़ कर प्राय पाँव के नख से धरती कुरेदने लगती हैं । बिसूरति = बिगड़ी सूरत करना अथवा सिसक सिसक कर रोना । कहत सारदहु की मति हीची = कहते में शारदा की बुद्धि भी हिचकिचा जाती है । जेस कनक मनि पारिखि पाये = सोना कसौटी पर कसने और मणि परखने पर ही जानी जाती है । मुधा = असत्य ।

उर उमगेउ ''' प्रयागू । सिय सनेह ,सोहा।
चिरजीवी'' अवलम्बन । मोद सनेह की।

चिरजीवी से अभिप्राय मार्कण्डेय से है —

उपर्युक्त चौपाइयों में कोइ शब्द कठिन नहीं आया परन्तु तुलसीदासजीने उनमें तीर्थराज प्रयाग का रूपक बाँधा है। इस रूपक का एक पौराणिक कथा से सम्बन्ध है, अतएव उसका यहा दे देना आवश्यक है, अर्थ वैचित्र्य समझने में सुविधा होगी। प्रयागराज के विषय में यह प्रसिद्ध है कि प्रलय काल में जब सारी सृष्टि नष्ट होजाती है तब भी वह ज्यों का त्यों बना रहता है। प्रलय के पानी की वृद्धि के साथ ही अक्षयवट भी बढ़ता जाता है जिससे वह कभी पानी में नहीं डूबता।

मार्कण्डेय की कथा इस प्रकार है कि उन्होंने एक बार बडा तप किया, तप से प्रसन्न होकर उन्हें भगवान ने दर्शन दिये। मार्कण्डेयजी ने नारायण से अपनी माया दिखाने की प्रार्थना की जिसे सुनकर वे चले गये। परन्तु थोडी देर में ही चारों ओर समुद्र उमड पडा। मुनि के आश्रम तथा भूमि आदि सब डूब गये। मार्कण्डेय के अतिरिक्त कोई न बचा। मुनिजी तुंबी की तरह जल में बहुत दिनों तक तैरते रहे। एक दिन अचानक मुनि को हराभरा वटवृक्ष दिखाइ दिया उसके ऊपर पत्तों के सम्पुट में एक बालक सो रहा था। ज्यों ही मुनिराज इस बालक को जगाने लगे त्योंही वे उसके श्वास के साथ उसके पेट में चले गये। वहाँ उन्होंने अपना आश्रम देखा और पृथ्वी भी देखी। थोडे दिन मार्कण्डेयजी ने बालक के उदर में ही विश्राम किया, परन्तु कुछ दिनों बाद वे फिर श्वास के साथ बाहर निकल आये और जल में जा पडे। परन्तु यह सब

कौतुक दो घड़ी में ही समाप्त हो गया, और मार्कण्डेय ने वृक्ष पर सोये हुए भगवान् की माया देख ली।

गंग अवनिथल तीन बड़ेरे=गंगा के पृथ्वी पर तीन ही बड़े स्थल हैं। अर्थात् हरिद्वार, प्रयाग और गंगा सागर।

दोहा २८८–२९४—ढलि=बहाने से। बहुरहिं=वापस गया। भोरेहु=भूल कर भी। पेलहहिं=टालेंगे। परधान=प्रधान। तुम्ह तेही=जो तुम्हारे विना दुखी है उसीसे तुम सुखी हो अर्थात् भक्त तुम्हारे विना दुखी और तुम भक्तों के विना दुखी रहते हो। सुगम थोरे=ये अक्षर सुगम भी हैं और अगम (गूढ़ार्थयुक्त) भी। अर्थात् कहने-सुनने में कोमल हैं पर कर्त्तव्य में कठोर हैं। भये अलेख सोच बस लेखा=सब देवता सोच वस अलेख अर्थात् कर्त्तव्य विमूढ़ से हो गये, अथवा सब देवता सोच बश चित्र लिखे से हो गये।

दोहा २९५–२९७—बढ़त विंधि जिमि घटज निवारा=जिस तरह बढ़ते हुए विन्ध्याचल को अगस्तजी (घटज) ने रोका था। इसकी कथा—एक बार विन्ध्याचल पर्वत ने ऊंचा होकर सूर्य का तेज रोकने की कोशिश की। इससे देवताओं में बड़ी खलबली मचगई। उन्होंने और कुछ चारा चलता न देख अगस्तजी को विन्ध्याचल के पास भेजा, विन्ध्याचल ने साष्टाङ्ग दण्डवत की और प्रार्थना की कि सेवा के लिए आज्ञा दीजिए। मुनिराज अगस्तजी ने कहा कि जब तक हम फिर वापस न आवें तब तक तुम इसी प्रकार दण्डवत् पड़े रहो, यही हमारी आज्ञा है। इसके बाद फिर अगस्तजी वहां कभी नहीं गये। कनकलोचन=हिरण्याक्ष। वराह=वराह भगवान्। उधरी=उद्धार।

सोक • जोनी ।
भरत विवेक • • काला ॥

उपर्युक्त चोपाइयों में इस प्रकार रूपक है—सृष्टि के आदि में स्वायम्भव मनु और शतरूपा रानी के प्रकट होते ही हिरण्याक्ष ने अपने बल के घमण्ड में पृथ्वी को लेजाकर रसातल में रख दिया। इधर ब्रह्माजी को चिन्ता हुइ कि वह अपनी सृष्टि अब किस आधार पर चलावें, तब उन्होंने विष्णु भगवान से प्रार्थना की। विष्णु ने तुरन्त वराह अवतार धारण कर, हिरण्याक्ष को मार और पृथ्वी को उबार कर यथा स्थान रख दिया।

दोह २९८-२९९—निरीस = निरीश्वरवादी। नेवाजी = कृपा करके। बिरदावलि = बिगडे को सुधारना, प्रशस्ति। आयउ लाइ रजायसु बाँए = आपकी आज्ञा के विपरीत आया हूँ।

दोहा ३००-३०२—नलिन = कमल। मघवा = इन्द्र। पाक-रिपु = पाक नामक दैत्य का बैरी अर्थात् इन्द्र। "सरित सिन्धु सगम जनु वारी" = जैसे नदी और समुद्र के सगम से पानी दुखी हो। थोडी थोडी देर में समुद्र का पानी नदी में और नदी का समुद्र में आता जाता है, एक धारा नहीं बँधने पाती। यही पानी की व्याकुलता या घबराहट है। सरिस स्वान मघ-वान जुवानू = इन्द्र कुत्तों (स्वान श्वान) और जवान के समान है। अष्टाध्यायी नामक प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ में श्वन्, युवन् और मघवन् तीनों शब्दों के रूप एक ही से चलते हैं। यह विनोद है, अर्थात् इन्द्र का रूप कुत्ते के समान है।

दोहा ३०३-३०९—भरत भगत सबकै मति जन्त्री = भरत की भक्ति में सब की बुद्धि बँध गई। हुलसी = उमडी

हुई है, प्रसन्न है। वाम = विपरीत। सलिलरस = अमृत। मातु पिता   सेहू = माता पिता गुरु और स्वामी की आज्ञा मानना सब का धर्म है। आज्ञा पालन करने के लिए ही शेष ने अपने ऊपर पृथ्वी धारण कर रक्खी है। इसकी कथा इस प्रकार है —एक बार सत्य और धर्म में इस बात पर विवाद हुआ कि दोनों मे कौन बडा हे। शेषजी न्यायाधीश नियुक्त किये गये। इन्होंने कहा कि जो पृथ्वी को धारण करे वही बडा। धर्म को पृथ्वी दी गई तो वह घबरा गया। फिर सत्य को दी तो उसने एक युग तक उसको धारण किया। उधर शेषजी ने सोचा कि मेरे सहस्र मुख हैं, मैं चाहूं तो अपने हजार मुखों से भगवान् के नाम रूप वर्णन कर उन्हें समाप्त कर सकता हूँ। भगवान् ने इसी बात पर यह पृथ्वी शेषजी के मस्तक पर रखदी कि नाम गुण पूरे हो जाने पर उसे उतार देना। परन्तु अब तक नाम गुणों की समाप्ति नहीं हुई और तबसे बराबर शेषजी पृथ्वी को धारण किये हुए हैं।

भूतिमय = ऐश्वर्यमयी। 'ओडियहि हाथ असिनि के घाये' = तलवार के घाव खाकर हाथ ही आगे आते हैं।

सेवक कर पद   • •   होई।
तुलसी   • सोइ॥

सेवक हाथ, पैर तथा आंखों के समान होना चाहिये और स्वामी मुख के सदृश। आंखें किसी फल को देखती हैं, पांव उस तक पहुँचाते हैं और हाथ उसे लेकर मुह में दे देते हैं। फिर मुह उस फल को खाकर आख, हाथ और पाँव को उनकी सेवा के पुरस्कार स्वरूप रस दे देता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि विद्वान् लोग ऐसी ही प्रीति की रीति सुनकर उसकी प्रशंसा करते हैं।

बरिआई = बारबार। पावन पावन = पवित्र करने वालों को भी पवित्र करने वाला।

दोहा ३१०-३१४—पाथ = जल। कुराई = ठूठ। प्राकृत = मामूली आदमी। 'राउर वदि भल भवदुख दाहू' = आपका कहाकर तो ससार का दु खदाह भी अच्छा है। देव दुहूँ दिसि ओर निबाहू = दोनों ओर (वन और घर) का निर्वाह आपही के हाथ है। परोसो = जरासा भी। खीर (क्षीर) नीर विवरन गति हँसी = जिस प्रकार हस में दूध पानी अलग कर देने की शक्ति होती है, उसी प्रकार इस विनती में है।

दोहा ३१५-३१७—नृपहिं = राजा जनक से मतलब है। खाले = खाली जगह में, गड्ढे में। पुहुमि = पृथ्वी।

(दोहा) मुखिया   एक। पालह   विवेक = जैसे खान पान के लिए एक ही मुह मुख्य है, इसी तरह मुखिया (मालिक) होना चाहिए। मु ह खा पीकर जिस प्रकार सारा रस शरीर के प्रत्येक अग प्रत्यग को बाँट देता है, उसी प्रकार मुखिया को कर लेकर उसका प्रजा के हित में उपयोग करना चाहिए। साँती = शान्ति। पाँवरी = खडाऊँ। चरन (चरण) पीठ = चरण सिंहासन, खडाऊँ। जामिन = जामिनदार (रक्षक)। सपुट = कटोरदान या डिब्बी। सपुट

'भरत के = भरत के स्नेह रूपी रत्न को रखने के लिए मानो दो डिब्बी हैं। दो अक्षर 'राम' जीवों की शुभ चिन्तना करने वाले सहायक हैं। अवधि आस सम जीवनि जीकी = अवधि (१४ वर्ष तक) जीवों के जीने के लिए आशा होगई। अवरेब = बिगडी बात। विबुध धारि भइ गुनद गुहारी = देवताओं की चाल स्पष्ट गुणदायक होगई। जे विरंचि   जलजाये = ब्रह्माजी के उपाय से वे ऐसे निर्लेप हैं जैसे जल से उत्पन्न

होकर भी कमल के पत्ते सदा पानी से ऊपर रहते हैं, उन पर बूद भी नहीं ठहरती।

दोहा ३१८-३२५—रही सीय दुहुँ प्रीति समाई = सीता मायके और सुसराल की प्रीति में फँसी रही। बसह = खच्चर। गणक = ज्योतिषी। दिन साधि = मुहूर्त्त सोधकर। तृन तूरी = तिनके के तुल्य। धनद् = कुबेर। चचरीक जिमि चपक बागा = भौंरा जिस प्रकार चम्पा के बाग में रहता है। भौंरा कमल से तो प्रेम करता है, परन्तु चम्पा की गन्ध उसे नहीं भाती। इसलिए वह उसकी ओर जाता भी नहीं। चमन = कै। रमा = लक्ष्मी। चातक हस जिभूती = पपीहा और हस की प्रशसा स्वाति बूद और क्षीर नीर की टेक के कारण है अतएव राम प्रेम भाजन भरत के लिए यह कोई बडी बात नहीं है। बेतस = बेत वृक्ष। वनज = कमल। नखत = नक्षत्र। ध्रुव = ध्रुव तारा। राका = पूर्णिमा। सुरवीथि = तारों का एक पुञ्ज जो शरद् ऋतु में आधी रात के समय दिखाई देता है। इसे देवताओं का मार्ग भी कहते हैं। अदोखा = अदोष या निर्दोष।

दोहा ३२६-३२७—भवरस विरत = ससार से उदासीन।

कहावतें

अयोध्याकाण्ड में, चौपाइयों के रूप में जो कहावतें आई हैं, वे नीचे दी जाती हैं —

१—'रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्राण जाहिं पर वचन न जाइ॥'

२—'नहिं असत्य सम पातक पुञ्जा
गिरि सम होहिं कि कोटिक गुञ्जा'

३—'मनहुँ घाव महँ माहुर देई'

४—'चोरहिं चाँदिनि रात न भावा'
५—'समउ फिरे रिपु होहिं पिरीते'
६—'निज हित अनहित पसु पहिचाना'
७—'को न कुसंगत पाय नसाइ'
८—'मनहुँ अन्ध फिर लोचन पाए'
९—'डावर जोग कि हंस कुमारी'
१०—'जियहि कि लवन पयोधि मराली'
११—'धीरज धरिय त पाइय पारू'
१२—'हानि लाभ जीवन मरन, जस अपजस विधि हाथ'
१३—'नहिं विष वेलि अमिय फल फरहीं'
१४—'दुइ हाथ मन मोदक मोरे'
१५—'सहसा करि पछितांहिं विमूढ़ा'
१६—'जग बौराइ राज पद पाए'
१७—'हमहुँ कहवि अब ठकुरसुहाती
नाहिं त मौन रहब दिन राती'
१८—'कोउ नृप होउ हमहिं का हानी'
चेरि छाँडि अब होब कि रानी'
१९—'बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा'
२०—'पिय वियोग सम दुख जग नाहीं'
२१—'तहाँ दिवस जहँ भानु प्रकाशु'
२२—'तस पूजा चाहिए जस देवता'
२३—'केहि न राज मद दीन्ह कलंकू'
२४—'सबते कठिन राज मद भाई'
२५—'चचरीक जिमि चंपक बागा'
२६—'कसे कनक मनि पारिख पाये
पुरुष परिखिअहिं समय सुहाये'

२७—'ऊँच निवासु नीचि करतूती
देखि न सकहिं पराइ विभूती'
२८—'दुखित दोष गुन गनहिं न साधू'
२९—'आरत काह न करइ कुकमू'
३०—'अरध तजहिं बुध सरबस जाता'
३१—'कर्म प्रधान बिस्व करि राखा
जो जस करै सो तस फल चाखा'
३२—'सेवा धरम कठिन जग जाना'
३३—दुखित कतहुँ परितोष न लहहीं'
३४—'फरइ कि कोदव बालि सुसाली'
३५—जग केहि कहहु न होइ कलेसू'
३६—'बैर प्रेम नहिं दुरै दुराए'
३७—'अपनी समुझि साधु सुचि को भा'
३८—'स्वामि धरम स्वारथहिं बिरोधू
बैर अन्ध प्रेमहिं न प्रबोधू'
३९—'प्रभु अपने नीचहुँ आदरहीं
अगिनि धूम गिरि सिर तृन धरहीं'
४०—'आरत कहहिं बिचार न काऊ'
सूझ जुआरिहि आपन दाऊ'
४१—'रामहिं केवल प्रेम पियारा
जानि लेहु जो जानन हारा'
४२—कबहुँक काजी सीकरन्हि, छीर सिन्धु बिनसाइ'
४३—'लातहुँ मारे चढ़त सिर, नीच को धूरि समान'
४४—'चलै जोंक जिमि वक्रगति, यद्यपि सलिल समान'
४५—'मारेसि गाय नाहरू लागी'

पार्वती-मङ्गल

पार्वती-मंगल

गोस्वामी तुलसीदासजी ने इस पुस्तक में, शिव और पार्वती के विवाह का वर्णन किया है। इसमें १४८ सोहर तथा १६ हरिगीतिका छन्द हैं। इस ग्रन्थ की रचना 'जय' नामक सवत् में हुई थी जो १६४३ वि० में पडता है। इस विषय में तुलसीदासजी ने स्वय ही लिखा है—

"जय सवत् फागुन सुदि पाँचै गुरु-दिनु।
अस्विनि विरचेउँ मगल, सुनि सुख छिनु छिनु॥"

'पार्वती-मगल' की भाषा अवधी और पूर्वी है। यही कथा गोस्वामीजी ने 'राम चरित-मानस' में भी लिखी है। परन्तु कथानक एक होते हुए भी वर्णन शैली में कुछ भेद होगया है। 'मानस' और 'मगल' दोनों में ही विवाहका वर्णन निराले ढगसे किया गया है। दोनों की कवित्व छटा अद्भुत और हृदय को आनन्द देने वाली है। पार्वतीजी के विवाह में जहा रीति-रिवाजों और रस्मों का वर्णन किया गया है वहाँ गोस्वामीजी ने पूर्वीय लोक प्रथाओं का आश्रय लिया है। इससे उसमें कितनी ही ऐसी भी रीति आगई हैं जिनका सम्बन्ध केवल पूर्वीय प्रान्त से है। अस्तु

इस पुस्तक में अद्भुत, भयानक और हास्यरस की नदिया बढी सुन्दरता से बहाई गई हैं। यह मगल विवाहादि अवसरों पर गाने के लिए रचा गया है। वास्तव में यह है भी

इसी लायक। पार्वती मगल का कथानक इस प्रकार है कि हिमालय पर्वत बड़ा गुणी था, मैना नामक उसकी स्त्री थी। इनसे पार्वती नाम की एक कन्या पैदा हुई। जब वह बड़ी हुई तो माता पिता को विवाह की चिन्ता हुई। इतने में नारदजी घूमते फिरते हिमालय के यहाँ आ पहुँचे। मैना ने उनसे पार्वती के लिए वर पूछा। नारदजी बोले कि पार्वती का पति तो कोई पागल होना चाहिए। यह सुनकर हिमालय और मैना को बड़ा दुःख हुआ। परन्तु नारदजी ने कहा कि घबराने की कोई बात नहीं है, अगर पार्वती, शिवजी की तपस्या करें तो यह दोष दूर हो सकता है। पार्वती ने बड़ी कड़ी तपस्या की परन्तु उनके रूप लावण्य के कारण शिवजी के मन में बिल्कुल वासना पैदा न हुई। यह देख कर देवताओं ने कामदेव को उनके पास भेजा परन्तु शिवजी ने उसे भस्म कर दिया। महादेवजी अपना पहला स्थान छोड़कर दूसरी जगह चले गये परन्तु पार्वती ने तप बन्द न किया, वह और भी कठिनता से तपस्या करने लगीं। फिर ब्रह्मचारी का वेश धारण कर महादेव पार्वती की परीक्षा के लिए आये और अनेक बातें बनाकर यह जानना चाहा कि वह शिवजी पर कहातक अनुरक्त हैं। अन्त में पार्वती, परीक्षा में पास हुई, ब्रह्मचारी ने अपना असली स्वरूप प्रकट किया और विवाहकी स्वीकृति देदी। सप्तऋषियों के बीच में पड़ने से विवाह पक्का होगया। बड़ी शान की बारात चढी जिसमें विष्णु और इन्द्र अन्य अनेक देवताओं के साथ सम्मिलित हुए थे। शिवजी के गणों ने बड़ा मजा किया। हिमालय के यहाँ उनकी बड़ी हँसी हुई और लोग उनकी भयङ्करता से डरे भी बहुत। बारात चढ़ते समय शिवजी ने भी अपना बड़ा विकराल रूप बना लिया था परन्तु जब उसके कारण हिमालय नगर निवासीगण उनकी निंदा करने लगे

तो फिर महादेव ने काया पलट कर लिया और मुहूर्त्त मात्र में वह बड़े सुन्दर दिखाई देने लगे। इससे सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। विधि विहित विवाह-कार्य सम्पन्न हुआ। बरातियों को बड़े ठाठ की दावत दी गई। फिर पार्वती को विदा कराकर शिवजी कैलास को गये और देवता गण अपने अपने स्थानों को। सारे ससार में इस विवाह की धूम मच गई और सब लोग बधाइ देने लगे।

थोड़े से शब्दों में पार्वती-मगल की कथा का साराश यही है। हमारा विश्वास है कि पाठकों को इस पुस्तक के पढ़ने में बड़ा आनन्द आवेगा और वे इसमें कवि की प्रतिभा-शक्ति का अच्छा चमत्कार देखेंगे। पाठकों की सुविधा के विचार से कठिन शब्दों तथा छन्दों के अर्थ भी लिख दिये गये हैं।

पार्वती-मङ्गल



विनइ गुरुहि, गुनिगनहि, गिरहि, गननाथहि।
हृदय आनि सियराम, धरे धनु भाथहि ॥ १ ॥
गावउँ, गौरि—गिरीस—विवाह सुहावन।
पापनसावन, पावन, मुनि मन-भावन ॥ २ ॥
कवितरीति नहिं जानउँ, कवि न कहावउँ।
शंकर-चरित-सुसरित मनहिं अन्हवावउँ ॥ ३ ॥
पर अपवाद विवाद विदूषित बानिहि।
पावनि करउँ सो गाइ भवेस भवानिहि ॥ ४ ॥
जय संवत फागुन, सुदि पाँचै, गुरुदिनु।
अस्विनि विरचेउँ मंगल, सुनि सुख छिनु छिनु ॥ ५ ॥
गुननिधान हिमवान धरनिधर धुरधनि।
मैना तासु घरनि घर त्रिभुवन तियमनि ॥ ६ ॥
कहहु सुकृत केहि भाँति सराहिय तिन्ह कर।
लीन्ह जाइ जगजननि जनम जिन्ह के घर ॥ ७ ॥
मंगलखानि भवानि प्रगट जब तें भइ।
तब तें रिधि सिधि संपति गिरिगृह नित नइ ॥ ८ ॥
नित नव सकल कल्यान मंगल मोदमय मुनि मानहीं।
ब्रह्मादि सुर नर नाग अति अनुराग भाग बखानहीं ॥
पितु, मातु, प्रिय परिवार हरषहिं निरखि पालहिं लालहीं।
सित पाख बाढ़ति चन्द्रिका जनु चंद्रभूषन भालहीं ॥ ९ ॥

कुँवरि सयानि बिलोकि मातु पितु सोचहिं।
गिरिजा-जोग जुरिहि बर अनुदिन लोचहिं ॥१०॥
एक समय हिमवान भवन नारद गए।
गिरिवर मैना मुदित मुनिहि पूजत भए ॥११॥
उमहिं बोलि ऋषि-पगन मातु मेलति भइ।
मुनिमन कीन्ह प्रनाम, बचन आसिष दइ ॥१२॥
कुँवरि लागि पितु काँध ठाढ़ि भइ सोहइ।
रूप न जाइ बखानि, जान जोइ जोहइ ॥१३॥
अति सनेह सतिभाय पाँय परि पुनि पुनि।
कह मैना मृदु बचन "सुनिय बिनती, मुनि ॥१४॥
तुम त्रिभुवन तिहुँकाल बिचार बिसारद।
पारवती-अनुरूप कहिय बर, नारद" ॥१५॥
मुनि कह "चौदह भुवन फिरउँ जग जहँ जहँ।
गिरिवर सुनिय सरहना राउरि तहँ तहँ ॥१६॥
भूरि भाग तुम सरिस कतहुँ कोउ नाहिन।
कछु न अगम, सब सुगम, भयो बिधि दाहिन ॥१७॥

दाहिन भए बिधि सुगम सब, सुनि तजहु चित चिंता नई।
बर प्रथम बिरचि बिरचि बिरची मंगला मंगल मई॥
बिधिलोक चरचा चलति राउरि चतुर चतुरानन कही।
हिमवान-कन्या जोग बर बाउर बिबुध बंदित सही ॥१८॥

मोरेहु मन अस आव मिलिहि बर बाउर"।
लखि नारद-नारदी उमहि सुख भा उर ॥१९॥
सुनि सहमे परि पाइँ कहत भए दंपति-
"गिरिजहि लागि हमार जिवन सुख संपति ॥२०॥
नाथ! कहिय सोइ जतन मिटहि जेहि दूषनु"।
"दोष-दलनु" मुनि कहेउ बाल-बिधुभूषनु ॥२१॥

अवसि होइ सिधि, साहस फलै सुसाधन।
कोटि कलपतरु सरिस सम्भु-अवराधन ॥२२॥
तुम्हरे आस्रम अबहिं ईस तप साधहिं।
कहिय उमहिं मनु लाइ जाइ अवराधहिं ॥२३॥
कहि उपाउ दम्पतिहि मुदित मुनिवर गए।
अति सनेह पितु मातु उमहिं सिखवत भए ॥२४॥
सजि समाज गिरिराज दीन्ह सबु गिरिजहि।
बदति जननि, "जगदीस जुवति जिनि सिरजहि" ॥२५॥
जननि-जनक-उपदेस महेसहि सेवहि।
अति आदर अनुराग भगति मन भेवहि ॥२६॥

भेवहि भगति मन, बचन करम अनन्य गति हरचरन की।
गौरव सनेहु सँकोच सेवा जाइ केहि विधि बरन की॥
गुनरूप जोबनसींव सुन्दरि निरखि छोभ न हर हिए।
ते धीर अछत विकारहेतु जे रहत मनसिज बस किए ॥२७॥

देव देखि भल समउ मनोज बुलायउ।
कहेउ करिय सुरकाजु, साजु सजि धायउ ॥२८॥
वामदेव सन काम वाम होइ बरतेउ।
जग जय मद निदरेसि हर, पायेसि फर तेउ ॥२९॥
रति पतिहीन मलीन बिलोकि बिसूरति।
नीलकंठ मृदु सील कृपामय मूरति ॥ ३० ॥
आसुतोष परितोष कीन्ह बर दीन्हेउ।
सिव उदास तजि बास अनत गम कीन्हेउ ॥ ३१ ॥
उमा नेहबस बिकल देह सुधि बुधि गइ।
कलपबेलि बन बढत बिषम हिम जनु दइ ॥ ३२ ॥
समाचार सब सखिन जाइ घर घर कहे।
सुनत मातु पित परिजन दारुन दुख दहे ॥ ३३ ॥

जाइ देखि अति प्रेम उमहिं उर लावहिं।
बिलपहिं बाम बिधातहिं दोष लगावहिं ॥ ३४ ॥
जो न होहिं मंगलमग सुर बिधि बाधक।
तौ अभिमत फल पावहिं करि स्रमु साधक ॥ ३५ ॥
साधक कलेस सुनाइ सब गौरिहि निहोरत धाम कौं।
को सुनइ काहि सोहाइ घर, चित चहत चंद्रललाम कौं।
समुझाइ सबहिं दृढाइ मन, पितु मातु आयसु पाइ कै।
लागी करन पुनि अगमु तपु, तुलसी कहै किमि गाइ कै ॥ ३६ ॥
फिरेउ मातु पितु परिजन लखि गिरिजा पन।
जेहि अनुरागु लागु, चित, सोइ हितु आपन ॥ ३७ ॥
तजेउ भोग जिमि रोग, लोग अहिगन जनु।
मुनि मनसहु ते अगम तपहि लायउ मनु ॥ ३८ ॥
सकुचहिं बसन बिभूषन परसत जो बपु।
तेहि सरीर हर—हेतु अरभेउ बड तपु ॥ ३९ ॥
पूजहि सिवहि, समय तिहुँ करहि निमज्जन।
देखि प्रेम व्रतु नेमु सराहहिं सज्जन ॥ ४० ॥
नींद न भूख पियास, सरिस निसि बासरु।
नयन नीर, मुख नाम, पुलक तनु, हिय हरु ॥ ४१ ॥
कंद मूल फल असन, कबहु जल पवनहिं।
सूखे बेल के पात खात दिन गवनहिं ॥ ४२ ॥
नाम अपरना भयो परन जब परिहरे।
नवल धवल कल कीरति सकल भुवन भरे ॥ ४३ ॥
देखि सराहहिं गिरिजहि मुनिवरु मुनिबहु।
अस तप सुना न दीख कबहुँ काहु कहुँ ॥ ४४ ॥
काहु न देख्यो कहहिं यह तपु जोगु फल फल चारि का।
नहिं जानि जाइ, न कहति, चाहति काहि कुधर-कुमारिका ॥

बटुवेष पेषन पेम पन व्रत नेम ससिसेखर गए।
मनसहि समरपेउ आपु गिरिजहि, वचन मृदु बोलत भए ॥ ४५ ॥
देखि दसा करुनाकर हर दुख पायउ।
मोर कठोर सुभाय हृदय लखि आयउ ॥ ४६ ॥
बस प्रससि, मातु पितु कहि सब लायक।
अमिअ बचन बटु बोलेउ सुनि सुखदायक ॥ ४७ ॥
"देवि! करौं कछु बिनय सो बिलगु न मानब।
कहौं सनेह सुभाय साँच जिय जानब ॥ ४८ ॥
जनमि जगत जस प्रगटिहु मातु पिता कर।
तीयरतन तुम उपजिहु भव रतनागर ॥ ४९ ॥
अगम न कछु जग तुम कहँ, मोहि अस सूझइ।
बिनु कामना कलेस कलेस न बूझइ ॥ ५० ॥
जो बर लागि करहु तपु तौ लरिकाइय।
पारस जौ घर मिलै तौ मेरु कि जाइय ॥ ५१ ॥
मोरे जान कलेस करिय बिनु काजहि।
सुधा कि रोगिहि चाहहि, रतन कि राजहि ॥ ५२ ॥
लखि न परेउ तपकारन बटु हिय हारेउ।
सुनि प्रिय बचन सखीमुख गौरि निहारेउ ॥ ५३ ॥
गौरि निहारेउ सखीमुख, रुख पाइ तेहि कारन कहा।
"तप करहिं हरहितु" सुनि बिहँसि बटु कहत "मुरुखाई महा"।
जेहि दीन्ह अस उपदेस बरेहु कलेस करि बर बावरो।
हित लागि कहौ सुभाय सो बड़ बिषम बैरी रावरो ॥ ५४ ॥
कहहु काह सुनि रीझिहु बरु अकुलीनहिं।
अगुन अमान अजाति मातु-पितु हीनहिं ॥ ५५ ॥
भीख माँगि भव खाहिं, चिता नित सोवहिं।
नाचहिं नगन पिसाच, पिसाचिनि जोवहिं ॥ ५६

भाग धतूर अहार, छार लपटावहिं।
जोगी, जटिल, सरोष, भोग नहिं भावहिं ॥ ५७ ॥
सुमुखि सुलोचनि ! हर मुखपंच, तिलोचन।
वामदेव फुर नाम, काम-मद-मोचन ॥ ५८ ॥
एकउ हरहिं न वर गुन, कोटिक दूषन।
नर-कपाल गजखाल, ब्याल, विष भूषन ॥ ५९ ॥

कहँ राउर गुन सील सरूप सुहावन।
कहाँ अमंगल बेषु विसेषु भयावन ॥ ६० ॥
जो सोचहि ससिकलहि सो सोचहि रौरेहि ?।
कहा मोर मन धरि न वरिय वर बौरेहि ॥ ६१ ॥
हिये हेरि हठ तजहु, हठै दुख पैहहु।
ब्याह-समय सिख मोरि समुझि पछितैहहु ॥ ६२ ॥
पछिताब भूत पिसाच प्रेत जनेत ऐहैं साजि कै।
जमधार सरिस निहारि सब नर नारि चलिहहिं भाजि कै॥
गजअजिन दिव्य दुकूल जोरत सखी हँसि मुख मोरि कै।
कोउ प्रगट कोउ हिय कहिहिं मिलवत अमिअ माहुर घोरि कै ॥६३॥
तुमहिं सहित असवार बसह जब होइहहिं।
निरखि नगर नरनारि बिहँसि मुख गोइहहिं" ॥ ६४ ॥

बटु करि कोटि कुतर्क जथा रुचि बोलइ।
अचल सुता मन अचल बयारि कि डोलइ ? ॥ ६५ ॥
साँच सनेह' साँचि रुचि जो हठि फेरइ।
सावनसरित सिंधुरुख सूप सों घेरइ ? ॥ ६६ ॥
मनि बिनु फनि, जलहीन मीन तनु त्यागइ।
सो कि दोष गुन गनइ जो जेहि अनुरागइ ॥ ६७ ॥
करनकटुक बटु बचन बिसिष सम हिय हए।
अरुन नयन चढ़ि भृकुटि अधर फरकत भए ॥ ६८ ॥

बोली फिरि लखि सखिहि काँपु तन थरथर ।
"आलि ! विदा करु बटुहि वेगि, बड बरबर ॥ ६९ ॥
कहुँ तिय होहिं सयानि सुनहिं सिख राउरि ? ।
बौरेयि के अनुराग भइउँ बडि बाउरि ॥ ७० ॥
दोसनिधान, इसानु सत्य सबु भाषेउ ।
मेटि को सकइ सो आँकु जो बिधि लिखि राखेउ ॥७१॥
को करि बादु बिवादु बिषादु बढावइ ? ।
मीठ काह कवि कहहिं जाहि जोइ भावइ ॥ ७२ ॥
भइ बडि बार आलि कहुँ काज सिधारहि ।
बकि जनि उठहिं बहोरि, कुजुगुति सँवारहि ॥ ७३ ॥
जनि कहहिं कछु विपरीत जानत प्रीति रीति न बातकी ।
सिव साधु निंदकु मद अति जो सुनै सोउ बड पातकी" ॥
सुनि वचन सोधि सनेहु तुलसी साँच अविचल पावनो ।
भये प्रकट करुनासिंधु शंकर, भाल चंद्र सुहावनो ॥ ७४ ॥
सुन्दर गौर सरीर भूति भलि सोहइ ।
लोचन भाल बिसाल बदन मनु मोहइ ॥ ७५ ॥
सैलकुमारि निहारि मनोहर मूरति ।
सजल नयन हिय हरषु पुलक तनु पूरति ॥ ७६ ॥
पुन पुन करै प्रनाम, न आवत कछु कहि ।
'देखौं सपन कि सौतुख ससिसेखर, सहि !'' ॥ ७७ ॥
जैसे जनमदरिद्र महामनि पावइ ।
पेखत प्रगट प्रभाय प्रतीति न आवइ ॥ ७८ ॥
सफल मनोरथ भयउ गौरि सोहइ सुठि ।
घर ते खेलत मनहुँ अबहिं आई उठि ॥ ७९ ॥
देखि रूप अनुराग महेस भए बस ।
कहत बचन जनु सानि सनेह-सुधा-रस ॥ ८० ॥

"हमहिं आजु लगि कनउड काहु न कीन्हेउ।
पार्वती तप प्रेम मोल मोहिं लीन्हेउ ॥ ८१ ॥
अब जो कहहु सो करउँ बिलंब न यहि घरि।
सुनि महेस मृदु बचन पुलकि पाँयन परि ॥ ८२ ॥
परि पाँय सखिमुख कहि जनायो आप बाप अधीनता।
परितोषि गिरिजहि चले बरनत प्रीति नीति प्रबीनता ॥
हर हृदय धरि घर गौरि गवनी, कीन्ह बिधि मनभावनो।
आनन्द प्रेम समाज मंगलगान बाजु बधावनो ॥ ८३ ॥
सिव सुमिरे मुनि सात आइ सिर नाइन्हि।
कीन्ह संभु सनमानु जनम फल पाइन्हि ॥ ८४ ॥
"सुमिरहिं सकृत तुम्हहिं जन तेइ सुकृतीबर।
नाथ जिन्हहिं सुधि करिअ तिन्हहिं सम, तेइ हर" ॥८५॥
सुनि मुनिबिनय महेस परम सुख पायउ।
कथाप्रसंग मुनीसन्ह सकल सुनायउ ॥ ८६ ॥
"जाहु हिमाचल गेह प्रसंग चलायहु।
जो मन मान तुम्हार तो लगन लिखायहु ॥ ८७ ॥
अरुंधती मिलि मैनहिं बात चलाइहिं।
नारि कुसल इहि काजु काजु बनि आइहिं" ॥ ८८ ॥
"दुलहिनि उमा, ईस बर साधक ए मुनि।
बनिहिंअवसि यहु काज" गगन भइ अस धुनि ॥ ८९ ॥
भयउ अकनि आनन्द महेश मुनीसन्ह।
देहिं सुलोचन सगुन कलस लिए सीस न्ह ॥ ९० ॥
सिव सों कहे दिन ठाउँ बहोरि मिलनु जहँ।
चले मुदित मुनिराज गए गिरिबर पहँ ॥ ९१ ॥
गिरिगेह गे अति नेह आदर पूजि पहुनाई करी।
घरबात घरनि समेत कन्या आनि सब आगे धरी ॥

सुख पाइ बात चलाइ सुदिनु सोधाइ गिरिहि सिखाइ कै।
ऋषि सात प्रातहि चले प्रमुदित ललित लगन लिखाइ कै ॥६२॥

विप्रवृंद सन्मानि पूजि कुलगुरु सुर।
परेउ निसानहिं घाउ, चाउ चहुँ दिसि पुर ॥ ६३ ॥
गिरि, बन, सरित सिंध, सर सुनइ जो पायउ।
सब कहँ गिरिवर-नायक नेवति पठायउ ॥ ६४ ॥
धरि धरि सुन्दर वेष चले हरषित हिए।
कंचन चीर उपहार हार मनिगन लिए ॥ ६५ ॥
कहेउ हरषि हिमवान बितान बनावन।
हरषित लगीं सुआसिनि मंगल गावन ॥ ६६ ॥
तोरन कलस चँवर धुज विविध बनाइन्हि।
हाट पटोरन्हि छाय, सफल तरु लाइन्हि ॥ ६७ ॥
गोरी नैहर केहि विधि कहहुँ बखानिय।
जनु ऋतुराज मनोज-राज रजधानिय ॥ ६८ ॥

जनु राजधानी मदन की विरची चतुर विधि और ही।
रचना विचित्र विलोकि लोचन विथक ठौरहि ठौर ही॥
यहि भाति ब्याहु समाजु सजि गिरिराजु मगु जोवन लगे।
तुलसी लगन लै दीन्ह मुनिन्ह महेस आनँद-रंग-मगे ॥ ६६ ॥

बेगि बुलाइ विरंचि बँचाइ लगन तब।
कहेन्हि 'बियाहन चलहु बुलाइ अमर सब' ॥ १०० ॥
विधि पठए जहँ तहँ सब सिवगन धावन।
सुनि हरषहिं सुर कहहिं निसान बजावन ॥ १०१ ॥
रचहिं बिमान बनाइ सगुन पावहिं भले।
निज निज साजु समाजु साजि सुरगन चले ॥ १०२ ॥
मुदित सकल सिवदूत भूतगन गाजहिं।
सूकर, महिष, स्वान, खर बाहन साजहिं ॥ १०३ ॥

नाचहिं नाना रंग, तरंग बढ़ावहिं ॥
अज, उलूक, वृकनाद गीत गन गावहिं ॥ १०४ ॥
रमानाथ, सुरनाथ, साथ सब सुरगन ।
आये जहँ विधि संभु देखि हरषे मन ॥ १०५ ॥
मिले हरिहि हर हरषि सुभाषि सुरेसहिं ।
सुर निहारि सनमानेउ, मोदु महेसहिं ॥ १०६ ॥
बहु बिधि वाहन जान विमान बिराजहिं ।
चली बरात निसानु गहागह बाजहिं ॥ १०७ ॥

बाजहिं निसानं, सुगान नभ, चढि बसह विधुभूषन चले ।
बरषहिं सुमन जय जय करहिं सुर, सगुन सुभ मंगल भले॥
तुलसी बराती भूत प्रेत पिसाच पसुपति सँग लसे ।
गजछाल, व्याल, कपालमाल बिलोकि बर सुर हरि हसे ॥१०८॥

विबुध बोलि हरि कहेउ निकट पुर आयउ ।
आपन आपन साज सबहिं बिलगायउ ॥१०९॥
प्रमथनाथ के साथ प्रमथगन राजहिं ।
विबिध भाँति मुख, वाहन वेष बिराजहिं ॥११०॥
कमठ खपर मढ़ि खाल निसान बजावहिं ।
नरकपाल जल भरि भरि पियहिं पियावहिं॥१११॥
वर अनुहरति बरात बनी हरि हँसि कहा ।
सुनि हिय हँसत महेस, केलि कौतुक महा ॥११२॥
बड़ विनोद मग मोद न कछु कहि आवत ।
जाइ नगर नियरानि बरात बजावत ॥११३॥
पुर खरभर, उर हरषेउ अचलु अखंडल ।
परब उदधि उमगेउ जनु लखि विधुमंडल॥११४॥
प्रमुदित, गे अगवान, बिलोकि बरातहिं ।
भभरे, बनइ न रहत, न बनइ परातहि ॥११५॥

चले भाजि गज बाजि फिरहिं नहिं फेरत।
बालक भभरि भुलान फिरहिं घर हेरत ॥११६॥
दीन्ह जाइ जनवास सुपास किए सब।
घर घर बालक बात कहन लागे तब ॥११७॥
"प्रेत बेताल बराती, भूत भयानक।
बरद चढ़ा बर बाउर सबइ सुबानक ॥११८॥
कुसल करहि करतार कहहिं हम साँचिय।
देखब कोटि बियाह जियत जो बाँचिय" ॥११९॥
समाचार सुनि सोचु भयउ मन मैनहिं।
नारद के उपदेस कवन घर गे नहिं? ॥१२०॥

घरघाल चालक कलहप्रिय कहियत परम परमारथी।
तैसी बरेखी कीन्हि पुनि मुनिसात स्वारथ सारथी॥
उर लाइ उमहिं अनेक विधि, जलपति जननि दुख मानई।
हिमवान कहेउ इसान महिमा अगम निगम न जानई ॥१२१॥

सुनि मैना भइ सुमन, सखी देखन चलीं।
जहँ तहँ चरचा चलइ हाट चौहट गलीं ॥१२२॥
श्रीपति सुरपति, बिबुध बात सब सुनि सुनि।
हँसहिं कमलकर जोरि, मोरि मुख पुनि पुनि ॥१२३॥
लखि लौकिक गति संभु जानि बड़ सोहर।
भए सुन्दर सत कोटि मनोज मनोहर ॥१२४॥
नील निचोल छाल भइ, फनि मनिभूषन।
रोम रोम पर उदित रूपमय पूषन ॥१२५॥
गन भए मंगल-बेष मदन-मनमोहन।
सुनत चले हिय हरषि नारिनर जोहन ॥१२६॥
संभु सरद राकेस, नखतगन सुरगन।
जनु चकोर चहुँ ओर बिराजहिं पुरजन

गिरिवर पठए बोलि लगन बेरा भई।
मंगल अरघ पाँवडे देत चले लई ॥१२८॥
होहिं सुमंगल सगुन, सुमन बरषहिं सुर।
गहगहे गान निसान मोद मंगल पुर ॥१२९॥
पहिलिहिं पँवरि सुसामध भा सुखदायक।
इत विधि उत हिमवान सरिस सबलायक ॥१३०॥

मनि चामीकर चारु थार सजि आरति।
रति सिहाहिं लखि रूप, गान सुनि भारति ॥१३१॥
भरी भाग अनुराग पुलकतनु मुदमन।
मदनमत्त गजगवनि चलीं वर परिछन ॥१३२॥
वर बिलोकि बिधुगौर सु अंग उजागर।
करति आरती सासु मगन सुखसागर ॥१३३॥

सुखसिंधु मगन उतारि आरति करि निछावरि निरखि कै।
मगु अरघ बसन प्रसून भरि लेइ चली मंडप हरषि कै॥
हिमवान दीन्हेउ उचित आसन सकल सुर सनमानि कै।
तेहि समय साज समाज सब राखे सुमंडपु आनि कै ॥१३४॥

अरघ देइ मनिआसन वर बैठायउ।
पूजि कीन्ह मधुपर्क, अमी अँचवायउ ॥१३५॥

सपत ऋषिन्ह विधि कहेउ, बिलंब न लाइय।
लगन बेर भइ बेगि विधान बनाइय ॥१३६॥
थापि अनल हरबरहि बसन पहिरायउ।
आनहु दुलहिनि बेगि समउ अब आयउ ॥१३७॥
सखी सुआसिनि संग गौरि सुठि सोहति।
प्रगट रूपमय मूरति जनु जग मोहति ॥१३८॥
भूषन बसन समय सम सोभा सो भली।
सुखमा बेलि नवल जनु रूपफलनि फली ॥१३९॥

कहहु काहि पटतरिय गौरि गुनरूपहिं।
सिंधु कहिय केहि भाँति सरिस सर कूपहिं ॥१४०॥
आवत उमहिं बिलोकि सीस सुर नावहिं।
भये कृतारथ जनम जानि सुख पावहिं ॥१४१॥
बिप्र वेद धुनि करहिं सुभासिष कहि कहि।
गान निसान सुमन झरि अवसर लहि लहि ॥१४२॥
बर दुलहिनिहिं बिलोकि सकल मन रहसहिं।
साखोच्चार समय सब सुर मुनि बिहँसहिं ॥१४३॥
लोक-वेद विधि कीन्ह लीन्ह जल कुस कर।
कन्यादान सकलप कीन्ह धरनीधर ॥१४४॥
पूजे कुलगुरु देव, कलसु सिल सुभ धरी।
लावा होम विधान बहुरि भाँवरि परी ॥१४५॥
बन्दन बंदि, ग्रन्थिबिधि करि, धुव देखेउ।
भा बिवाह सब कहेउ जनम फल पेखेउ ॥१४६॥
पेखेउ जनम फल भा बियाह, उछाह उमगहिं दस दिसा।
नीसान गान प्रसून झरि तुलसी सुहावनि सो निसा ॥
दाइज बसन मनि धेनु धनु हय गय सुसेवक सेवकी।
दीन्हीं मुदित गिरिराज जे गिरिजहिं पियारी पेव की ॥१४७॥
बहुरि बराती मुदित चले जनवासहि।
दूलह दुलहिनि गे तब हास अवासहि ॥१४८॥
रोकि द्वार मैना तब कौतुक कीन्हेउ।
करि लहकौरि गौरि हर बड सुख दीन्हेउ ॥१४९॥
जुआ खेलावत गारि देहिं गिरिनारिहि।
अपनी ओर निहारि प्रमोद पुरारिहि ॥१५०॥
सखी सुवासिनि, सासु पाउ सुख सब बिधि।
जनवासहि बर चलेउ सकल मंगलनिधि ॥१५१॥
भइ जेवनार बहोरि बुलाइ सकल सुर।
बैठाये गिरिराज - धरम धरनी धुर ॥१५२॥

परुसन लगे सुवार, विबुध जन सेवहिं।
देहिं गारि वर नारि मोद मन भेरहिं ॥१५३॥
करहिं सुमंगलगान सुघर सहनाइन्ह।
जेइँ चले हरि दुहिन सहित सुर भाइन्ह ॥१५४॥
भूधर भोर बिदा करि साज सजायउ।
चले देव सजि जान निसान बजायउ ॥१५५।
सनमाने सुर सकल दीन्ह पहिरावनि।
कीन्हि बडाइ विनय सनेह-सुहावनि ॥१५६॥
गहि सिवपद कह सासु विनय मृदु मानवि।
गोरि सजीवनि मूरि मोरि जिय जानवि ॥१५७॥
भेंटि विदा करि बहुरि भेंटि पहुँचावहिं।
हुँकरि हुँकरि सु लवाइ धेनु जनु धावहिं ॥ १५८ ॥
उमा मातु-मुख निरखि नयन जल मोचहिं।
'नारि जनम जग जाय' सखी कहि सोचहिं ॥ १५६ ॥
भेंटि उमहिं गिरिराज सहित सुत परिजन।
बहु समुझाइ बुझाइ फिरे बिलखित मन ॥ १६० ॥
संकर गौरि समेत गए कैलासहि।
नाइ नाइ सिर देव चले निज बासहि ॥ १६१ ॥
उमा महेस बियाह उछाह भुवन भरे।
सबके सकल मनोरथ विधि पूरन करे ॥ १६२ ॥
प्रेमपाट पटडोरि गौरि-हर-गुन मनि।
मंगल हार रचेउ कवि मति मृगलोचनि ॥ १६३ ॥
मृगनयनि बिधु-बदनी रचेउ मनि मंजु मंगल हार सो।
उर धरहु जुवती जन बिलोकि तिलोक सोभा-सार सो ॥
कल्यान काज उछाह ब्याह सनेह सहित जो गाइ हैं।
तुलसी उमाशङ्कर प्रसाद प्रमोद मन प्रिय पाइ हैं ॥ १६४ ॥

पार्वती-मंगल

(टिप्पनियाँ)

१-शब्दार्थ—विनइ = वन्दना करके। गुरुहि = गुरु को। गुनि गनिहि = गुणि गण को, विद्वन्मण्डली को। गिरहि = गिरा अर्थात् सरस्वती को, कहीं कहीं गिरिहि भी पाठ है जिसका अर्थ है हिमालय को। गन (ण) नाथहि=गणेश को। हृदय आनि=हृदय में लाकर, ध्यान करके। भाथहि=तरकस को।

अर्थ—गुरु, गुणियों के समुदाय, सरस्वती, गणेश की वन्दना करके सीता और धनुष-तरकस धारी राम को हृदय में लाकर।

२-शब्दार्थ—गावउ = गाता हूँ। गौरि (री) = पार्वती। गिरीस (श) = गिरि + ईश = महादेव। नसावन = नाश करने वाला। पावन=पवित्र। भावन=भाने वाला,अच्छा लगने वाला।

अर्थ—पाप को नष्ट करने वाले, पवित्र, मुनियों के मन को अच्छा लगने वाले, सुहावने शिव-पार्वती के विवाह को गाता हूँ।

३-शब्दार्थ—कवित रीति = कविता करने का ढग। सुसरित = अच्छी नदी, गगा। अन्हवावउँ = स्नान कराता हू।

अर्थ—कविता करने की रीति मैं नहीं जानता और न कवि ही कहलाता हूँ। मैं तो महादेव की चरित्र-गगा में अपने मन को स्नान कराता हूँ।

४-शब्दार्थ—पर = पराया। अपवाद = निन्दा। विवाद = बहस। विदूषित = अपवित्र, कलकित। बानिहि = वाणी को। भवेश = भव + ईश ससार के स्वामी अर्थात् महादेव।

अर्थ—दूसरों की निन्दा तथा व्यर्थ बकवाद से जो मेरी वाणी अपवित्र हो गई है उसे महादेव पार्वती का कीर्त्तन करके पवित्र करता हूँ।

५-शब्दार्थ—जय सवत् = एक सवत् का नाम है जो १६४३ वि० के लगभग माना जाता है। गुरु दिन = बृहस्पतिवार। अस्विनि=अश्विनी नक्षत्र। मगल = पार्वती मगल। छिनु छिनु = क्षण-क्षण, पल पल।

अर्थ—जय नामक सवत् की फाल्गुन शुक्ला पचमी बृहस्पतिवार को अश्विनी नक्षत्र में मैंने इस ग्रन्थ पार्वती-मगल की रचना की। इसके सुनने से सबको क्षण क्षण में सुख होगा।

६-शब्दार्थ—गुन (ण) निधान = गुणों के कोष, महागुणी। हिमवान = हिमालय पर्वत। धरनिधर = धरणीधर, पहाड़। धुरधनि = धुरन्धर, श्रेष्ठ, कोइ कोई ध्रुव धन्य अर्थात् निश्चय रूप से धन्य भी अर्थ करते हैं। मैना=पार्वती की माता का नाम। तिभुवन = तीन लोक अर्थात् (१) आकाश, (२) पाताल और (३) पृथ्वी। घरनि = पत्नी। तियमनि (णि) = स्त्रियों में श्रेष्ठ, सती-शिरोमणि।

अर्थ—पर्वतों में श्रेष्ठ, गुणों का भण्डार हिमालय नामक पहाड़ है, इसके घर में मैना नामक सती शिरोमणि स्त्री है जो तीनों भवनों में विख्यात है।

७-शब्दार्थ—सुकृत = पुण्य। सराहिय = प्रशसा कीजिये। केहि=किस। तिन्हकर=उनका। जगजननि = जगज्जननी, जगदम्बा, पार्वती।

अर्थ—कहिये उनके पुण्य की किस प्रकार प्रशसा करें जिनके घर जगन्माता पार्वती ने जन्म लिया।

८-शब्दार्थ—मगल-खानि=महान मगलमयी, परम सौभाग्य शीला। भवानि (नी) = पार्वती। रिधि=ऋद्धि। सिधि = सिद्धि अर्थात् अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य,

ईशत्व और वशित्व। सम्पति = धन-दौलत। गिरिगृह = हिमालय के घर। नइ = नयी।

अर्थ—जब से मगलमूर्ति पार्वती प्रकट हुई तब ही से हिमालय के घर में नित नई ऋद्धि-सिद्धियाँ और सम्पत्तियों की प्राप्ति हो रही है।

९-शब्दार्थ —नव = नया। मोद = प्रसन्नता। नाग = साप, पहाड, नागलोक निवासी। अनुराग = प्रेम। भाग = भाग्य। निरखि = देखकर। लालहीं = लाड करते हैं। सित पाख = शुक्ल पक्ष। चन्द्रिका = चाँदनी, चन्द्रकला। चन्द्रभूषण = महादेव, क्योंकि उनके मस्तक में द्वितीया के चन्द्रमा का निवास बताया जाता है।

अर्थ—नित नये सब प्रकार के कल्याणकारी मगल होते हैं, मुनि लोग प्रसन्नता प्राप्त करते हैं। सुर, नर, नाग और ब्रह्मादि बडे प्रेम से उनके भाग्य की सराहना करते हैं। पिता-माता और प्यारे कुटुम्बी जन पार्वती को देखकर प्रसन्न होते और उन पर लाड प्यार करते हैं। ऐसा मालूम होता है मानो शुक्ल पक्ष में महादेव के ललाट की चन्द्रकला बढ़ रही हो अर्थात् पार्वतीजी उसी प्रकार बढ रही हैं जिस प्रकार द्वितीया का चन्द्रमा क्रमश वृद्धि को प्राप्त होता है।

१०-शब्दार्थ—कुँवरि = कुमारी पुत्री, पार्वती से मतलब है। गिरिजा=पर्वत से पैदा हुई-पार्वती। जुरिहि=मिले। अनुदिन = नित्यप्रति। लोचहिं=लालसा रखते हैं।

अर्थ—सियानी पुत्री को देख कर माता पिता को उसके विवाह की चिन्ता हुई और वह अभिलाषा करने लगे कि पार्वती के योग्य ही कोइ वर मिलै।

११-शब्दार्थ—मुदित=प्रसन्न होकर। पूजत भये=आदर सत्कार किया।

अर्थ—एक दिन पर्वतराज हिमालय के यहा नारदजी गये। हिमालय और मैना ने बड़ी प्रसन्नता से उनका स्वागत सत्कार किया।

१२-शब्दार्थ—उमहि=पार्वती को। ऋषि पगन=ऋषि के चरणों में। मेलत भइ=डाल दिया। आसिष=आशीर्वाद।

अर्थ—मैना ने पार्वती को बुला कर उन्हें नारदजी के चरणों में डाल दिया। मुनिजी ने मन में उन्हें प्रणाम किया और वचन से आशीर्वाद दिया।

१३-शब्दार्थ—काध=कधा। जान=जानता है। जोहइ=देखा है।

अर्थ—कुमारी पार्वती पिता के कन्धे से लगी खड़ी हुई बड़ी सुहावनी लगती हैं, उनके रूप का वर्णन नहीं किया जा सकता, जिसने उन्हें देखा है वही रूप-सौन्दर्य को जानता है।

१४-शब्दार्थ—सतिभाय=सद्‌भाव से। पुनि पुनि=वार-वार।

अर्थ—अत्यन्त स्नेह और सद्‌भाव से, वार-वार मुनि के पाँवों में पड कर, मैना ने बड़े विनम्र शब्दों में कहा-हे नारदजी! अब आप मेरी विनती सुनें।

१५-शब्दार्थ—तिहु काल=तीनों कालों में अर्थात् भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान। विचार विसा (शा) रद=ज्ञानी, विचारशील, बुद्धिमान।

अर्थ—नारदजी! आप तीनों भवनों और तीनों कालों में परम ज्ञानी हैं, आप कृपया पार्वती के योग्य कोइ वर बताइये।

१६-शब्दार्थ—चौदह भुवन=चौदह लोक अर्थात् भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महालोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक,

अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल ।
सरहना = सराहना, प्रशसा । राउरि=आपकी ।

अर्थ—नारदजी ने कहा-चौदह भुवनों में मैं जहाँ-जहाँ गया हूँ वहाँ वहाँ ही है हिमाचल ! मैंने तुम्हारी प्रशसा सुनी है ।

१७-शब्दार्थ—भूरि भाग = बड़ा भाग्यशाली । सरिस = समान । अगम (अगम्य) = पहुँच से बाहर, दुर्लभ । भयो विधि दाहिन=विधाता अनुकूल हो गया ।

अर्थ—पर्वतराज ! तुम बड़े बड़भागी हो, तुम्हारे समान कहीं कोई नहीं है । तुम्हारे लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है, सब सुलभ है । विधाता तुम्हारे अनुकूल है ।

१८-शब्दार्थ—बिरवा = पोधा । बिरचि = ब्रह्मा । बिरच्यौ= रचा, बनाया । मगला = पार्वती । मगलमयी = मगल से पूर्ण । विधि लोक = ब्रह्म लोक । चतुरानन = ब्रह्मा । बाउर = बातुल, पागल । बिबुध = देवता ।

अर्थ—विधाता के अनुकूल होने से तुम्हारे लिए सब सुगम है, यह सुनकर तुम नई चिन्ता (पार्वती के विवाह की) त्याग दो । ब्रह्मा ने पहले वर की रचना करके तब कल्याणमयी पार्वती को पैदा किया है ।

नोट—"वर प्रथम बिरवा बिरचि बिरची मगला मगल मइ" भी पाठ है । इसका अर्थ है, ब्रह्मा ने पहले वर रूपी वृक्ष लगा कर तब इस कल्याणमयी कन्या को पैदा किया है ।

देव लोक में आपकी चर्चा करते हुए बुद्धिमान ब्रह्मा ने कहा था कि हिमालय की कन्या के योग्य बावला वर है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि देवता भी उसकी वन्दना करते हैं ।

१६-शब्दार्थ—नारदी = नारदपन, नारद की लीलाओं से अभिप्राय है, नारदजी घुमा फिरा कर उलझन में डालने वाली अस्पष्ट बातें कहने के लिए प्रसिद्ध हैं। भा = हुआ।

अर्थ—मेरे मन में यही आता है कि वर बावला ही मिलेगा, इस समय नारद का नारदीपन देखकर पार्वती के हृदय में बड़ा आनन्द हुआ।

पार्वती के हार्दिक आनन्द का कारण यह था कि वह जैसा वर चाहती हैं वैसा ही वर नारद जी बता रहे हैं।

२०-शब्दार्थ—सहमे = सहम गये, डर गये। दम्पति = जोड़ा, पति पत्नी। लागि = लिए।

अर्थ—हिमालय और मेना नारदजी की बात सुनकर डर गये और उनके पाँवों में पड़कर कहने लगे कि हमारी जिन्दगी और सुख सम्पत्ति पार्वती के ही कारण है।

नारदजी की बात सुन कर पार्वती के माता पिता का डरना स्वाभाविक था क्योंकि अपनी पुत्री के लिए कोई बावला वर नहीं चाहता।

२१-शब्दार्थ—जतन (यत्न) = कोशिश। बाल बिधु भूषनु = महादेव, बाल बिधु अर्थात् द्वितीया के चन्द्रमा को मस्तक में धारण करने वाले।

अर्थ—नारदजी ! ऐसी कोई विधि बताइये जिससे यह दोष दूर हो (अर्थात् पार्वती को पागल पति न मिले)। इसके उत्तर में मुनिजी ने कहा—इस दोष को दूर करने वाले महादेवजी हैं।

२२-शब्दार्थ—अवसि = अवश्य। सुसाधन = अच्छी तरकीब। अवराधन = आराधना, पूजा।

अर्थ—अवश्य सिद्धि होगी, अच्छा अनुष्ठान साहस को सफल करता है। शिवजी का पूजन करोड़ों कल्पवृक्षों के समान है।

जिस प्रकार कल्पवृक्ष मनोवाछित फल प्रदान करता है उसी प्रकार शंभु भगवान् भी सब भक्तों को आशा पूरी करते हैं।

२३-शब्दार्थ—आस्रम = आश्रम, कैलास पर। मनुलाइ = तबियत लगा कर। ईश = स्वामी अवराधहिं = आराधना या सेवा करें।

अर्थ—तुम्हारे आश्रम में (अर्थात् कैलास पर्वत पर) अब भी शिवजी तपस्या कर रहे हैं। पार्वती से कह दीजिए कि वह वहाँ जाकर तथा मन लगा कर उनकी तपस्या करें।

२४-शब्दार्थ—सिखवत = शिक्षा देते हैं। भए = हुए।

अर्थ—हिमवान और मैना को 'दोष दलन' की विधि बता कर बड़ी प्रसन्नता पूर्वक मुनिजी विदा हुए और फिर माता-पिता अत्यन्त प्रेम से पार्वती को (शिव पूजा) का उपदेश देने लगे।

२५-शब्दार्थ—सजि समाज = सामग्री एकत्र करके। गिरिराज = पहाड़ों का राजा हिमालय। वदति = कहती है। जुवति = युवती (जवान औरत)। जिनि = निषेधात्मक, नकार। सिरजहिं = रचता है।

अर्थ—हिमाचल ने (पूजा की) सब सामग्री एकत्र करके पार्वती को दे दी। मैना कहने लगी—हे परमात्मा युवतियों (स्त्रियों) को कभी जन्म न दे।

यह बात मैना ने दुखी होकर इसलिए कही कि प्रथम तो कन्याओं के 'सियाने' होने पर उनके विवाह की चिन्ता करनी

पडती है, फिर वे अपने मा बाप को छोड कर दूसरों के घर चली जाती हैं।

२६-शब्दार्थ—भगति = भक्ति। भेवहिं = भिगोती है।

अर्थ—माता पिता के उपदेश से पार्वती शिवजी की सेवा करती हैं और बड़े आदर तथा अनुराग से उनकी भक्ति में अपना मन लगाये रहती हैं।

२७-शब्दार्थ—अनन्य गति = जिस की दूसरी गति न हो, एक ही पर आश्रय रखने वाला। हर = महादेव। जोवन सींव= योवन की सीमा अर्थात् भरपूर जवानी। छोभ (क्षोभ)= घबराहट, अस्थिरता। अछत = रहते हुए, मौजूदगी में। मनसिज = मनोज अर्थात् मन से उत्पन्न होने वाला कामदेव।

अर्थ—पार्वतीजी शिव-भक्ति में अपना मन लीन रखती हैं, वचन और कर्म से शिवजी के चरणों के सिवा वह और किसी की सेवा नहीं करतीं। गौरव, स्नेह और सकोच से भरी हुई सेवा का किस प्रकार वर्णन किया जाय। गुण रूप और पूर्ण योवन सम्पन्न सुन्दरी (पार्वती) को देख कर महादेव के हृदय में चचलता पैदा नहीं हुई। वही धीर हैं जो विकारों का कारण उपस्थित होते हुए भी कामदेव पर काबू किये रहते हैं।

२८-शब्दार्थ—भल समउ = सु अवसर। मनोज = कामदेव। सुरकाजु = देवताओं का काम।

अर्थ—देवताओं ने मौका पाकर कामदेव को बुलाया और उससे कहा कि अब तुम देवताओं का कार्य सिद्ध करो। कामदेव सब सामग्री एकत्र करके दौडा।

सुरकाज (देवताओं का काम) क्या था?—तारक नामक बली राक्षस ने देवताओं का नाक में दम कर रक्खा था, इस राक्षस की जीत का ठिकाना न था, अनेक देवताओं और

लोकपालों को पराजित कर चुका था। अन्त में देवता गण ब्रह्माजी के पास गये और उन्हें अपनी यह कष्ट-कथा कह सुनाई। ब्रह्माजी बोले—तारक बड़ा बलवान है, उसे शिवजी से उत्पन्न हुआ पुत्र ही नष्ट कर सकता है। परन्तु शिवजी अविवाहित हैं, उनका पुत्र कैसे हो? देवताओं ने देखा कि पार्वती शिवजी की सेवा में संलग्न हैं, अतएव इस समय कामदेव को उनके हृदय में कामवासना उत्पन्न करने के लिए भेजना चाहिए जिससे वह गिरिराज सुता से शीघ्र ही विवाह करलें और उनके पुत्र द्वारा तारक मारा जावे।

२६-शब्दार्थ—वामदेव=महादेव। वाम=उलटा। वरतेउ=बर्ताव किया। जय जग-मद=विश्व विजयी होने के अभिमान में। निदरेसि=निरादर किया है। फर=फल।

अर्थ—औघड़ बाबा वामदेव (महादेव) से कामदेव ने विपरीत व्यवहार किया। उसने अपने विश्व विजय के अभिमान में महादेव का अपमान किया, जिसका उसे फल भी भोगना पड़ा।

कामदेव जब अपनी अकड़ में वामदेव के पास गया तो वह उसका अभिप्राय समझ गये। तब उन्होंने अपना तीसरा नेत्र खोला जिससे कामदेव भस्मीभूत हो गया।

३०-शब्दार्थ—रति=कामदेव की स्त्री,। बिसूरति=बुरी सूरत, सिसकना=सुबकना, विलाप कर कर के धीरे धीरे रोना। मृदुशील=कोमल स्वभाव युक्त। नीलकण्ठ=नीले गले वाले अर्थात् महादेव। देव दानवों द्वारा समुद्र मथने से १४ रत्न निकले। उनमें से एक विष भी था। और रत्न तो सब देवताओं ने बाँट लिए विष को कौन ले? विष्णु के कहने पर शिवजी ने इस हलाहल का पान किया। महादेव बाबा वि-

हजम तो कर गये, परन्तु उनके गले की रंगत नीली पड गई। तभी से शिवजी 'नीलकण्ठ' भी कहलाने लगे।

अर्थ—कोमल स्वभाव वाले कृपासिन्धु शिवजी ने कामदेव की विधवा रति को मलिनावस्था में विलखते हुए देखा।

३१-शब्दार्थ—आसु (शु) तोष=शीघ्र प्रसन्न हो जाने वाले, महादेव। परितोष=धैर्य, तसल्ली। अनत=अन्यत्र, दूसरी जगह। गम=जाना।

अर्थ—शीघ्र सन्तुष्ट होजाने वाले महादेव ने वरदानपूर्वक रति को धीरज दिया और स्वयम् उदासीन होकर उस स्थान को छोड दूसरी जगह चले गये।

वरदान—शिवजी ने रति को यह वरदान दिया था कि कृष्णावतार होने पर कृष्णपुत्र अनिरुद्ध ही तेरा पति होगा।

३२-शब्दार्थ—कलपबेलि=कल्पलता। हिम=पाला। हई=नष्ट हुई, मारी गई। सुध-बुध=स्मृति और ज्ञान।

अर्थ—यह देखकर पार्वती प्रेम के कारण विकल होगई, उन्हें अपनी सुध बुध कुछ न रही। मानो वन में बढ़ती हुई कल्पलता पर कठोर तुषार पात हो गया, उसे पाला मार गया।

३३-शब्दार्थ—परिजन=परिवार के लोग। दारुन (ण)= कठोर।

अर्थ—यह समाचार सब सखियों ने घर जा जा कर कहे, जिससे माता पिता तथा कुटुम्बी जन घोर दुःख से जलने लगे।

३४-शब्दार्थ—उर=हृदय। विलपहिं=विलाप करते हैं।

हिमवान और मैना ने पार्वती को जाकर देखा और बडे प्रेम पूर्वक हृदय से लगा लिया। दोनों माता पिता दुखी होकर विपरीत विधाता को दोष देने लगे।

३५-शब्दार्थ—अभिमत = मन चाहा, इच्छित। स्रमु = श्रम, परिश्रम, महनत। साधक = अनुष्ठान करने वाला।

अर्थ—अगर देवता और ब्रह्मा मगल मार्ग में बाधा न डालें तो साधक लोग परिश्रम पूर्वक इच्छितफल प्राप्त कर लें।

३६-शब्दार्थ—निहोरत = बडे विनम्रभाव से निवेदन करते हैं। चन्द्रललाम = महादेव। अगमु = अगम्य, कठिन।

अर्थ—सब लोग साधना करने वालों की कठिनाइयों को सुना कर पार्वती से घर चलने के लिए कहने लगे। परन्तु कौन सुनता है? किसे घर सुहाता है? पावती का चित्त तो शिवजी को चाहता है। सबको समझा तथा मन को और भी अधिक दृढ बना कर, माता पिता की आज्ञा से पार्वती फिर कठिन तप करने लगीं। तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं गाकर उसका वर्णन कैसे करूँ।

३७-शब्दार्थ—पन = प्रण। हितु = हित्, हितैषी।

अर्थ—पार्वती की प्रतिज्ञा देखकर माता पिता और कुटुम्बी लोग वापस चले गये। जिसके प्रेम में चित्त लग गया वही अपना हितेषी है।

३८-शब्दार्थ—भोग = सुख। अहि = साँप। मनहु = मनसे।

अथ—पार्वती ने भोग (सुख) रोग के समान और लोग सर्प समूह समझ कर त्याग दिये और उन्होंने मुनियों के मन में भी न आने लायक तप से ध्यान लगाया।

३९-शब्दार्थ—बसन = कपडे। विभूपन (ण) = जेवर, गहने। परसत = स्पर्श करते हीं, छूते ही। वपु = शरीर।

अर्थ—जो कोमल शरीर वस्त्रों और आभूषणों का भार सहारने में भी मुरझला आता था, उसने शिवजी के लिए बडी कडी तपस्या शुरू करदी।

४०-शब्दार्थ—समयतिहुँ=तीनों समय। निमज्जन=स्नान। नेमु=नियम।

अर्थ—पार्वतीजी प्रात, मध्यान्ह और सायङ्काल तीनों समय स्नान कर शिवजी की पूजा करती हैं। उनके प्रेम, व्रत और नियम को देखकर सब सज्जन प्रशसा करते हैं।

४१-शब्दार्थ—निसि (शि)=रात्रि। वासरु=दिन। हरु=शिवजी।

अर्थ—पार्वती को न नींद आती है और न भूख-प्यास लगती है। उनके लिए रात-दिन समान हं। आखों में आसू रहते हैं, मुख में शिवजी के नाम का जाप है, शरीर पर पुलकावली और हृदय में शिवजी की भक्ति है।

४२-शब्दार्थ—कन्द=शकरकन्दादि की जड। असन=भोजन। पवनहिं=हवा को।

अर्थ—वह कन्द-मूल फल खाती हैं, कभी पानी और हवा से ही रह जाती हैं। सूखे वेल के पत्ते खा खा कर दिन विता रही हैं।

४३-शब्दार्थ—अपरना (अपर्णा)=अर्थात् विना पत्तों के रहने वाली पार्वती। जब पार्वती तपस्या में सलग्न थीं तो उन्होंने पर्ण (पत्ते) खाना भी छोड दिया था उसी समय से उनका अपर्णा नाम पडा। धवल=स्वच्छ, साफ। कल=सुन्दर।

अर्थ—जब पार्वती ने सूखे पत्ते खाने भी छोड दिए तो उनका नाम 'अपर्णा' होगया। उनके नवीन विमल सुयश से सब भुवन भर गये, वे सब लोकों में विख्यात होगई।

४४-शब्दार्थ—वहु=वधू, स्त्री। कहुँ=कहीं।

अर्थ—पार्वती की कठिन तपस्या देख कर मुनिश्रेष्ठ और मुनि-पत्नियां प्रशसाकरती हैं। ऐसा तप न कभी किसी ने कहीं देखा और न सुना।

४५-शब्दार्थ--फल चारि=चार फल अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष। कुधर कुमारि=कु (पृथिवी) धर (धारण करने वाले) अर्थात् पहाड की कन्या पार्वती। बटु=ब्रह्मचारी। पेपन=देखने को। ससि सेखर=शशि शेखर, शशि (चन्द्र) जिनके मस्तक में है। मनसहि=मन से ।

अर्थ--मुनि पत्नियां कहती हैं कि ऐसा तप किसी ने नहीं देखा, इस तप के योग्य तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों फलों का फल ही है। न जाना जाता है, और न कहती है कि पर्वत पुत्री पार्वती चाहती क्या हैं? फिर महादेवजी ब्रह्मचारी का वेश धारण कर पार्वती के प्रेम प्रण और नियम की जाँच करने के लिए गये। शिवजी ने मन से तो अपने को पार्वती के अर्पण कर दिया और वाणी से मधुर वचन बोलने लगे।

४६-शब्दार्थ--करुना (णा)=दया के समुद्र। खसि आयउ=, खिसिआ गये, चिढ़ गये।

अर्थ--पार्वती की दशा देख कर दयालु महादेव के हृदय में बडा दुःख हुआ, वे यह सोचकर हृदय में लज्जित होने लगे कि मेरा बडा कठोर स्वभाव है जो मेरे कारण भक्तों को ऐसी कठिन तपस्या करनी पडती है।

कहीं 'हृदय अस आयउ' भी पाठ है, अर्थात् हृदय में ऐसा आया, यह सोचा।

४७-शब्दार्थ--प्रससि=प्रशंसा करके। अमिय=अमृत।

अर्थ--पार्वती के कुल की प्रशंसा करके उनके माता-पिता को सब योग्य बताकर ब्रह्मचारी (वास्तव में शिवजी) अमृतमय वचन कहने लगे जो सुनने में बडे सुख देने वाले थे।

४८-शब्दार्थ—बिलगु न मानेउ=पराया मत समझना, बुरा मत मानना। सुभाव=स्वाभाविक रीति।

अर्थ—देवी! बुरा न मानना मैं कुछ प्रार्थना करता हूँ। अपने हृदय में सत्य समझना कि जो कुछ मैं कहता हू स्वाभाविक स्नेह से कहता हू।

४९-शब्दार्थ—कर=का। तीय रतन=स्त्री रुपीरत्न। रतनागर=रत्नाकर अर्थात् समुद्र। रत्नों की उत्पत्ति समुद्र से ही मानी जाती है।

अर्थ—तुमने जन्म लेकर ससार में अपने माता पिता का यश प्रकट कर दिया है। तुम ससार सागर में स्त्री-रत्न के रूप में पैदा हुई हो।

५०-शब्दार्थ—सूझइ=सूझता या दिखाई देता है।

अर्थ—मुझे तो ऐसा मालूम देता है कि ससार में तुम्हारे लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है। निष्काम भाव से तप करने वाला कष्ट को कष्ट नहीं समझता।

५१-शब्दार्थ—लरिकाइय=लडकपन। मेर=सुमेरु पर्वत।

अर्थ—अगर तुम पति के लिए तप कर रही हो तो यह तुम्हारा लडकपन है। यदि पारस पत्थर घर ही में मिल जाय तो सुमेरु पर्वत पर जाने की क्या आवश्यकता है।

प्रसिद्ध है कि पारस पत्थर से लोहा सोना हो जाता है, और वह सुमेरु पर्वत पर पाया जाता है।

५२-शब्दार्थ—सुधा=अमृत। कलेस=क्लेश, कष्ट।

अर्थ—मेरी समझ में तो तुम अकारण ही कष्ट उठाती हो। क्या अमृत रोगी को चाहता है, क्या रत्न राजा को चाहता है। अर्थात् जिस प्रकार अमृत और रत्न की प्राप्ति के लिए रोगी और राजा प्रयत्न करते हैं, उसी तरह तुम्हारे पाने के

लिए तो दूसरों को ही कोशिश करनी चाहिए, तुम व्यर्थ क्यों उद्योग कर रही हो।

५३-शब्दार्थ—सखी मुख = सखी की ओर मुंह करके।

अर्थ—पार्वती के तप का कारण ब्रह्मचारी की समझ में न आया और वह हिम्मत हार गया। यह प्यारा वचन सुनकर पार्वती ने सखी के मुख की ओर देखा।

५४-शब्दार्थ—रख = सकेत। रावरो = आपका। मुरुखाई = मूर्खता।

अर्थ—जब पार्वती ने सखी की ओर देखा तो उसने उसका सकेत पाकर ब्रह्मचारी को तप का कारण बताया और कहा पार्वती शिवजी के लिए तप कर रही है। यह सुनकर ब्रह्मचारी ने हसते हुए कहा—'बडी मूर्खता की बात है।' जिसने तुम्हें ऐसा उपदेश दिया है कि "कष्टपूर्वक बावले वर को वरना" मैं तुम्हारी स्वाभाविक हित कामना से कहता हूं, कि वह तुम्हारा कट्टर शत्रु है।

५५-शब्दार्थ—रीझहु = रीझना, मुग्ध होजाना। वरु = वर, दूल्हा। अकुलीनहि = घटिया खानदान को। अगुन = गुणहीन। अमान = मान रहित। मातु पितु हीनहि = अजन्मा, जो कभी माता पिता से पैदा नहीं हुआ।

अर्थ—कहो क्या सुन कर तुम अकुलीन, गुणहीन, मान हीन, जाति हीन और माता पिता विहीन वर पर रीझ गई हो।

५६-शब्दार्थ—भव = महादेव, ससार। चिता = श्मशान से मतलब है। जोवहिं = देखते हैं।

अर्थ—महादेव भीख मागकर खाते और श्मशान में सोते" जहाँ नगे पिशाच नाचते और पिशाचिनी उन्हें देखती हैं

५७-शब्दार्थ—छार (क्षार) = राख । सरोष = क्रोधी। जटिल=जटाधारी ।

अर्थ—वे भाग धतूरे का आहार करते हैं और शरीर से राख लपेटे रहते हैं । जोगी जटाधारी और क्रोधी हैं भोग उन्हें अच्छे नहीं लगते ।

५८-शब्दार्थ—सुपपच = महादेव । ति (त्रि) लोचन = महादेव । फुर = सत्य । काम मद-मोचन = कामदेव का मान मर्दन करने वाले शङ्कर भगवान् ।

अर्थ—हे अच्छे मुँह और अच्छे नेत्र वाली ! महादेव के पाच मुख और तीन आखें हैं । वामदेव (अर्थात् टेढे या उलटे देवता) उनका नाम है, जो ठीक ही है । वह कामदेव का मान मर्दन करने वाले हैं ।

५६-शब्दार्थ—वर = श्रेष्ठ, दूलह । कपाल = खोपडी । गज= हाथी । व्याल = साप ।

अर्थ—महादेव में वर बनने योग्य कोई गुण नहीं है, दूषण करोडों हैं । आदमी की खोपडी, हाथी की खाल, सप और विष उनके भूषण हैं ।

६०-शब्दार्थ—अमगल = अशुभ ।

अर्थ—कहा तुम्हारा गुण, शील और सुन्दर सरूप और कहा उनका अत्यन्त डरावना और अमगल वेश ।

६१-शब्दार्थ—ससिकलहि = चन्द्रकला को । रौरेहि = आपकी । वरिय = वरिये, विवाह कीजिए ।

अर्थ—जो महादेव चन्द्रकला को प्रसन्न रखने के लिए चिन्ता किया करता है, वह तुम्हारी प्रसन्नता की क्या चिन्ता करेगा । मेरा कहना मन में धर कर (अर्थात् मेरी बात मानकर) उस बावले वर को मत वरो ।

तात्पर्य यह है कि महादेव चन्द्रकला को बहुत प्यार करते हैं, तुम्हारे ऊपर प्रेम न करेंगे। अर्थात् शशिकला रूप एक सपत्नी या सवति भी है।

६२-शब्दार्थ—हेरि = विचार कर। सिख = शिक्षा, सीख।

अर्थ—हृदय में सोचकर हठ छोड दो, हठ मे दु ख पाओगी और विवाह के वक्त मेरी शिक्षा को याद कर पछताओगी।

६३-शब्दार्थ—जनेत = बारात। जमधारि = यमराज की सेना। अजिन = खाल। दुकूल = रेशमी वस्त्र। माहुर = विष।

अर्थ—तुम उस समय पछताओगी, जब भूत, प्रेत, और पिशाच सज सज कर बारात में आवेंगे। उस बारात को यम की सेना के समान समझकर सब नर-नारी भाग चलगे। जब महादेव के ओढ़ने की हाथी की खाल और तुम्हारे रेशमी वस्त्र को मिलाकर सखी गाठ लगावेंगी, तब वह मुँह मोडकर हँसेगीं। उस समय कोइ स्पष्ट और कोई हृदय में कहेंगी कि अमृत और विष घोलकर मिलाया जा रहा है।

६४-शब्दार्थ—बसह=बैल, नादिया। गोइहहिं=छिपा लेंगे।

अर्थ—तुम्हारे सहित जब महादेव बैल पर सवार होंगे तो उसे देख कर नगर के स्त्री-पुरुष हँस कर मुह छिपा लेंगे।

६५-शब्दार्थ—अचल = निश्चल, पहाड। सुता = पुत्री। बयारि = वायु, हवा।

अर्थ—ब्रह्मचारी करोडों कुतर्क कर यथारुचि बोलता रहा, परन्तु अचल (पहाड) सुता पार्वती के अचल मन को हवा कैसे हिला सकती थी।

६६-शब्दार्थ—सावन सरित = श्रावण के महीने की बढ़ी हुई नदी। सिन्धु रुख = समुद्र की ओर मुँह करने वाली।

अर्थ—सच्चे प्रेम और सच्ची रुचि को जो आग्रहपूर्वक पलटने की कोशिश करता है। मानो वह समुद्र की ओर जाने वाली श्रावण की नदी को सूप से रोकना चाहता है।

६७–शब्दार्थ—फनि (णि)=सर्प।

अर्थ—मणि के बिना सप और जल के बिना मछली शरीर त्याग देते हैं उसी प्रकार जो जिस पर प्रेम करता है वह उसके गुण-दोषों को नहीं गिनता।

६८-शब्दार्थ—करन कटु=कर्णकटु, कानों को अच्छा न लगने वाले। विसिख=विशिख, वाण। हए=हने, लगे। अरुण=लाल। अधर=ओठ।

अर्थ—ब्रह्मचारी के कर्णकटु वचन पार्वती के हृदय में वाण के समान लगे, उनके नेत्र लाल होगये, भौहें चढ गईं और ओठ फड़कने लगे।

६९–शब्दार्थ—आलि=सखी। बरबर=बड़बड़ाने वाला।

अथ—क्रोध से पार्वती का शरीर थर थर काँपने लगा और उन्होंने सखी की ओर देख कर कहा–सखी ब्रह्मचारी को शीघ्र विदा करो, बड़ा बकवादी है।

७०–शब्दार्थ—सयानि=चतुर। बौरेहि=पागल को।

अथ—पावती ने ब्रह्मचारी से कहा—जहाँ चतुर स्त्रियाँ हों वहां जाओ, वे ही तुम्हारी शिक्षा को सुनेंगी मैं तो उस बावले के प्रेम में ही बड़ी बावली हो गई हूँ।

७१–शब्दार्थ—दोष-निधान=दूषणों का भण्डार। ईसानु=ईशान, शिवजी। आकु=अंक, लेख।

अर्थ—शिवजी दोषों के भण्डार हैं, आपने ठीक कहा है, परन्तु जो अंक ब्रह्मा ने लिख रक्खे हैं, उन्हें कौन मेट सकता है।

७२-शब्दार्थ—विषादु = रंज, दु ख। कवि = पंडित, विद्वान् कविता करने वाला।

अर्थ—तुम्हारे साथ बहस करके कौन झगड़ा बढ़ावे। कवि मीठा किसे कहते हैं? जो जिसको अच्छा लगे-उसे।

७३-शब्दार्थ—बार = देर। बहोरि = फिर। कुजुगति = कु युक्ति, बुरी तदबीर।

अर्थ—बहुत देर हो गई, कहीं सखी अपने काम पर न चली जाय और यह ब्रह्मचारी बुरी युक्ति सोच कर फिर न बकने लगे।

७४-शब्दार्थ—सोधि = शोध कर जाच पड़ताल करके। पावनो = पावन, पवित्र।

अर्थ—यह प्रीति की रीति या बात करने का ढग नहीं जानता इसलिए कहीं फिर कुछ न कह उठे। शिव और साधु की निन्दा करने वाला बड़ा मतिमन्द होता है और जो उस निन्दा को सुने वह भी बड़ा पातकी है। पार्वती की बातें सुन तथा उनके सत्य, अटल तथा पवित्र प्रेम की परीक्षा करके, तुलसीदासजी कहते हैं, ललाट पर चन्द्रमा को सुशोभित किए हुए दया सागर शङ्कर भगवान् प्रकट हुए।

७५-शब्दार्थ—भूति = विभूति, राख। वदन = मु ह।

अर्थ—शिवजी के सुन्दर गोरे शरीर पर लिपटी हुई राख (विभूति) बड़ी सुहावनी मालूम देती है। सुन्दर नेत्र, ऊँचा ललाट और मु ह मन को मोहता है।

७६-शब्दार्थ—सै (शै) ल = पहाड़। पुलक = रोमाच।

अर्थ—उस मनोहर मूर्ति को देखकर पार्वतीजी की आँखों में आसु आगये, हृदय हर्ष से भर गया और शरीर पुलकायमान हो गया।

७७-शब्दार्थ—सौंतुख=सचमुच, साक्षात। सहि=वस्तुत।

अर्थ—वह बार-बार प्रणाम करने लगीं और कुछ कहते न बन पडा। वह सोचने लगीं कि मैं यह स्वप्न देख रही हूँ या वास्तव में साक्षात् शिवजी ही प्रकट हुए हैं।

७८-शब्दार्थ—महामनि (णि)=चिन्तामणि। कहते हैं कि इस दिव्य मणि से जो मागा जाय वही प्राप्त हो जाता है। प्रतीति=विश्वास। पेखत=देखते हुए।

अर्थ—जिस प्रकार जन्म के दरिद्री को चिन्तामणि मिल जाने पर भी विश्वास नहीं होता कि यह चिन्तामणि ही है, उसी प्रकार पावती की दशा है, वह सामने साक्षात् महादेव को देख कर भी स्वप्न होने की कल्पना कर रही है।

७६-शब्दार्थ—सुठि=सुन्दर, अत्यन्त।

अर्थ—मनोरथ सफल हुआ। पार्वती सुन्दर दिखाई देने लगीं। ऐसा मालूम हुआ मानो वह अभी घर से खेलते खेलते चली आई हैं।

८०-शब्दार्थ—सनेह सुधा रस=प्रेम रूपी अमृत के रस में।

अर्थ—पार्वती का सौन्दर्य तथा प्रेम देख कर महादेवजी उनके वशीभूत हो गये और प्रेमामृत में सान कर वचन कहने लगे।

८१-शब्दार्थ—आजु लगि=आज तक। कनउड=कनौडा, कृतज्ञ=आभारी।

अर्थ—हमें आज तक किसी ने अपना अहसानमन्द नहीं बनाया, परन्तु पावती के तप तथा प्रेम ने हमें मोल ले लिया।

अर्थ—शिवजी ने कहा अब जो कहो सो मैं करूँ, इस घडी विलम्ब न होगा। महादेव के मधुर वचन सुनकर पार्वती उनके पाँवों में गिर पडीं।

८२-शब्दार्थ—घरि=घडी, समय।

अर्थ—पार्वती ने महादेव के चरणों में पड कर सखी द्वारा अपने को पिता के अधीन बताया। महादेवजी पार्वती को सान्त्वना देते तथा उनकी प्रीति, नीति पटुता का वर्णन करते हुए चले गये!

८३-शब्दार्थ—प्रवीन (ण) ता = चतुराई।

शिवजी को हृदय में धारण कर पार्वती अपने घर गई। फिर ब्रह्मा ने दोनों का मनोरथ ही सफल किया। सारा समाज आनन्द और प्रेम से मगलगान करने लगा तथा बधाए बजने लगे।

८४-शब्दार्थ—मुनिसात = सात मुनि, सप्तर्षि अर्थात् कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गोतम, यमदग्नि और वसिष्ठ। सनुमान = सम्मान = आदर।

शिवजी ने सप्तर्षियों का स्मरण किया उन्होंने आकर शिवजी के चरणों में सिर झुका दिये। महादेवजी ने उनका आदर-सत्कार किया, इस प्रकार ऋषियों ने अपना जन्म सफल किया।

८५-शब्दार्थ—सकृत = एक बार। सुकृति=पुण्यात्मा, शुभ कर्म करने वाला। वर=श्रेष्ठ।

अर्थ—महादेवजी! आपको जो एक बार भी स्मरण करते हैं वही पुण्यात्माओं में श्रेष्ठ हैं और जिनकी आप सुधि लेते हैं उनके समान तो वह स्वयम् ही हैं, अर्थात् ससार म उनकी कोइ समानता नहीं कर सकता।

८६-शब्दार्थ—कथा प्रसग = कथा का हाल।

अर्थ—सातों ऋषियों की विनती सुनकर महादेव जी को बड़ा आनन्द हुआ और फिर उन्होंने मुनियों को सारी कथा (पार्वती जी के वरदान और उनकी तपस्या) कह सुनाई।

८७-शब्दार्थ—गेहु=घर। लगन=लग्न।

अर्थ—महादेवजी ने सप्त ऋषियों से कहा कि आप लोग हिमवान के घर जायँ और विवाह की चर्चा चलावें और अगर आपकी समझ में आ जाय तो लग्न पत्रिका लिखा लें।

८८-शब्दार्थ—अरुन्धती = वशिष्ठजी की स्त्री।

अर्थ—अरुन्धती (वशिष्ठ की पत्नी) मैना से मिल कर बात चीत करेंगी। स्त्रियाँ इस काम में कुशल होती हैं, काम बन जायगा।

८९-शब्दार्थ—गगन=आकाश। धुनि=ध्वनि, आवाज, वाणी।

अर्थ—दुलहिन पार्वती, दूलह महादेव और काम साधने वाले सप्तर्षि बस यह काम अवश्य बन जायगा ऐसी आकाश वाणी हुई।

९०-शब्दार्थ—अकनि = आकर्ण्य, कर्णगत करके, सुन कर। सुलोचनि = अच्छी आंखों वाली।

अर्थ—आकाशवाणी सुन कर महादेवजी तथा सात ऋषियों को बड़ा हर्ष हुआ और शीश पर भरे कलश धरे हुए सुन्दर नेत्रों वाली स्त्रियों ने और भी शकुन बना दिया।

९१-शब्दार्थ—ठाउँ = स्थान। पहँ = पर, पास।

अर्थ—महादेवजी को फिर आकर मिलने का दिन और स्थान बता कर सप्तऋषि प्रसन्न हो कर हिमाचल के पास गये।

९२-शब्दार्थ—सोधाइ = शोधवा कर ठीक कराके। पहुनाइ = मेहमानदारी। ललित = सुन्दर। घर बात=घरेलू बात।

अर्थ—सातो ऋषि हिमाचल के घर गये। वहां उनका बड़े प्रेम से स्वागत सत्कार तथा आतिथ्य हुआ। गिरिराज ने कन्या सहित स्त्री को ऋषियों के सामने उपस्थित किया और अपनी सब घरेलू बातें भी उनसे कह दीं।

(मूल में 'घरवात' पाठ है। किसी ने इसका अर्थ घर की सामग्री किया है और कोइ घरेलू बातचीत भी अर्थ करते हैं। किसी किसी का यह भी विचार है कि कदाचित् पाठ 'घरजार' हो।)

हिमालय के स्वागत से सुख पाकर ऋषियों ने विवाह की चर्चा चलाई, अच्छा दिन निश्चय करके हिमाजय को उसकी सूचना दी तथा सुन्दर लग्नपत्रिका लिखा कर सातो ऋषि प्रात काल बड़े प्रसन्न हो कर चले।

९३-शब्दार्थ—वृन्द=समुदाय। निसाननि=नगाड़ों पर। धाउ परेउ=चोट पड़ी।

अर्थ—हिमालय ने ब्राह्मणों का आदर कर कुल-गुरु और देवताओं की पूजा की। नगाड़ों पर चोट पड़ी, और नगर में चारों ओर उत्साह ही उत्साह दिखाई देने लगा।

९४-शब्दार्थ—सिन्धु=समुद्र। गिरिवर नायक=श्रेष्ठ पहाड़ों का नायक, हिमालय।

अर्थ—पहाड़, वन, नदी, समुद्र, तालाव जिसको भी सुन पाया, सब को पर्वतराज ने निमन्त्रण देकर बुलाया।

९५-शब्दाथ—कचन=सोना। चीर=कपड़ा। उपहार=भेंट।

अथ—सुन्दर वेश धारण कर तथा भेंट के लिए सोना, वस्त्र, हार, मणिया लेकर सब प्रसन्न मन चले।

९६-शब्दार्थ—वितान=चदोवा। सुवासिनि=सौभाग्य वती स्त्रियाँ।

अथ—हिमवान ने खुश हो कर चदोवा (मण्डप) बनाने के लिए कहा और सोभाग्यवती स्त्रिया प्रसन्न मन हो मगल गान करने लगीं।

अर्थ—ब्रह्माजी ने जहाँ तहाँ शिवजी के गणों को दूत बना कर भेजा। विवाह-वार्त्ता सुनकर सब प्रसन्न हुए और नगाड़े बजाने को कहा।

१०२-शब्दार्थ—विमान = हवा या आकाश में उड़ने वाले, व्योमयान या वायुयान। सगुन (शकुन) = शुभ सूचक चिह्न।

अर्थ—देवतागण अपने अपने विमानों को सजाते हैं, उन्हें अच्छे शकुन मिलते हैं। वे अपनी अपनी मण्डली सजाकर (महादेवजी के विवाह में सम्मिलित होने के लिए) चले।

१०३-शब्दार्थ—गाजहिं = गरजते हैं। सूकर = सूअर। महिष = भैंसा। स्वा (श्वा) न = कुत्ता। खर = गदहा। बाहन = वहन करने वाली अर्थात् सवारी।

अर्थ—शिवजी के सब दूत भूत प्रसन्न होकर गरजते हैं, और सूअर, भैंसा, कुत्ता, गदहा आदि की सवारियों को सजाते हैं।

१०४-शब्दार्थ—नाना = अनेक। अज = बकरा। वृक = भेड़िया नाद = ध्वनि।

अर्थ—शिवजी के गण भाँति भाँति का नाच नाचते हैं, आनन्द की उमग में लीन हैं। बकरा, उल्लू, भेड़िया आदि की बोलियों में गीत गा रहे हैं।

१०५-शब्दार्थ—रमानाथ = लक्ष्मीपति विष्णु। सुरनाथ = इन्द्र।

अर्थ—विष्णु, इन्द्र तथा सब देवता उस स्थान पर पहुँचे जहाँ ब्रह्मा और महादेव थे। मनही मन उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई।

१०६-शब्दार्थ—हरिहि = विष्णु को। सुभाषि = अच्छी तरह बोलकर।

९७-शब्दार्थ—तोरन (ण)=वन्दनवार। चँवर=चमर। धुज=ध्वजा,पताका। हाट=बाजार। पटोरन्हि=रेशमी कपडे। सफलतर=फलदार वृक्ष। लाइन्ह=लगाया, रोपा।

अर्थ—अनेक प्रकार के बन्दनवार, कलश, चवर, ध्वजा पताका बनाए गये। दुकानों को रेशमी वस्त्रों से मढ़कर फलदार वृक्ष लगाये गये।

९८-शब्दार्थ—नेइर=पीहर, ग्यौसाल, मायका। ऋतुरान=वसन्त।

अर्थ—पार्वती के पीहर (की शोभा) का वर्णन किस प्रकार करूं मानो वह वसन्त और कामदेव की राजधानी बना हुआ है।

९९-शब्दार्थ—मदन=कामदेव। विथक=थकजाते हैं। मगु=माग। जोवन लगे=जोहने लगे, प्रतीक्षा करने लगे। मगे=मगन हुए।

अर्थ—मानो कुशल ब्रह्मा ने कामदेव की दूसरी राजधानी बनादी है। स्थान स्थान पर उसकी विचित्र सजावट को देख कर आँख थक जाती है। इस प्रकार विवाह की सामग्री सजाकर गिरिराज बारात की प्रतीक्षा करने लगे। तुलसीदासजी कहते हैं कि उधर सप्तऋषियों ने लग्न जाकर दी तो महादेवजी बडे प्रसन्न होगये।

१००-शब्दार्थ—पठाइ=पढ़वाई। अमर=देवता।

अर्थ—ब्रह्मा को शीघ्र बुलाकर शिवजी ने लग्न पढ़वाई और कहा कि सब देवताओं को बुलाकर विवाह के लिए चलिए।

१०१-शब्दार्थ—सिवगन=शिवजी के गण अर्थात् भैरव, नन्दी, वीरभद्र आदि। धावन=दूत। जन=सेवक, गण।

अर्थ—ब्रह्माजी ने जहां तहां शिवजी के गणों को दूत बना कर भेजा। विवाह-वार्त्ता सुनकर सब प्रसन्न हुए और नगाडे बजाने को कहा।

१०२-शब्दार्थ—विमान = हवा या आकाश में उड़ने वाले, व्योमयान या वायुयान। सगुन (शकुन) = शुभ सूचक चिह्न।

अर्थ—देवतागण अपने अपने विमानों को सजाते हैं, उन्हें अच्छे शकुन मिलते हैं। वे अपनी अपनी मण्डली सजाकर (महादेवजी के विवाह में सम्मिलित होने के लिए) चले।

१०३-शब्दार्थ—गाजहिं = गरजते हैं। सूकर = सूअर। महिष = भैंसा। स्वा (श्वा) न = कुत्ता। खर = गदहा। वाहन = वहन करने वाली अर्थात् सवारी।

अर्थ—शिवजी के सब दूत भूत प्रसन्न होकर गरजते हैं, और सूअर, भैंसा, कुत्ता, गदहा आदि की सवारियों को सजाते हैं।

१०४-शब्दार्थ—नाना = अनेक। अज = बकरा। वृक = भेड़िया नाद = ध्वनि।

अर्थ—शिवजी के गण भाँति भाँति का नाच नाचते हैं, आनन्द की उमंग में लीन हैं। बकरा, उल्लू, भेड़िया आदि की बोलियों में गीत गा रहे हैं।

१०५-शब्दार्थ—रमानाथ = लक्ष्मीपति विष्णु। सुरनाथ = इन्द्र।

अर्थ—विष्णु, इन्द्र तथा सब देवता उस स्थान पर पहुंचे जहा ब्रह्मा और महादेव थे। मनही मन उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई।

१०६-शब्दार्थ—हरिहि = विष्णु को। सुभाषि = अच्छी तरह बोलकर।

अर्थ--महादेवजी विष्णुजी से, प्रसन्न होकर मिले, इन्द्र से बड़ी अच्छी तरह वार्त्तालाप किया। देवताओं को देखकर उनका सम्मान किया, महादेवजी को बड़ी खुशी हुई।

१०७-शब्दार्थ--वाहन = घोड़ा, बैल ऊँट आदि सवारी। जान = यान रथ पालकी आदि सवारी। गहगहा=ज़ोर से।

अर्थ--नाना प्रकार के वाहनों और यानों (सवारियों) में बैठकर बारात चली और बड़े जोर से नगाड़े बजने लगे।

१०८-शब्दार्थ--विधु भूषण = शिवजी। सुमन = फूल। पशुपति = महादेव। कपाल माल = मुण्ड माला। व्याल = साँप।

अर्थ--नगाड़े बजते हैं, आकाश में सुन्दर गाना होता है। बैल पर चढ़कर महादेवजी जारहे हैं। फूल बरसते हैं, देवता जय घोष करते हैं और शुभ तथा मंगलकारी शकुन होते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि भूत, प्रेत, पिशाच बराती पशुपति शिवजी के साथ शोभा देते हैं। हाथी की खाल, साँप तथा मुण्डमाला देख कर देवता तथा विष्णुजी हँस पड़े।

१०९-शब्दार्थ--विबुध = देवता।

अर्थ--देवताओं को बुलाकर विष्णु ने कहा कि अब हम नगर के निकट आगये हैं, अपनी अपनी मण्डली सब अलग अलग करलो।

११०-शब्दार्थ--प्रमथ = शिवजी के गण विशेष। प्रमथ नाथ = शङ्कर महादेव। राजहिं = सुहावने लगते हैं।

अर्थ--महादेव के साथ भूतों का दल सुशोभित हो रहा है। भाँति भाँति के मुँह, सवारिया और वेश दिखाई देते हैं।

१११-शब्दार्थ--कमठ = कछुआ। खपर = खप्पर।

अर्थ—कछुआ के खप्पर को खाल से मढ़कर नगाड़ा बजा रहे हैं और मनुष्यों की खोपड़ियों में जल भर कर पीते-पिलाते हैं।

११२-शब्दार्थ—अनुहरति = अनुरूप, योग्य। केलि = क्रीडा, खेल। कौतुक = तमाशा।

अर्थ—विष्णुजी ने हँस कर कहा कि वर के योग्य ही यह बरात बनी है। यह सुन कर महादेव मन ही मन हँसते हैं। खूब खेल तथा तमाशा होता है।

११३-शब्दार्थ—विनोद = आनन्द।

अर्थ—बड़ा हँसी मजाक हो रहा है, मार्ग की प्रसन्नता कहते नहीं बन पड़ती। बाजा बजाते बजाते बारात (हिमवान के) नगर के पास आ पहुँची।

११४-शब्दार्थ—खरभर = खलबली। अचलु अखण्डल = हिमाचल। परव = पर्व, पूर्णिमाको। उदधि = समुद्र। उमगेउ = उमड़ा। बिधु मण्डल = चन्द्र मण्डल, चन्द्रमा का घेरा।

अर्थ—नगर में खलबली पड़ गई। हिमाचल का हृदय हर्ष से भर गया। मानो समुद्र पूर्णिमा में चन्द्र-मण्डल देख कर उमड़ पड़ा हो।

११५-शब्दार्थ—प्रमुदित = अति प्रसन्न। अगवान = अगवानी करना, आगे बढ़कर स्वागत सत्कार करना। भभरे = भयभीत होगये, डरगये। परातहिं=भागते।

अर्थ—अगवानी के लिए लोग बड़े खुश होकर गये परन्तु बारात देख कर घबरा गये। अब न उनसे भागते बनता है और न ठहरते।

११६-शब्दार्थ—बाजि=घोडा। हेरत = देखते, तलाश करते।

अर्थ—हाथी घोड़े बरात को देख कर भाग चले, वे लौटाने से भी नहीं लौटते। बालक भी घबरा कर (रास्ता) भूल गये हैं और अपने घरों को तलाश करते फिरते हैं।

११७-शब्दार्थ—जनवास=बारात ठहरने का स्थान। सुपास=सुभीता।

अर्थ—बारात को जनवासा जाकर दिया और सब सुभीता कर दिया। घर घर में बालक बारात की चर्चा करने लगे।

११८-शब्दार्थ—बैताल=प्रेता के ढग की एक नीच कोटि विशेष। बरद=वृषभ, बैल। सुगानक=बढ़िया बाना, अच्छा सामान।

अर्थ—भयानक प्रेत भूत, बैताल बराती हैं। बैल पर बावला वर चढ़ा है। सबही बानिक ठीक बना है।

११९-शब्दार्थ—करतार=ब्रह्मा। बाँचिय=बचेंगे।

अर्थ—सब लोग कहते हैं विधाता मगल करे। हम सब कहते हैं, अगर (इस भयङ्कर बरात से) जीते बच रहे तो करोड़ों विवाह देखेंगे।

१२०-शब्दार्थ—घरगे=घर नष्ट होगये।

नारदजी के घर घालने की दो कथायें इस प्रकार हैं—

(१) दक्ष प्रजापति के कई हजार पुत्र थे, ये अपने पिता की आज्ञा मान कर पश्चिम दिशा में सृष्टि पैदा करने के उद्देश्य से तपस्या करने लगे परन्तु नारद ने उलटी सीधी बातें बनाकर इन्हें बहका दिया जिससे वे सृष्टि रचना का कार्य भूल कर मुक्ति-साधन में लग गये।

(२) नारद के उपदेश से ही प्रह्लाद ने भगवान् का भक्त बनकर अपने पिता की हत्या कराई थी।

अर्थ—यह समाचार सुनकर पार्वती की माता मैना को बड़ी चिन्ता हुई और वह मन ही मन कहने लगीं कि नारद के उपदेश से कौनसे घर नष्ट नहीं हुए ?

१२१-शब्दार्थ—घर घाल = घर बिगाड़ने वाला । चालाक = चालबाज । बरेखी = वररक्षा, सगाई । जलपति = जल्पति, व्यर्थ का बकवाद करती है । निगम = वेद ।

अर्थ—नारद घर बिगाड़ने वाला, चालाक और झगड़ालू है परन्तु (फिर भी) बड़ा परोपकारी कहा जाता है ? ऐसे ही स्वार्थ साधक सप्तऋषियों ने यह विवाह सम्बन्ध कराया है। मैना पार्वती को हृदय से लगाकर दुःख से अनेक तरह की बातें कहने लगीं। परन्तु हिमालय ने कहा कि महादेव की महिमा अगम्य और अपार है, उसे वेद भी नहीं जानते ।

१२२-शब्दार्थ—सुमन = अच्छे मन वाली। चोहट = चौराहा।

अर्थ—हिमाचल की यह बात सुनकर मैना के मन की मलिनता दूर हुई और सखियाँ बारात को देखने के लिए चलीं, बाजार, चौराहे, गली जहां तहां यही चर्चा चल रही थी (कि वर और बारात दोनों ही विचित्र हैं)

१२३-शब्दार्थ—श्रीपति = विष्णु । मोरि = मोड़कर ।

अर्थ—विष्णु भगवान् इन्द्रदेव तथा अन्य देवतागण की बातें सुन सुन कर हंसते हैं तथा शिवजी की ओर अपने कमल रूपी हाथ जोड़ कर मुंह फेर लेते हैं। अथवा अपने दोनों हाथों को मिला कर उन्हें मुंह की ओर लेजाते और इस प्रकार हाथों से मुंह ढककर तथा मुंह मोड़कर हँसते हैं, जिससे शिवजी उनकी हँसी देखकर बुरा न मानें।

१२४-शब्दार्थ—लौकिक = दुनियवी, सांसारिक । सोहर = शोभा या सौन्दर्य दिखाने का समय । सत = शत, सौ ।

अर्थ—महादेव लौकिक व्यवहार को समझ कर तथा शोभा दिखाने का अच्छा अवसर जानकर एकदम सौ करोड़ कामदेवों से भी अधिक सुन्दर तथा मनोहर होगये।

१२५-शब्दार्थ—निचोल = कपड़ा। पूषन (ण) = सूय।

अर्थ—हाथी की खाल नीला वस्त्र बन गया, साँप मणियों के भूषण बन गये और रोम रोम पर सौन्दर्य समान सूय उदय होगये।

१२६-शब्दार्थ--जोहन = देखना।

अर्थ—शिवजी के गणों का मगलमय वेश होगया, जिसे देख कर कामदव का भी मन मोहित होने लगा। यह सुनते ही सब स्त्री पुरुष प्रसन्नता से उन्हें देखने चले।

१२७-शब्दार्थ—राकेस = राका (रात) + ईश (स्वामी) चन्द्रमा। नखन = नक्षत्र, सितारे।

अर्थ—शिवजी शरद की पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान और देवता गण तारों की तरह थे। चारों ओर एकत्र नगर निवासी चकोर से लगते थे।

१२८-शब्दार्थ—अरघ = अर्घ, मेहमान को जल देना। पाँवड़े = पायपोश।

अर्थ—हिमाचल ने (बारात) में बुलावा भेजा कि लग्न का समय होगया है, मांगलिक अर्घ्य-पाँवड़े देते हुए शिवजी को ले चलिए।

१२९-शब्दार्थ—गहगहे = घनघोर।

अर्थ—शुभ तथा मंगलकारी शकुन होते हैं, देवतागण फूल बरसाते हैं, नगर में खूब गाने बजाने और आनन्द-मगल होरहे हैं।

१३०-शब्दार्थ—पँवरि = पाँवरी, ड्योढी। सुखमध = समधियों का मिलाप।

अर्थ—पहली ही ड्योढी पर (दरवाजे पर) सुख देने वाली समधियों की मिलनी हुई। इधर (शिवजी की तरफ से) ब्रह्मा थे उधर (पार्वती की ओर से) उन्हीं के समान सब लायक हिमवान।

१३१-शब्दार्थ—चामीकर = सोना । चारु = सुन्दर । सिहाहिं = मन ही मन प्रसन्न होती है। भारति (ती) = सरस्वती।

अर्थ—रत्न जटित सोने के सुन्दर थाल म आरती सजाई गई। आरती करने वाली स्त्रियों का रुप देख कर कामदेव की स्त्री और उनका गाना सुन कर सरस्वती सिहाने लगी।

१३२-शब्दार्थ—भरी भाग=सोभाग्यवती । मदनमत्त गज गवनि=कामदेव के मतवाले हाथियों की सी चाल चलने वाली। परिछन=(परि + अर्चन) परछन विवाह की एक रीति, बरात द्वार पर आ जाने पर कन्या की माता अपनी सखियों सहित वर के माथे पर टीका करती है।

अर्थ—प्रेम पुलकित, कामदेव के मतवाले हाथी की तरह चाल चलने वाली सोभाग्यवती स्त्रिया प्रसन्नता पूर्वक वर की परिछन करने चलीं ।

१३३-शब्दार्थ—विधु गोर = चन्द्रमा के समान गौर वर्ण युक्त। उजागर = प्रकट, प्रकाशमान।

अर्थ—चन्द्रमा के समान वर का गोरा और चमकदार अग देख कर आनन्द-सागर में निमग्न हो साम आरती उतारने लगी।

१३४-शब्दार्थ—प्रसून = फूल।

अर्थ—सुख-सागर में डूबी हुई सास ने वर को देख कर आरती उतारी तथा निछावर की और मार्ग को अर्घ्य, वस्त्र और फूलों से भरकर प्रसन्न हो वर को मण्डप की ओर ले चली। हिमवान ने सब देवताओं को आदर पूर्वक उचित आसन दिया उसी समय विवाह की सामग्री मण्डप में ला कर रक्खी गई।

१३५—शब्दार्थ—मनि (णि) = मणियों से युक्त बैठने का आसन। मधुपर्क = दही, शहद, घी, जल और शक्कर को मिला कर बनाया हुआ पूजा के १६ उपचारों में से एक उपचार, भोज्य पदार्थ। अमी = अमृत। अंचवायउ = आचमन कराया।

अर्थ—अरघ देकर रत्न-जटित आसन पर वर बैठाये गये। पूजन करके मधुपर्क चढ़ाया और फिर अमृत से आचमन कराया।

१३६—शब्दार्थ—बेरी = घड़ी-बेला। विधान = रीति।

अर्थ—ब्रह्मा ने सप्त ऋषियों से कहा कि देर न कीजिये, लग्न का समय हो गया है, विवाह संस्कार का विधान शीघ्र ही कीजिए।

१३७—शब्दार्थ—थापि = स्थापित करके। अनल = आग। बरहि = दूल्हे को।

अर्थ—अग्नि स्थापित कर वर (महादेव) को वस्त्र पहनाये गये और ऋषियों ने कहा कि लग्न का समय आगया दुलहिन को शीघ्र लाओ।

१३८—शब्दार्थ—सुआसिनि = सौभाग्यवती।

अर्थ—सखियों और सौभाग्यवती स्त्रियों के साथ पार्वती अत्यन्त सुशोभित हो रही हैं। मानो सुन्दरता मूर्तिमती हो कर संसार को मोह रही है।

१३९-शब्दार्थ—समय सम = समयानुसार । सुखमा = शोभा।

अर्थ—भूषणों और वस्त्रों की समयानुसार शोभा ऐसी अच्छी मालूम होती थी मानो सुखमा की नवीन बेल पर सौन्दर्य रूपी फल लगे हों।

१४०-शब्दार्थ—पटतरिय = उपमा दें, मुकाबिला करें।

अर्थ—कहिए पार्वती के गुण और रूप की उपमा किससे दें। भला समुद्र की कूप और तालाबों से समता कैसे की जा सकती है।

१४१-शब्दार्थ—नावहिं = झुकाते हैं।

अर्थ—पार्वती को आता देखकर देवतागण सिर नवाते हैं और वे अपना जन्म कृतार्थ समझ कर सुख पाते हैं।

१४२-शब्दार्थ—शुभासिष = शुभ आशीर्वाद । झरि = झड़ी।

अर्थ—ब्राह्मण लोग आशीर्वाद दे दे कर वेद-ध्वनि करते हैं, और समय-समय पर गाना, बजाना होता तथा पुष्प वर्षा की झड़ी लग जाती है।

१४३-शब्दार्थ—साखोचार = विवाह के समय शाखोच्चार की विधि प्रसिद्ध है। कन्यादान के समय वर-वधू के तीन पीढ़ियों के पुरुषाओं के नाम लिए जाते हैं।

अर्थ—वर-वधू को देख कर सब मन ही मन प्रसन्न होते हैं और शाखोचार के समय सब देवता तथा मुनि हँसते हैं। हँसने का कारण यह था कि देखें शिवजी अपने बाप-दादा का नाम क्या बताते हैं।

१४४-शब्दार्थ—कुस = कुश, एक प्रकार के तिनके या घास। संकल्प = इच्छा, विवाह के समय की एक विधि।

अर्थ—हिमालय ने लोक और वेद-विधि करके हाथ कुश तथा जल लेकर कन्यादान का सकल्प किया।

१४५-शब्दार्थ—लावा = धान की खील। होमविधानः यज्ञविधि। भाँवरि = फेरे फिरना।

अर्थ—हिमवान ने कुल-गुरु तथा कुल-देवता की पूजा क कलश और अच्छी सिलौटी को रक्खा। लावा (खील) तथ हवन की ठीक ठीक व्यवस्था करके फिर भाँवर डाली गई कहीं कहीं 'सुभघरी' के स्थान में 'सुभघरी' भी पाठ है, अर्थात शुभ मुहूर्त्त में पूजन हुआ।

लावा—एक विधि है जिसमें कन्या का भाई कन्या के आँचल में धान की खीलें भरता है।

१४६-शब्दार्थ—वन्दन = सिन्दूर। ग्रन्थि-विधि = गाँठ बन्धन। धुव = ध्रुव।

अर्थ—सिन्दूर लगा कर तथा गाँठ जोडकर ध्रुव नक्षत्र देखा। विवाह हो गया, सब कहने लगे कि हमने जीवन का फल पा लिया।

विवाह के समय वर-वधू को ध्रुव तारा दिखाया जाता है, इसका अभिप्राय यह मालूम होता है कि जिस प्रकार ध्रुव अचल है, उसी प्रकार इस दम्पति का प्रेम भी अचल रहे।

१४७-शब्दार्थ—दस दिसा (शा) = दस दिशाएँ अर्थात् पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, वायव्य, नैऋत्य, ईशान, अग्नि आकाश और पाताल। दाइज = दहेज। धेनु = गाय। हय = घोड़ा। गय = हाथी। पेव = प्रेम।

अर्थ—विवाह होगया और उसे देखने वालों ने अपने जीवन का फल पा लिया, दशों दिशाओं में उत्साह उमड पड़ा। यह रात्रि नगाड़ों के बजने, गीतों के गाने और फूलों के बरसने से बड़ी सुहावनी हो गई। दहेज में हिमवान ने प्रसन्न होकर

वस्त्र, रत्न, गाय, धन, हाथी, अच्छे दास और वे दासियाँ दीं जो पार्वती को प्रिय थीं।

१४८–हास अवासहि = केलिग्रह या कोहवर को।

अर्थ—फिर बराती तो प्रसन्न हो कर जनवासे गये और दुलहा-दुलहिन कोहवर को गये। (कोहवर) में स्त्रिया वर से हँसी-मजाक किया करती हैं।

१४६–शब्दार्थ—लहकौरि = कोहवर या केलिगृह में, वर-वधू को दही और चीनी खिलाने की प्रथा विशेष।

अर्थ—इस समय कोहवर का द्वार मैना ने रोक कर बडा तमाशा किया और शिव पार्वती ने लहकौरि करके बडा सुख पहुचाया। कोहवर में पहुँच कर वर-वधू परस्पर दही-चीनी खाते खिलाते हैं, यही लहकौर या लघु कवल है।

१५०–शब्दार्थ—पुरारि = महादेव।

अर्थ—वर-वधू को जुआ खिलाते हुए स्त्रिया मैना को गाली गाती हैं। अपनी ओर देखकर महादेवजी खुश होते हैं क्योंकि उनकी तो माता थी ही नहीं स्त्रिया गाली किसे देतीं।

१५१–शब्दार्थ—मगलनिधि = शकर।

अर्थ—सखियाँ सौभाग्यवती स्त्रियाँ और सास (मैना), सब प्रकार सुखी हुई। तब मगलमूर्ति वर जनवासे को चले।

१५२–शब्दार्थ—धरम-धरनी-धुर = धर्म और धरणी को धारण करने वाला।

अर्थ—ज्यौनार हुई, फिर धर्म और धरती को धारण करने वाले हिमाचल ने सब देवताओं को बुलाकर बैठाया।

१५३–शब्दार्थ—सुवार = रसोइया। लेवहिं = खाते हैं। मेवहिं = भिगोती हैं।

अर्थ—रसोइये पड़ोसने लगे, देवतागण जीमने लगे और स्त्रियाँ गाली गाकर हर्ष से मन भिगोने लगीं अर्थात् बड़ी प्रसन्न हुईं।

१५४-शब्दार्थ—सहनाइह=शहनाइया (शहनाई एक प्रकार क बाजा होता है)। दुहिन=(द्रुहिण) ब्रह्मा।

अर्थ—सुन्दर शहनाइयों (नफीरी के ढंग का एक बाजा) द्वारा मंगल-गान गाया जारहा है। भोजन करके विष्णु भगवान् और ब्रह्माजी अपने भाई देवताओं के साथ जनवासे चले।

१५५-शब्दार्थ—भोर=प्रात काल।

अर्थ—हिमवान ने प्रातःकाल विदा की तय्यारी की, देवता लोग भी सवारियां तय्यार करके नगाड़े बजाते हुए चल दिये।

१५६-शब्दार्थ—पहरावनि=सरोपा (वस्त्र विशेष)

अर्थ—हिमाचल ने सब देवताओं को आदर पूर्वक पोशाकें भेंट कीं और विनय तथा प्रेम से उनकी बड़ाई की।

१५७-शब्दार्थ—मानवि=मानिएगा। मूरि=बूटी। जानवि=जानिएगा।

अर्थ—मैना ने अपने जमाई शिवजी के चरण पकड़ कर कहा कि मेरी विनम्र विनती को मानिए और यह जान लीजिए कि पार्वती मेरे जीवन की सजीवन बूटी अर्थात् सर्वस्व है।

१५८-शब्दार्थ—हुँकरि हुँकरि=गाय की आवाज। लवाइ=लवाई, नयी ब्याई हुई।

अर्थ—मैना पार्वती को हृदय से लगाकर विदा करती हैं, और फिर बार-बार उससे मिलती हैं और विदा करके पहुँचाती

हैं। हाल की बियानी गाय की तरह वे फिर हुमक कर दौड़ती हैं।

यहाँ मैना की उपमा गाय से दी गई है। जिस प्रकार गाय अपनी बछिया से बिछुड़ते हुए बार बार हुमक कर उसकी ओर ही जाती है, उसी प्रकार पार्वती से अलग होते हुए मैना की दशा है।

१५६-शब्दार्थ—मोचहिं = छोड़ती है, बहाती है। जाय = व्यर्थ।

अर्थ—पार्वती माता मैनका की ओर देखकर आँसू बहा रही हैं और खेद पूर्वक कह रही हैं कि संसार में स्त्री का जन्म व्यर्थ ही है।

१६०-शब्दार्थ—भेंटि = मिलकर। बिलखित = उदास, बिलखता हुआ।

अर्थ—हिमवान कुटुम्बियों और पुत्र सहित पार्वती से मिलकर तथा उन्हें खूब समझा-बुझा कर दुखी होते हुए लौट आये।

१६१-शब्दार्थ—नाइ नाइ = नवा नवा कर।

अर्थ—महादेव पार्वती सहित कैलाश गये, और देवतागण मस्तक नवा नवा कर अपने स्थानों को सिधारे।

१६२-शब्दार्थ—उछाह (उत्साह) = आनन्द

अर्थ—शिव-पार्वती के विवाह के आनन्द से सारे लोक भर गये और ब्रह्मा ने सबके सब मनोरथ पूर्ण किये।

१६३-शब्दार्थ—पाट = रेशम। पट = वस्त्र। डोरि = रस्सी मृग लोचनि = हिरन की सी आँखों वाली।

अर्थ—कवि-प्रतिभा रूपिणी मृग-लोचनी स्त्री ने प्रेम की रेशमी डोरी में, शिव-पार्वती के गुण रूपी मनकों को गूँथ कर यह माँगलिक हार तय्यार किया है।

१६४–शब्दार्थ—विधुवदनी=चन्द्रमुखी । प्रसाद=प्रसन्नता, कृपा, दया।

अर्थ—मृगनयनी, चन्द्रमुखी कवि प्रतिभा ने सुन्दर मणियों का यह माँगलिक हार तय्यार किया है । इसे स्त्री-पुरुष तीनों लोकों की शोभा का सार समझकर हृदय में धारण करें। जो लोग इसे मंगल कार्यों, उत्सवों तथा विवाहादिक अवसरों पर गावेंगे, तुलसीदासजी कहते हैं, वे शिव-पार्वती की कृपा से मनचाहा आनन्द प्राप्त करेंगे ।

जानकी-मङ्गल

जानकी-मंगल

जानकी मगल में सीताजी के स्वयम्वर तथा उनके विवाह का वर्णन है। इसमें १६२ सोहर छन्द और २४ हरिगीतिका छन्द हैं। यह ग्रन्थ कब रचा गया, इसका कुछ पता नहीं चलता। इसकी भाषा पूर्वी और अवधी है। कविता पार्वती मगल से बहुत मिलती-जुलती है। इससे जान पडता है कि जानकी-मगल और पार्वती-मगल दोनों का रचना-काल प्राय एक ही है। उपर्युक्त दोनों पुस्तकों के कई छन्द रामचरित-मानस से भी बहुत मिलते हैं। अन्य ग्रन्थों की भाति इस ग्रन्थ की कविता का माधुर्य और सौष्ठव भी प्रशसनीय है। भाषा तथा छन्द शास्त्र पर कवि का अद्भुत अधिकार है। जिस छन्द को पढिये, अपूर्व आनन्द प्राप्त होगा। तुलसीदासजी साधारण रूप से तो किसी बात को कहना ही नहीं जानते, वे जो कुछ कहते हैं, अजीब ढग से कहते हैं और वाक्य को चमत्कार युक्त बना देते हैं। स्वभाव-सिद्ध कवि का यही विशेष गुण है।

सीताजी के विवाह की कथा इतनी प्रसिद्ध है कि उसका साराश देने का यहा आवश्यकता नहीं है। 'रामचरित-मानस' की अपेक्षा 'जानकी-मगल' के घटना-क्रम में कुछ अन्तर है। 'मगल' में गोस्वामीजी ने पुष्प वाटिका का वर्णन नहीं किया। अतएव सीताजी पहले पहल धनुषयज्ञ के समय ही रामचन्द्र जी के सम्मुख आती हैं, तथा विश्वामित्रजी राजा जनक से स्वयम् कहते हैं कि निराश होने की कोई बात नहीं है, अगर किसी राजा से शिव धनुष भग नहीं हुआ तो राम से कहो, वह उसे तोड देंगे। रामचरित-मानस में यह प्रसग दूसरी

तरह से है। और भी ऐसे कई क्रम भेद हैं। परन्तु इससे ग्रन्थ की वर्णन शैली या कवित्व की उत्कृष्टता में कुछ भी अन्तर नहीं आता। वह वैसा ही सुन्दर, सरल, भावमय और महत्वपूर्ण है जैसी कि महाकवि तुलसीदासजी की ललित लेखनी द्वारा होनी चाहिये थी। यह ग्रन्थ भी मंगलोत्सवों पर गाने के अभिप्राय से ही लिखा गया है। सम्भव है, पूर्वीय प्रान्तों में यह गाया भी जाता हो। रामचरित-मानस की तरह पार्वती-मंगल और जानकी मंगल दोनों ग्रन्थ ऐसे हैं जो यदि ठीक-ठीक गाये जायँ तो बड़ी सरसता और भावुकता पैदा कर सकते हैं।

———

जानकी-मंगल

गुरु गनपति गिरिजापति गौरि गिरापति।
सारद सेष सुकबि स्रुति संत सरलमति॥ १॥
हाथ जोरि करि बिनय सबहि सिर नावौं।
सिय-रघुबीर-बिबाहु यथामति गावौं॥ २॥
सुभ दिन रच्यौ स्वयंबर मंगलदायक।
सुनत स्रवन हिय बसहिं सीय-रघुनायक॥ ३॥
देस सुहावन पावन बेद बखानिय।
भूमितिलक सम तिरहुत त्रिभुवन जानिय॥ ४॥
तहँ बस नगर जनकपुर परम उजागर।
सीय लच्छि जहँ प्रगटी सब सुखसागर॥ ५॥
जनक नाम तेहि नगर बसै नरनायक।
सब गुनअवधि, न दूसर पटतर लायक॥ ६॥
भयउ न होइहि, है, न, जनक सम नरवइ।
सीय सुता भै जासु सकल मंगलमइ॥ ७॥
नृप लखि कुँवरि सयानि बोलि गुरु परिजन।
करि मत रचेउ स्वयंबर सिवधनु धरि पन॥ ८॥
पन धरेउ सिवधनु रचि स्वयंबर अति रुचिर रचना बनी।
जनु प्रगटि चतुरानन देखाइ चतुरता सब आपनी॥
पुनि देस देस सँदेस पठयउ भूप सुनि सुख पावहीं।
सब साजि साजि समाज राजा जनक-नगरहिं आवहीं॥ ९॥
रूप सील बय बंस बिरुद बल दल भले।
मनहुँ पुरंदरनिकर उतरि अवनी चले॥ १०॥

दानव देव निसाचर किन्नर अहिगन ।
सुनि धरि धरि नृपवेष चले प्रमुदित मन ॥ ११ ॥
एक चलहिं, एक बीच, एक पुर पैठहिं ।
एक धरहिं धनु धाय नाइ सिर बैठहिं ॥ १२ ॥
रंगभूमि पुर कौतुक एक निहारहिं ।
ललकि लुभाहिं नयन मन, फेरि न पारहिं ॥ १३ ॥
जनकहि एक सिहाहि देखि सनमानत ।
बाहर भीतर भीर न बनै बखानत ॥ १४ ॥
गान निसान कोलाहल कौतुक जहँ तहँ ।
सीय बियाह-उछाह जाइ कहि का पहँ ? ॥ १५ ॥
गाधिसुवन तेहि अवसर अवध सिधायउ ।
नृपति कीन्ह सनमान भवन लै आयउ ॥ १६ ॥
पूजि पहुनई कीन्हि पाइ प्रिय पाहुन ।
कहेउ भूप "मोहिं सरिस सुकृत किए काहु न" ॥ १७ ॥

'काहु न कीन्हेउ सुकृत' सुनि मुनि मुदित नृपहि बखानहीं ।
महिपाल मुनि को मिलनसुख महिपाल मुनि मन जानहीं ॥
अनुराग भाग सोहाग सील सरूप बहु भूषन भरीं ।
हिय हरषि सुतन्ह समेत रानी आइ ऋषिपायन्ह परीं ॥ १८ ॥

कौसिक दीन्हि असीस सकल प्रमुदित भईं ।
सींची मनहुँ सुधारस कलपलता नईं ॥ १९ ॥
रामहि भाइन्ह सहित जबहिं मुनि जोहेउ ।
नैन नीर, तनु पुलक, रूप मन मोहेउ ॥ २० ॥
परसि कमलकर सीस हरषि हिय लावहिं ।
प्रेमपयोधि-मगन मुनि, पार न पावहिं ॥ २१ ॥
मधुर मनोहर मूरति सादर चाहहिं ।
बार बार दसरथ के सुकृत सराहहिं ॥ २२ ॥

राउ कहेउ कर जोरि सुवचन सुहावन।
"भयउँ कृतारथ आजु देखि पद पावन ॥२३॥
तुम्ह प्रभु पूरनकाम चारि फल-दायक।
तेहि ते बूझत काजु डरौं मुनिनायक" ॥ २४ ॥
कौसिक मुनि नृपवचन सराहेउ राजहि।
धर्मकथा कहि कहेउ गयउ जेहि काजहि ॥ २५ ॥
जबहिं मुनीस महीसहिं काज सुनायउ।
भयउ सनेह-सत्य-बस उतरु न आयउ ॥ २६ ॥

आयउ न उतरु बसिष्ठ लखि बहु भाँति नृप समुझायऊ।
कहि गाधिसुत तपतेज कछु रघुपति प्रभाउ जनायऊ ॥
धीरजु धरेउ गुरुवचन सुनि कर जोरि कह कोसलधनी।
"करुनानिधान सुजान प्रभु सों उचित नहिं बिनती घनी ॥ २७ ॥

नाथ मोहिं बालकन्ह सहित पुर परिजन।
राखनहार तुम्हार अनुग्रह घर धन ॥ २८ ॥
दीन बचन बहु भाँति भूप मुनिसन कहे।
सौंपि राम अरु लखन पाँयपंकज गहे ॥ २९ ॥
पाइ मातु पितु आयसु गुरु पाँयन परे।
कटि निषंग पट पीत, करनि सर धनु धरे ॥ ३० ॥
पुरवासी नृप रानिन संग दिये मन।
बेगि फिरेउ करि काज कुसल रघुनंदन ॥ ३१ ॥
ईस मनाइ असीसहिं जय जस पावहु।
न्हात खसै जनि बार, गहरु जनि लावहु ॥ ३२ ॥
चलत सकल पुरलोग वियोग बिकल भए।
सानुज भरत सप्रेम राम पाँयन नए ॥ ३३ ॥
होहिं सगुन सुभ मंगल जनु कहि दीन्हेउ।
राम लखन मुनि साथ गवन तब कीन्हेउ ॥ ३४ ॥

'स्यामल गौर 'किसोर मनोहरतानिधि ।
सुखमा सकल 'सकेलि मनहुँ विरचे बिधि ॥ ३५ ॥

बिरचे बिरचि बनाइ बाँची रुचिरता रची नहीं ।
दसचारि भुवन निहारि देखि बिचारि नहिं उपमा कहीं ॥
ऋषि संग सोहत जात मगु छबि बसति सो तुलसी हिए ।
कियो गमन जनु दिननाथ उत्तर संग मधु माधव लिए ॥ ३६ ॥

गिरि तरु बेलि सरित सर विपुल विलोकहिं ।
धावहिं बाल सुभाय, विहँग मृग रोकहिं ॥ ३७ ॥
सकुचहिं मुनिहि सभीत बहुरि फिरि आवहिं ।
तोरि फूल फल किसलय माल बनावहिं ॥३८॥
देखि विनोद प्रमोद प्रेम कौसिक उर ।
करत जाहिं घन छाँह, सुमन बरषहिं सुर ॥३९॥
बधी ताडका, राम जानि सब लायक ।
विद्या मंत्र-रहस्य दिए मुनिनायक ॥४०॥
मग-लोगन्ह के करत सफल मन लोचन ।
गए कौसिक आस्रमहिं बिप्र भय-मोचन ॥४१॥
मारि निसाचर निकर 'यज्ञ करवायउ ।
अभय किए मुनिबृंद जगत जसु गायउ ॥ ४२ ॥
बिप्र साधु सुर-काज महामुनि' मन धरि।
रामहिं चले लिवाइ धनुपमख मिसु करि ॥ ४३ ॥
गोतमनारि उधारि पठै पतिधामहिं ।
जनकनगर लै गयउ महामुनि रामहिं ॥ ४४ ॥

लै गयउ रामहिं गाधि सुवन बिलोकि पुर हरषे हिए ।
सुनि राउ आगे लेन आयउ सचिव गुरु भूसुर'लिए ॥
नृप गहे'पाँय, असीस पाई मान आदर अति 'किए ।
अवलोकि 'रामहिं अनुभवत'मनु ब्रह्मसुख सौगुन दिए ॥४५॥

देखि मनोहर मूरति मन अनुरागेउ ।
बँधेउ सनेह बिदेह, बिराग बिरागेउ ॥ ४६ ॥
प्रमुदित हृदय सराहत भल भवसागर ।
जहँ उपजहिं अस मानिक, बिधि बड़ नागर ॥ ४७ ॥
पुन्यपयोधि मातु-पितु ए सिसु सुरतरु ।
रूप सुधा सुख देत नयन अमरनि बरु ॥ ४८ ॥
"केहि सुकृती के कुँवर" कहिय मुनिनायक ।
"गौर स्याम छबिधाम धरे धनुसायक ॥ ४९ ॥
बिषयबिमुख मन मोर सेइ परमारथ ।
इन्हहिं देखि भयो मगन जानि बड़ स्वारथ" ॥ ५० ॥
कहेउ सप्रेम पुलकि मुनि सुनि "महिपालक !
ए परमारथरूप ब्रह्ममय बालक ॥ ५१ ॥
पूषन—बंस—बिभूषन दसरथनन्दन ।
राम राम अरु लषन सुरारि-निकन्दन" ॥ ५२ ॥
रूप सील बय बंस राम परिपूरन ।
समुझि कठिन पन आपन लाग बिसूरन ॥ ५३ ॥

लागे बिसूरन समुझि पन मन बहुरि धीरज आनि कै ।
लै चले देखावन रंगभूमि अनेक बिधि सनमानि कै ॥
कौसिक सराही रुचिर रचना, जनक सुनि हरषित भए ।
तब राम लषन समेत मुनि कहँ सुभग सिंहासन दए ॥ ५४ ॥

राजत राज समाज जुगल रघुकुलमनि ।
मनहुँ सरदबिधु उभय, नखत धरनीधनि ॥ ५५ ॥
काकपच्छ सिर, सुभग सरोरुहलोचन ।
गौर स्याम सत कोटि काम-मद-मोचन ॥ ५६ ॥
तिलक ललित सिर, भृकुटी काम-कमानैं ।
स्रवन बिभूषन रुचिर देखि मन मानैं ॥ ५७ ॥

नासा चिबुक कपोल अधर रद सुन्दर।
बदन सरद बिधु निंदक सहज मनोहर॥ ५८॥
उर बिसाल बृषकंध सुभग भुज अति बल।
पीत बसन उपवीत, कण्ठ मुकुताफल॥ ५९॥
कटि निषंग, कर-कमलन्हि धरे धनुसायक।
सकल अंग मनमोहन जोहन लायक ॥ ६०॥
राम लखन छबि देखि मगन भए पुरजन।
उर आनँद, जल लोचन, प्रेम पुलक तन॥ ६१॥
नारि परस्पर कहहिं देखि दुहुँ भाइन्ह।
"लहेउ जनमफल आजु, जनमि जग आइन्ह॥ ६२॥

जग जनमि लोचन लाहु पाए सकल सिवहि मनावहीं।
"बर मिलौ सीतहि सावरो हम हरषि मंगल गावहीं"॥
एक कहहिं "कुँवर किसोर कुलिस-कठोर सिवधनु है महा।
किमि लेहिं बाल मराल मंदर नृपहिं अस काहु न कहा"॥६३॥

भे निरास सब भूप बिलोकत रामहिं।
"पन परिहरि सिय देब जनक बर स्यामहिं"॥ ६४॥
कहहिं एक "भलि बात, ब्याहु भल होइहि।
बर दुलहिनि लगि जनक अपन पन खोइहि"॥६५॥
सुचि सुजान नृप कहहिं "हमहिं अस सूझइ।
तेज प्रताप रूप जहँ तहँ बल बूझइ॥ ६६॥
चितय न सकहु रामतन, गाल बजावहु।
बिधि बस बलउ लजान, सुमति न लजावहु॥ ६७॥
अवसि राम के उठत सरासन टूटिहि।
गवनिहि राजसमाज नाक असि फूटिहि॥ ६८॥
कस न पियहु भरि लोचन रूप सुधा-रसु।
करहु कृतारथ जनम, होहु कत नरपसु"॥ ६९॥

दुहुँ दिसि राजकुमार विराजत मुनिवर।
नील पीत पाथोज बीच जनु दिनकर॥ ७० ॥
काकपच्छ ऋषि परसत पानि सरोजनि।
लाल कमल जनु लालत बाल-मनोजनि॥ ७१ ॥
"मनसिज मनोहर मधुर मूरति कस न सादर जोवहू।
बिनु काज राजसमाज महँ तजि लाज आपु बिगोवहू"॥
सिख देइँ भूपनि साधु भूप अनूप छबि देखन लगे।
रघुबंस कैरवचन्द चितइ चकोर जिमि लोचन ठगे॥ ७२ ॥
पुर-नर-नारि निहारहिं रघुकुलदीपहि।
दोसु नेहबस देहिं बिदेह महीपहि॥ ७३ ॥
एक कहहिं "भल भूप, देहु जनि दूषन।
नृप न सोह बिनु बचन, नाक बिनु भूषन॥ ७४ ॥
हमरे जान जनेस बहुत भल कीन्हेउ।
पनमिस लोचनलाहु सबन्हि कहँ दीन्हेउ॥ ७५ ॥
अस सुकृती नरनाहु जो मन अभिलाषिहि।
सो पुरइहि जगदीस पैज पन राखिहि॥ ७६ ॥
प्रथम सुनत जो राउ राम-गुन-रूपहि।
बोलि ब्याहि सिय देत दोष नहिं भूपहि॥ ७७ ॥
अब करि पैज पच्छ महँ जो पन त्यागै।
बिधिगति जानि न जाइ, अजसु जग जागै॥ ७८ ॥
अजहुँ अवसि रघुनन्दन चाप चढ़ाउब।
ब्याह उछाह सुमंगल त्रिभुवन गाउब"॥ ७९ ॥
लागि झरोखन्ह झाँकहिं भूपतिभामिनि।
कहत बचन रद लसहिं दमक जनु दामिनि॥ ८० ॥
जनु दमक दामिनि, रूप रति मृदु निदरि सुन्दरि सोहहीं।
मुनि ढिग देखाए सखिन्ह कुँवर बिलोकि छबि मन मोहहीं॥

सियमातु हरषी निरखि सुखमा अति अलौकिक राम की।
हिय कहति "कहँ धनु कुँवर कहँ विपरीत गति विधि वामकी"॥८१॥

कहि प्रिय वचन सखिन्ह सन रानि विसूरति।
'कहाँ कठिन सिवधनुप कहाँ मृदुमूरति ॥ ८२ ॥
जो विधि लोचनअतिथि करत नहिं रामहिं।
तौ कोउ नृपहि न देत दोसु परिनामहिं ॥ ८३ ॥
अर असमजस भयउ न कछु कहि आवै"।
रानिहि जानि ससोच सखी समुझावै ॥ ८४ ॥
"देवि! सोच परिहरिय, हरप हियआनिय।
चाप चढाउब राम वचन फुर मानिय ॥ ८५ ॥
तीनि काल कर ज्ञान कौसिकहि करतल।
सो कि स्वयवर आनहि बालक बिनु बल ?"॥८६॥
मुनिमहिमा सुनि रानिहि धीरजु आयउ।
तब सुबाहु सूदन-जसु सखिन सुनायउ ॥ ८७ ॥
सुनि जिय भयउ भरोस रानि हिय हरखइ।
बहुरि निरखि रघुबरहि प्रेम मन करखइ ॥ ८८ ॥
नृप रानी पुरलोग रामतन चितवहिं।
मजु मनोरथ कलस भरहिं अरु रितवहिं ॥ ८९ ॥

रितवहिं भरहिं धनु निरखि छिनु छिनु निरखि रामहि सोचहीं।
नर नारि हरप विपाद-बस हिय सकल सिवहि सकोचहीं॥
तब जनक आयसु पाइ कुलगुरु जानिकिहि लै आयऊ।
सिय रूपरासि निहारि लोचनलाहु लोगन्हि पायऊ ॥ ९० ॥

मगल भूपन बसन मजु तन सोहहिं।
देखि मूढ़ महिपाल मोहबस मोहहिं ॥ ९१ ॥
रूपरासि जेहि ओर सुभाय निहारइ।
नील-कमल-सर-श्रेनि मयन जनु डारइ ॥ ९२ ॥

छिनु सीतहि छिनु रामहि पुरजन देखहिं।
रूप सील वय बस बिसेष बिसेषहिं ॥ ९३ ॥
राम दीख जब सीय, सीय रघुनायक।
दोउ तन तकि तकि मयन सुधारत सायक ॥ ९४ ॥
प्रेम प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहिं।
जनु हिरदय गुन ग्राम थूनि थिर रोपहिं ॥ ९५ ॥
रामसीय वय समौ, सुभाय सुहावन।
नृप जोबन छबि पुरइ चहत जनु आवन ॥ ९६ ॥
सो छबि जाइ न बरनि देखि मन मानै।
सुधापान करि मूक कि स्वाद बखानै ? ॥ ९७ ॥
तब बिदेह पन बंदिन्ह प्रगटि सुनायउ।
उठे भूप आमरषि सगुन नहिं पायउ ॥ ९८ ॥

नहिं सगुन पायेउ रहे मिसु करि एक धनु देखन गए।
टकटोरि कपि ज्यों नारियरु सिर नाइ सब बैठत भए ॥
इक करहिं दाप, न चाप सज्जन बचन जिमि टारे टरै।
नृप नहुष ज्यों सब के विलोकत बुद्धि बल बरबस हरै ॥ ९९ ॥

देखि सपुर परिवार जनक हिय हारेउ।
नृप समाज जनु तुहिन बनजबन मारेउ ॥ १०० ॥
कौसिक जनकहि कहेउ "देहु अनुसासन"।
देखि भानु-कुल भानु इसानु सरासन ॥ १०१ ॥
मुनिवर तुम्हरे बचन मेरु महि डोलहिं।
तदपि उचित आचरत पाँच भल बोलहिं ॥ १०२ ॥
बानु बानु जिमि गयउ, गवहिं दसकधरु।
को अवनीतल इन्ह सम बीरधुरधरु ॥ १०३ ॥
पारवती-मन सरिस अचल धनुचालक।
हहिं पुरारि तेउ एक-नारि व्रत पालक ॥ १०४ ॥

सो धनु कहि अवलोकन भूप किसोरहि।
भेद कि सिरिस सुमन कन कुलिस कठोरहि ॥ १०५ ॥
रोम रोम छवि निंदति सोम मनोजनि।
देखिय मूरति, मलिन करिय मुनि सो जनि ॥ १०६ ॥
मुनि हँसि कहेउ जनक यह मूरति सो इइ।
सुमिरत सकृत मोहमल सकल बिछोहइ ॥ १०७ ॥

सब मल-बिछोहनि जानि मूरति जनक कौतुक देखहू।
धनुसिंधु नृप-बल-जल बढ्यो रघुबरहि कुभज लेखहू ॥
सुनि सकुचि सोचहिं जनक गुरुपद बंदि रघुनंदन चले।
नहिं हरष हृदय विषाद कछु भए सगुन सुभ मंगल भले ॥ १०८ ॥

बरिसन लगे सुमन सुर, दुंदुभि बाजहिं।
मुदित जनक पुर-परिजन नृप गन लाजहिं ॥ १०९ ॥
महि महिधरनि लषन कह बलहि बढावन।
राम चहत सिवचापहि चपरि चढावन ॥ ११० ॥
गए सुभाय राम जब चाप समीपहि।
सोच सहित परिवार विदेह महीपहि ॥ १११ ॥
कहि न सकति कछु सकुचनि, सिय हिय सोचइ।
गौरि गनेस गिरीसहि सुमिरि सकोचइ ॥ ११२ ॥
होति बिरह-सर-मगन देखि रघुनाथहि।
फरकि बाम भुज नयन देहिं जनु हाथहि ॥ ११३ ॥
धीरज धरति, सगुन बल रहत सो नाहिन।
बर किसोर धनु घोर दइउ नहिं दाहिन ॥ ११४ ॥
अंतरजामी राम मरम सब जानेउ।
धनु चढ़ाइ कौतुकहिं कान लगि तानेउ ॥ ११५ ॥
प्रेम परखि रघुबीर सरासन भंजेउ।
जनु मृग-राज किसोर महागज गंजेउ ॥ ११६ ॥

गर्जेउ सो गर्जेउ घोर धुनि सुनि भूमि भूधर लरखरे।
रघुबीर जस मुकुता बिपुल सब भुवन पटु पेटक भरे॥
हित मुदित, अनहित रुदित मुख छबि कहत कवि धनुजाग की।
जनु भोर चक्र चकोर कैरव सघन कमल तड़ाग की॥ ११७॥
नभ पुर मंगलगान निसान गहागहे।
देखि मनोरथ सुरतरु ललित लहालहे॥ ११८॥
तब उपरोहित कहेउ, सखी सब गावत।
चलीं लेवाइ जानकिहि भा मनभावत॥ ११९॥
कर-कमलनि जयमाल जानकी सोहइ।
बरनि सकै छबि अतुलित अस कवि को इइ? ॥ १२०।
सीय सनेह-सकुच-बस पियतन हेरइ।
सुरतरु रुख सुरबेलि पवन जनु फेरइ॥ १२१॥
लसत ललित कर कमल माल पहिरावत।
कामफंद जनु चंदहि बनज फँदावत॥ १२२॥
राम-सीय-छबि निरुपम, निरुपम सो दिनु।
सुखसमाज लखि रानिन्ह आनँद छिनु छिनु॥ १२३॥
प्रभुहि माल पहिराइ जानकिहि लै चली।
सखी मनहुँ बिधु उदय मुदित कैरव-कली॥१२४॥
बरषहिं बिबुध प्रसून हरषि कहि जय जय।
सुख सनेह भरे भुवन राम गुरु पहिं गय॥१२५॥
गए राम गुरु पहिं, राउ रानी नारि नर आनद भरे।
जनु तृषित करि करिनी-निकर सीतल सुधासागर परे॥
कौसिकहि पूजि प्रसंसि आयसु पाइ नृप सुख पायऊ।
लिखि लगन तिलक समाज सजि कुलगुरुहि अवध पठायऊ॥१२६॥
मुनि, गन बोलि कहेउ नृप माड़व छावन।
गावहिं गीत सुवासिनि, बाज बधावन॥१२७॥

सीय-राम हित पूजहिं गौरि गनेसहि।
परिजन पुरजन सहित प्रमोद नरेसहि ॥१२८॥
प्रथम हरदि बंदन करि मगल गावहिं।
करि कुलरीति, कलस थपि तेलु चढावहिं ॥१२६॥
गे मुनि अवध, बिलोकि सुसरित नहायउ।
सतानन्द सत-कोटि नाम-फल पायउ ॥१३०॥
नृप सुनि आगे आइ पूजि सनमानेउ।
दीन्हि लगन कहि कुसल राउ हरषानेउ ॥१३१॥
सुनि पुर भयउ अनद बधाव बजावहिं।
सजहिं सुमगल कलस बितान बनावहिं ॥१३२।
राउ छाँडि सब काज साज सब साजहिं।
चलेउ बरात बनाइ पूजि गनराजहिं ॥१३३॥
बाजहिं ढोल निसान सगुन सुभ पाइन्हि।
सियनैहर जनकौर नगर नियराइन्हि ॥१३४॥

नियरानि नगर बरात हरषी लेन अगवानी गए।
देखत परस्पर मिलत, मानत, प्रेम परिपूरन भए॥
आनद पुर कौतुक कोलाहल बनत सो बरनत कहाँ।
लै दियो तहँ जनवास सकल सुपास नित नूतन जहाँ ॥१३५॥

गे जनवासहि कौसिक रामलषन लिए।
हरषे निरखि बरात प्रेम प्रमुदित हिए ॥१३६॥
हृदय लाइ लिए गोद मोद अति भूपहि।
कहि न सकहिं सत सेष अनद अनूपहि ॥१३७॥
राय कौसिकहि पूजि दान बिप्रन्ह दिए।
राम सुमगल हेतु सकल मगल किए ॥१३८॥
ब्याह-बिभूषन भूषित भूषन—भूषन।
बिस्वबिलोचन, बनजबिकासक पूषन ॥१३६॥

मध्य बरात बिराजत अति अनुकूलेउ।
मनहुँ काम आराम कलपतरु फूलेउ ॥१४०॥
पठई भेंट बिदेह बहुत बहु भाँतिन्ह।
देखत देव सिहाहिं अनद बरातिन्ह ॥१४१॥
बेद-बिहित कुलरीति कीन्हि दुहुँ कुलगुरु।
पठई बोलि बरात जनक प्रमुदित उर ॥१४२॥
जाइ कहेउ "पगु धारिय" मुनि अवधेसहि।
चले सुमिरि गुरु गौरि गिरीस गनेसहि ॥१४३॥

चले सुमिरि गुरु सुर सुमन बरषहिं परे बहुबिधि पाँवड़े।
सनमानि सब बिधि जनक दसरथ किए प्रेम कनावड़े ॥
गुन सकल सम समधी परस्पर मिलत अति आनँद लहे।
जय धन्य जय जय धन्य धन्य बिलोकि सुर नर मुनि कहे ॥१४४॥

तीनि लोक अवलोकहिं नहिं उपमा कोउ।
दसरथ जनक समान जनक दसरथ दोउ ॥१४५॥
सजहिं सुमगल साज रहस रनिवासहिं।
गान करहिं पिकबैनि सहित परिहासहिं ॥१४६॥
उमा रमादिक सुरतिय सुनि प्रमुदित भईं।
कपट नारि बर बेष बिरंचि मडप गईं ॥१४७॥
मगल आरति साजि बरहिं परिछन चलीं।
जनु बिगसीं रवि-उदय कनक-पकज-कलीं ॥१४८॥
नख सिख सुन्दर रामरूप जब देखहिं।
सब इन्द्रिन्ह महँ इन्द्रबिलोचन लेखहिं ॥१४९॥
परम प्रीति कुलरीति करहिं गजगामिनि।
नहिं अघाहिं अनुराग भाग भरि भामिनि ॥१५०॥
नेगचार कहँ नागरि गहरु लगावहिं।
निरखि निरखि आनद सुलोचनि पावहिं ॥१५१॥

करि आरती निछावरि बरहिं निहारहिं।
प्रेममगन प्रमदागन तनु न सम्हारहिं ॥१५२॥

नहिं तनु सम्हारहिं, छबि निहारहिं निमिष रिपु जनु रन जए।
चक्वे-लोचन रामरूप-सुराज-सुख भोगी भए॥
तब जनक सहित समाज राजहि उचित रुचिरासन दए।
कौसिक बसिष्ठहि पूजि पूजे राउ दै अंबर नए॥१५३॥

देत अरघ रघुबीरहि मंडप लै चलीं।
करहिं सुमंगल गान उमँगि आनँद अलीं॥१५४॥
बर बिराज मंडप महँ बिस्व बिमोहइ।
ऋतु बसंत बनमध्य मदन जनु सोहइ॥१५५॥
कुल बिवहार, बेदबिधि चाहिय जहँ जस।
उपरोहित दोउ करहिं मुदित मन तहँ तस॥१५६॥
बरहि पूजि नृप दीन्ह सुभग सिंहासन।
चलीं दुलहिनिहिं ल्याइ पाइ अनुसासन॥१५७॥
जुबति जुत्थ महँ सीय सुभाइ बिराजइ।
उपमा कहत लजाइ भारती भाजइ॥१५८॥
दुलह दुलहिनिहि देखि नारि नर हरषहिं।
छिनु छिनु गान निसान सुमन सुर बरषहिं॥१५९॥
लै लै नाउँ सुआसिनि मंगल गावहिं।
कुँवर कुँवरि हित गनपति गौरि पुजावहिं॥१६०॥
अगिनि थापि मिथिलेस कुसोदक लीन्हेउ।
कन्यादान बिधान संकलप कीन्हेउ॥१६१॥
संकलिप सिय रामहि समर्पी सील सुख सोभामई।
जिमि संकरहि गिरिराज गिरिजा, हरिहि श्री सागर दई॥
सिंदूरबंदन होम लावा होन लागीं भाँवरी।
सिलपोहनी करि मोहनी मन हर्यो मूरति साँवरी॥१६२॥

यहि बिधि भयो बिवाह उछाह तिहुँपुर।
देहिं असीस मुनीस सुमन बरषहिं सुर ॥१६३॥
मनभावत विधि कीन्ह, मुदित भामिनि भई।
बर दुलहिनिहि लेवाइ सखी कोहबर गई ॥१६४॥
निरखि निछावरि करहिं बसन मनि छिनु छिनु।
जाइ न बरनि बिनोद मोदमय सो दिनु ॥१६५॥
सियभ्राता के समय भोम तहँ आयउ।
दुरीदुरा करि नेगु सुनात जनायउ ॥१६६॥
चतुर नारिवर कुँवरिहि रीति सिखावहिं।
देहिं गारि लहकौरि समो सुख पावहिं ॥१६७॥
जुआ खेलावत कौतुक कीन्ह सयानिन्ह।
जीति हारि-मिस देहिं गारि-दुहुँ रानिन्ह ॥१६८॥
सीयमातु मन मुदित उतारति आरति।
को कहि सकइ अनंद मगन भइ भारति ॥१६९॥
जुवतिजूथ रनिवास रहस बस यहि विधि।
देखि देखि सिय राम सकल मंगलनिधि ॥१७०॥

मंगलनिधान बिलोकि लोयन-लाह लूटति नागरी।
दइ जनक तीनिहु कुँवर कुँवरि बियाहि सुनि आनँद भरी ॥
कल्यान मो कल्यान पाइ बितान छवि मन मोहई।
सुरधेनु, ससि, सुरमनि सहित मानहुँ कलपतरु सोहई ॥१७१॥

जनक-अनुज तनया दुइ परम मनोरम।
जेठि भरत कहँ ब्याहि रूप रति सय सम ॥१७२॥
सिय लघु-भगिनि लषन कहँ रूप उजागरि।
लषन अनुज श्रुतिकीरति सब गुन आगरि ॥१७३॥
राम बिवाह समान ब्याह तीनिउ भए।
जीवन फल, लोचन-फल, बिधि सब कहँ दए ॥१७४॥

दाइज भयउ विविध-विधि, जाइ न सो गनि ।
दासी, दास, बाजि, गज, हेम, बसन, मनि ॥१७५॥
दान मान परमान प्रेम पूरन किए ।
समधी सहित बरात विनय बस करि लिए ॥१७६॥
गे जनवासेहि राउ, सग सुत सुतवहु ।
जनु पाए फल चारि सहित साधन चहुँ ॥१७७॥
चहुँ प्रकार जेंवनार भइ बहु भाँतिन्ह ।
भोजन करत अवधपति सहित बरातिन्ह ॥१७८॥
देहिं गारि वर नारि नाम लै दुहुँ दिसि ।
जेंवत बढेउ अनन्द, सोहावनि सो निसि ॥१७९॥

सो निसि सोहावनि, मधुर गावनि, बाजने बाजहिं भले ।
नृप कियो भोजन पान पाइ प्रमोद जनवासहि चले ॥
नट भाट मागध सूत जाचक जस प्रतापहि बरनहीं ।
सानद भूसुर वृ द मनि गज देत मन करपै नहीं ॥१८०॥

करि करि विनय कछुक दिन राखि बरातिन्ह ।
जनक कीन्ह पहुनाइ अगनित भातिन्ह ॥१८१॥
'प्रात बरात चलिहि' सुनि भूपति भामिनि ।
परि न विरह बस नींद बीति गइ जामिनि ॥१८२॥
खरभर नगर, नारि नर विधिहि मनावहिं ।
बार बार ससुरारि राम जेहि आवहिं ॥ १८३ ॥
सकल चलन के साज जनक साजत भए ।
भाइन्ह सहित राम तब भूप भवन गए ॥ १८४ ॥
सासु उतारि आरती करहिं निछावरि ।
निरखि निरखि हिय हरषहिं मूरति साँवरि ॥ १८५॥
माँगेउ बिदा राम तब, सुनि करुना भरी ।
परिहरि सकुच सप्रेम पुलकि पायन्ह परी ॥ १८६ ॥

सो समौ कहत न बनत कछु सब भुवन भरि करुना रहे।
तब कीन्ह कोसलपति पयान निसान बाजे गहगहे ॥ १९८ ॥

पथ मिले भृगुनाथ हाथ फरसा लिए ।
डाटहिं आखि देखाइ कोप दारुन किए ॥ १९९ ॥
राम कीन्ह परितोप रोप रिस परिहरि ।
चले सौंपि सारग सुफल लोचन करि ॥ २०० ॥
रघुवर-भुज-बल देखि उछाह बरातिन्ह ।
मुदित राउ लखि सन्मुख विधि सब भाँतिन्ह ॥ २०१ ॥
एहि विधि ब्याहि सकल सुत जग जस छायउ ।
मगलोगनि सुख देत अवधपति आयउ ॥ २०२ ॥
होहिं सुमगल सगुन सुमन सुर बरपहिं ।
नगर कोलाहल भयउ नारि नर हरपहिं ॥ २०३ ॥
घाट बाट पुर द्वार बजार बनावहिं ।
बीथी सींचि सुगध सुमगल गावहिं ॥ २०४ ॥
चौकें पूरें चारु कलस ध्वज साजहिं ।
विविध प्रकार गहगहे बाजन बाजहिं ॥ २०५ ॥
बदनवार वितान पताका घर घर ।
रोपें सफल सपल्लव मगल तरुवर ॥ २०६ ॥

मगल विटप मञ्जुल विपुल दधि दूब अच्छत रोचना।
भरि थार आरति सजहिं सब सारग-सावक-लोचना ॥
मन मुदित कौसल्या सुमित्रा सकल भूपति-भामिनी ।
सजि साजि परिछन चलीं रामहिं मत्त-कुंजरगामिनी ॥ २०७ ॥

बधुन्ह सहित सुत चारिउ मातु निहारहिं ।
बारहिं बार आरती मुदित उतारहिं ॥ २०८ ॥
करहिं निछावरि छिनु छिनु मंगल मुद भरीं ।
दुलह दुलहिनिन्ह देखि प्रेम-पय निधि परीं ॥ २०९ ॥

देत पाँवडे अरघ चलीं लै सादर ।
उमगि चलेउ आनंद भुवन भुइँ बादर ॥ २१० ॥
नारि उहार उघारि दुलहिनिन्ह देखहिं ।
नैन-लाहु लहि जनम सफल करि लेखहिं ॥ २११ ॥
भवन आनि सनमानि सकल मंगल किए ।
बसन कनक मनि धेनु दान बिप्रन्ह दिए ॥ २१२ ॥
जाचक कीन्ह निहाल असीसहिं जहँ तहँ ।
पूजे देव पितर सब राम उदय कहँ ॥ २१३ ॥
नेगचार करि दीन्ह सबहि पहिरावनि ।
समधी सकल सुआसिनि गुरुतिय पावनि ॥ २१४ ॥
जोरी चारि निहारि असीसत निकसहिं ।
मनहुँ कुमुद बिधु उदय मुदित मन बिकसहिं ॥ २१५ ॥
बिकसहिं कुमुद जिमि देखि बिधु भइ अवध सुख सोभामई ।
* एहि जुगुति राम बिवाह गावहिं सकल कबि कीरति नई ॥
उपवीत ब्याह उछाह जे सिय राम मंगल गावहीं ।
तुलसी सकल कल्यान ते नर नारि अनुदिनु पावहीं ॥ २१६ ॥



जानकी-मंगल

(टिप्पनियाँ)

१-शब्दार्थ—गिरिजापति = गिरि = पर्वत + जा = उत्पन्न हुई, पहाड़ से उत्पन्न हुई पार्वती। गौरी पार्वती। गिरापति = गिरा = सरस्वती का पति अर्थात् ब्रह्मा। सा (शा) रद = शारदा, सरस्वती। शेष = शेषनाग। स्रुति = श्रुति, वेद।

अर्थ—गुरु (श्रीनरहरिदासजी), गणेश, शिव, पार्वती, ब्रह्मा, सरस्वती, शेषनाग, अच्छे कवि, वेद और सरलमति (छल कपट रहित बुद्धि) वाले सत।

२-शब्दार्थ—विनय = विनती करना। यथामति = बुद्धि के अनुसार।

अर्थ—इन सबको विनय पूर्वक हाथ जोड़ कर शिर नवाता (प्रणाम करता) हूँ, और अपनी बुद्धि के अनुसार सीता और राम के विवाह (की कथा) को गाता हूँ।

३-शब्दार्थ—स्वयम्बर = अपनी इच्छानुसार वर वरना।

अर्थ—आनन्द दायक स्वयम्बर (स्वयम्बर की कथा—यह जानकी मगल) अच्छे दिन बनाया है। (इसको) कानों से सुनने से श्रीसीताजी और रघुनाथजी (सुनने वाले के) हृदय में वास करते हैं।

४-शब्दार्थ—बखानिय = बखाना, वर्णन किया। भूमितिलक = पृथ्वी के तिलक के सदृश अर्थात् भूमण्डल भर में श्रेष्ठ। तिरहुत = मिथिला, बिहार प्रान्त का एक जिला और नगर।

अर्थ—वेदों के द्वारा वर्णित पवित्र और सुहावने तिरहुत देश को तीनों लोकों में भूमि के तिलक के समान जानिये।

५-शब्दार्थ—परम = अत्यन्त। उजागर = विख्यात, चमकदार। लच्छि = लक्ष्मी। प्रकटी = उत्पन्न हुई।

अर्थ—वहाँ (तिरहुत देश में) अति सुन्दर जनकपुर नामक नगर बसता है, जिसमें सब सुखों की खानि लक्ष्मी (रूपिणी) श्रीसीताजी प्रकट हुई।

६-शब्दार्थ—नरनायक = नरेश, राजा। गुन (ण) अवधि = गुणों की सीमा। पटतर = उपमा।

अर्थ—उस नगर में सब गुणों की अवधि (जिससे अधिक गुणी न हो सके) और अपनी समानता योग्य दूसरा व्यक्ति न रखने वाले जनक नामक राजा रहते थे।

७-शब्दार्थ—नरवइ = (नरपति) राजा। सुता = लड़की। भै = हुई। जासु = जिसकी।

अर्थ—सब मंगलों (सुखों या गुणों) वाली श्रीसीताजी जिनकी पुत्री हुई, उन जनक के समान राजा न (पहले) हुआ, न (अब) है और न (आगे) होगा।

८-शब्दार्थ—मंत्रि = सलाह करके। सिवधनु = शिवजी का धनुष। धरिपन = प्रण करके।

अर्थ—राजा ने कुँवरि (सीताजी) को सयानी (विवाह योग्य) देख, गुरु (शतानन्दजी) और परिवार के मनुष्यों को बुला, सलाह करके शिवजी के धनुष की प्रतिज्ञा (शर्त) करके (सीता जी का) स्वयम्बर रचा।

९-शब्दार्थ—रुचिर = सुन्दर, रुचने वाला। चतुरानन = ब्रह्मा। सदेश = खबर।

अर्थ—राजा ने स्वयम्बर की रचना कर महादेवजी के धनुष की शर्त लगाई (जो धनुष को तोड़ेगा उसी को सीताजी

वरेंगी) स्वयंवर की रचना बहुत ही सुन्दर हुई, मानो ब्रह्माजी ने अपनी सारी चतुराई प्रकट करके दिखादी। इसके पश्चात् देश-देश में (सीय स्वयंवर का) सँदेश भेजा, जिसे सुन सुन सब राजा लोग सुखी होते थे और अपनी-अपनी मंडली सजा कर जनकपुर आते थे।

१०-शब्दार्थ—सी (शी) ल = स्वभाव, सच्चरित्र। वय = आयु। विरुद = (विरद) प्रशंसा, यश। पुरन्दर = इन्द्र। निकर = समुदाय, झुण्ड। अवनी = पृथ्वी।

अर्थ—(स्वयंवर में आने वाले राजा) सुन्दरता, शील, अवस्था, कुल, प्रतिष्ठा, बल, और समाज आदि सब बातों में अच्छे थे। (जनकपुर को जाते हुए वे लोग ऐसे मालूम होते थे) मानो इन्द्रों के समुदाय (स्वर्ग से) उतर कर पृथ्वी पर आ रहे हों।

११-शब्दार्थ—दानव = दैत्य, दनु की सन्तान। किन्नर = एक जाति विशेष, देवताओं के गवैये। अहि=साँप, नाग जाति के लोग। कहा जाता है कि किन्नरों का मुंह घोड़े का सा और शरीर आदमी का सा होता है। नाग लोगों के कमर से ऊपर का भाग मनुष्यों का सा और नीचे का सर्प का सा होता है।

अर्थ—(सीताजी के स्वयंवर का समाचार) सुन दैत्य, देवता, राक्षस, किन्नर (देवताओं की एक विशेष जाति—देवताओं के गायक) और नाग जाति के लोग भी प्रसन्न मन हो राजाओं का सा रूप बना कर (जनकपुर को) चले।

१२-शब्दार्थ—पुर-पैठहिं = नगर में प्रविष्ट होते हैं। धरहिं धनुधाय = दौड़ कर धनुष उठाते हैं। नाइसिर = सिर नवाकर, लज्जित होकर।

अर्थ—(स्वयंवर में जाने वालों का ऐसा तांता बंध गया है कि) कोई (अपने घर से) चल रहा है, कोई बीच मार्ग में है और कोई (जो जनकपुर पहुँच चुके हैं वे) नगर में प्रवेश कर रहे हैं। (स्वयंवर भूमि में पहुँचे हुओं में से) कोई धनुष को उठाते हैं पर (जब धनुष नहीं उठता तो लज्जा से) सिर झुका कर बैठ जाते हैं।

१३-शब्दार्थ—रंगभूमि = नाटक करने का स्थान, यहाँ धनुषयज्ञ के मण्डप से मतलब है। ललकि = लालसा पूर्वक, उत्सुकता से। लुभाहिं = मुग्ध हो जाते हैं। पारहिं = सकते हैं।

अर्थ—(इन स्वयंवर में आए हुए राजाओं में से) कोई रंगभूमि (की रचना) और नगर (की शोभा) का तमाशा देखते हैं, और (वहाँ के मनोरम दृश्यों में) उनके नेत्र और मन ललचा कर ऐसे मुग्ध हो गए हैं कि (वहाँ से) उन्हें लौटा नहीं सकते।

१४-शब्दार्थ—सिहाहिं = मन ही मन प्रसन्न होते हैं। भीर=भीड़।

अर्थ—(कोई राजा आगन्तुकों का) सम्मान करते हुए जनक को देख कर सिहाते हैं (प्रसन्न होते हैं)। जनकपुरी के बाहर और भीतर इतनी भीड़ है कि वर्णन नहीं किया जाता।

१५-शब्दार्थ—कोलाहल=हल्ला। निसान = नगाड़े-बाजे। उछाह = उत्साह। कापहँ = किस से।

अर्थ—(जनकपुर में) कहीं गाना होता है, कहीं निसान (नगाड़े) बजते हैं, कहीं (भीड़ भाड़ का) शोर हो रहा है, और कहीं खेल-तमाशे होरहे हैं। सीताजी के विवाह के उत्साह का वर्णन किससे किया जा सकता है?

१६-शब्दार्थ—गाधि सुवन = राजा गाधि के सुवन (पुत्र)। विश्वामित्र। सिधायउ = सिधारे।

अर्थ—(जब जनकनगर में सीताजी के स्वयंवर की तय्यारी हो रही थी) उसी समय विश्वामित्रजी अयोध्यापुरी में पधारे। राजा (दशरथ) ने उनका सम्मान किया और उन्हें घर ले आए।

१७-शब्दार्थ—पहुनाई = महमानदारी, आतिथ्य। पाहुन = महमान। सुकृत = पुण्य।

अर्थ—(राजा दशरथ ने विश्वामित्र जैसा) प्यारा अतिथि पाकर उनका पूजा तथा आतिथ्य किया, और बोले 'मेरे समान किसी ने भी पुण्य न किए होंगे।'

१८-शब्दार्थ—बखानहीं = प्रशंसा करते हैं। भाग=भाग्य। सोहाग = सौभाग्य। भरीं=युक्त। सुतन्ह = पुत्रों का।

अर्थ—"मेरे समान किसी ने भी सुकर्म नहीं किए" ऐसे (दशरथ के वचन) सुन प्रसन्न हुए विश्वामित्रजी राजा की प्रशंसा करते थे। राजा (दशरथ) और मुनि (विश्वामित्र) के परस्पर मिलने के सुख को उन्हीं (राजा और मुनि) के मन जानते थे। (इसके अनन्तर) प्रेम, भाग्य, सौभाग्य, शील सौन्दर्य और बहुत से भूषणों भरीं (युक्त) रानियाँ (कौशल्या आदि) हृदय में प्रसन्न हो, पुत्रों (रामचन्द्रादि) सहित आकर ऋषि के पैरों में पड़ीं।

१९-शब्दार्थ—कौशिक = विश्वामित्र। कल्पलता=इच्छित फल देने वाली बेल विशेष।

अर्थ—विश्वामित्रजी ने (रानियों को) आशीर्वाद दिया (जिसे पाकर) वे सब इस भाँति प्रसन्न हुईं, जैसे अमृतरस से सींची हुई, कल्पलता नई (हरी भरी) होजाती है।

२०-शब्दार्थ—जोहेउ = देखा। नव नीर = आसू। मोहेउ = मोहित कर लिया।

अर्थ—जब मुनि ने भाइयों सहित रामचन्द्रजी को देखा, तो उनके (विश्वामित्रजी के) नेत्रों में (प्रसन्नता के) आंसू भर आए और शरीर पुलकित हो गया। (चारों भाइयों के) रूप ने मुनि के मन को मोह लिया।

२१-शब्दार्थ—परसि=छू कर। पयोधि = समुद्र। मगन = मस्त, लीन, प्रसन्न।

अथ—(उस समय विश्वामित्रजी) प्रसन्न होकर (चारों राजकुमारों के) शिर को अपने कमल समान हाथों से छूकर (उन्हें) हृदय से लगाते हैं। प्रेम सागर में डूबे हुए मुनि (उस प्रेम सागर का) पार नहीं पाते।

२२-शब्दार्थ—चाहहि = चाहतेहैं, प्रेम करते हैं।

अर्थ (विश्वामित्रजी उन राजकुमारों की) मधुर और मनोहारिणी मूर्त्तियों को आदर सहित प्रेम करते हैं, और बार बार राजा दशरथ के पुण्यों की प्रशसा करते हैं।

२३-शब्दार्थ—सुहावन = सुहावना। पावन=पवित्र।

अर्थ—(इसके अनन्तर) राजा ने हाथ जोड़ कर उत्तम और सुहावने वचन कहे—"हे मुनीश्वर (मैं आज) आपके पवित्र चरणों को देख कर कृतार्थ हो गया।

२४-शब्दार्थ—पूरन (पूर्ण) काम = निष्काम, या जिसकी कामना पूरी हो गई हैं, अथवा जो कामना पूरी करने वाले हैं। बूझत = पूछते हुए।

अर्थ—हे स्वामी, आप पूर्णकाम (इच्छा रहित) और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों फलों के देने वाले हो, इसलिए

हे मुनिराज (मैं आपसे) यह पूँछने में डरता हूँ कि आप किस कार्य के लिए पधारे ।

२५-शब्दार्थ—काजहिं = कामसे ।

अर्थ—विश्वामित्रजी ने (उपर्युक्त) राजा के वचन सुन कर उसकी (राजा की) सराहना की और (फिर कुछ) धर्म-कथा कह कर जिस काम के लिए गए थे वह भी कहा ।

२६-शब्दार्थ—महीसहि = राजा को ।

अर्थ—जब मुनीश्वर ने राजा को कार्य बताया तब राजा स्नेह और सत्य के वश में हो गए और उनसे उत्तर न दिया गया ।

२७-शब्दार्थ—उतरु = उत्तर । रघुपति = श्रीरामचन्द्र । घनी = बहुत ।

अर्थ—वशिष्ठ मुनि ने जब यह देखा कि राजा से विश्वामित्रजी की बात (याचना) का कुछ उत्तर देते नहीं बना तो उन्होंने उसे (राजा को) समझाया । विश्वामित्रजी के तप और तेज का वर्णन करके कुछ रामचन्द्रजी का बल तथा प्रताप भी जनाया (बताया) । वशिष्ठजी के वचन सुन कर राजा दशरथ ने कुछ धैर्य धारण किया और हाथ जोड़ कर कहा कि दयासागर और सज्जन शिरोमणि से अधिक विनय करनी भी अच्छी नहीं ।

२८-शब्दार्थ—राखनहार = रक्षक या रखवाला ।

अर्थ—हे नाथ ! घर में और वन में (सब जगह) मुझे बालकों तथा नगर और कुटुम्ब के मनुष्यों सहित रखने वाला आपका अनुग्रह ही है ।

२९-शब्दार्थ—सन = से । गहे = पकड़े ।

अर्थ—राजा ने मुनि से बहुत प्रकार से दीन वचन कहे और राम तथा लक्ष्मण दोनों भाइयों को (मुनि के लिए)

सौंप कर उनके (विश्वामित्र के) चरण कमल गहे (छुए या पकडे)।

३०-शब्दार्थ—आयसु = आदेश, आज्ञा। कटि = कमर। निषग = तरकस। पीत पट = पीला वस्त्र। करनि = हाथों में। सर = शर, वाण।

अर्थ—(राम और लक्ष्मण) माता-पिता से (विश्वामित्र जी के साथ जाने की) आज्ञा पाकर गुरु (वशिष्ठजी) के पैरों पडे। (उस समय राम-लक्ष्मण) कमर में तरकस, पीले वस्त्र और हाथों में धनुष वाण धारण किये हुए थे।

३१-शब्दार्थ—सग दिये मन = मन साथ दे दिया, स्वयम् नहीं गये पर मन साथ गया। बेगि = जल्द। रघुनन्दन = रघु को प्रसन्न करने वाले रामचन्द्र।

अर्थ—(जब राम और लक्ष्मण विश्वामित्रजी के साथ जाने लगे तब) नगर निवासियों एव राजा और रानियों ने (अपने) मन (राम और लक्ष्मण के) साथ कर दिये (अर्थात् वे लोग शरीर से तो उनके साथ नहीं गए पर मन उन्हीं में लगा रहा) और कहा, हे रघुनन्दन! काज (विश्वामित्रजी के यज्ञ की रक्षार्थ राक्षसों का विनाश) करके सकुशल जल्दी लौटना।

३२-शब्दार्थ—ईस = महादेव। खसै जनि वार = बाल भी बाका न हो। गहर = देर। जनि = न। मनाइ = मना कर, विनती करके।

अर्थ—(सब लोग) महादेव की मनौती करके (राम-लक्ष्मण को) आशीर्वाद देते हैं कि (तुम राक्षसों पर) जीत और (लोक में) यश पाओ, (तुम्हारा और तो क्या) स्नान करते हुए बाल भी न गिरे और तुम देर में न आओ अर्थात् शीघ्र ही लौट आओ।

३३-शब्दार्थ—सानुज=अनुज अर्थात् छोटे भाई सहित। नए=नवे, झुके।

अर्थ—(राम के मुनि विश्वामित्र के साथ) चलते समय सभी पुरवासी रामजी के वियोग से व्याकुल हो गए, और भरतजी अनुज (छोटे भाई शत्रुघ्न) सहित प्रेम पूर्वक राम के पैरों में झुके।

३४-शब्दार्थ—जनु=मानो। मुनि=विश्वामित्र से अभिप्राय है। गवन=गमन, जाना।

अर्थ—(राम लक्ष्मण के विश्वामित्र के साथ चलते समय) शुभ शकुन होते थे, मानो आगे होने वाले किसी मंगल की सूचना देते थे। उसी समय राम लक्ष्मण ने विश्वामित्र के साथ गमन किया।

३५-शब्दार्थ—सुखमा=शोभा। किसो (शो) र=१० से १५ वर्ष की आयु वाला। निधि=खज़ाना। सकेलि=एक जगह जमा करके। विरचे=बनाया।

अर्थ—(राम-लक्ष्मण) क्रम से श्याम और गोरे रंगवाले तथा किशोर (१० और १५ वर्ष के बीच की) अवस्था के और मनोहरता के खज़ाने हैं। मानो ब्रह्मा ने (संसार भर की) समस्त शोभा इकट्ठी करके उन्हें रचा है।

३६-शब्दार्थ—बनाइ=बना कर। बाँची=बची। रंचो=रंचक मात्र, ज़रासी भी। रुचिरता=सुन्दरता। छवि=शोभा। दिन-नाथ=सूर्य। मधु=चैत्र। माधव=वैशाख।

अर्थ—ब्रह्मा ने (राम लक्ष्मण को) सम्भाल कर इतना सुन्दर बनाया है कि उसके पास थोड़ी सी भी सुन्दरता नहीं बची अर्थात् ब्रह्मा ने सारी सुन्दरता राम लक्ष्मण के बनाने में ही खर्च कर दी है। चौदहों भुवनों में खोज और विचार के

देखने पर भी (राम-लक्ष्मण) की उपमा कहीं नहीं मिली। विश्वामित्र के साथ मार्ग में जाते हुए राम लक्ष्मण जैसे सुशोभित थे वही शोभा तुलसीदासजी के हृदय में बस रही है। (राम लक्ष्मण को साथ लेकर जाते हुए विश्वामित्र ऐसे मालूम होते थे) मानो सूय, चैत्र और वैशाख को साथ लेकर उत्तर दिशा को जाते हों।

३७-शब्दार्थ—सर=तालाब। बिपुल=बहुत। विहग=पक्षी। मृग=हिरन।

अर्थ—(मार्ग में जाते हुए राम-लक्ष्मण) बहुत से पहाड़, वृक्ष, बेल, नदी और तालाबों को देखते हैं। कभी बालकपन के (चञ्चल) स्वभाव से दौड़ने लगते और कभी (जंगल के) पशु-पक्षियों को रोकने लगते थे।

३८-शब्दार्थ—सकुचहिं=शरमाते हैं। फिरआवहिं=लौट आते हैं। किस (श) लय=कोंपल।

अर्थ—(दोनों भाई) मुनि से सकुचाते थे। (कभी वन्य पशु पक्षियों को घेरते हुए इधर उधर चले जाते थे और) ऋषि का भय मान कर फिर लौट आते थे। कभी फूल, फल और पत्तों को तोड़ तोड़ कर उनकी माला बनाते थे।

३९-शब्दार्थ—विनोद=हँसी-खेल। उर=हृदय। सुमन=फूल। घन=मेघ, बादल।

अर्थ—(उन दोनों बालकों के) खेल देख कर विश्वामित्रजी के हृदय में प्रेम और आनन्द उत्पन्न होता था। (मार्ग में चलते हुए राम लक्ष्मण पर) बादल छाया करते और देवता फूल बरसाते जाते थे।

४०-शब्दार्थ—ताड़का=एक राक्षसी। विद्या=शस्त्र विद्या। रहस्य=भेद। दिये=बताए, समझाए।

अर्थ—राम ने ताड़का राक्षसी को मार दिया। मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र ने राम को सब भांति योग्य जानकर उन्हें शस्त्रास्त्र विद्या के मन्त्र और गुप्तभेद बता दिये।

४१-शब्दार्थ—विप्र भय मोचन = ब्राह्मण का भय दूर करने वाले (रामचन्द्रजी)

अर्थ—ब्राह्मणों के भयों को दूर करने वाले (श्रीराम) मार्ग के लोगों के मनों और नेत्रों को सफल करते हुए विश्वामित्र के आश्रम को गए।

४२-शब्दार्थ—निसा (शा) चर = रात में चलने वाले राक्षस। निकर = झुण्ड। वृन्द = झुण्ड। जग्य = यज्ञ।

अर्थ—(राम-लक्ष्मण ने) राक्षसों के समुदाय को मारकर (विश्वामित्र के) यज्ञ कराये और मुनि-समाज को निर्भय कर दिया इसलिए संसार ने उनका यशोगान किया।

४३-शब्दार्थ—मन्धारि = हृदय में विचार कर। धनुप मख = धनुष यज्ञ। मिस करि = बहाना करके।

अर्थ—महामुनि (विश्वामित्रजी) ब्राह्मण, साधु और देवताओं के कार्य को मन में विचार, धनुषयज्ञ का बहाना करके राम को (जनकपुरी को लिवा चले)।

४४-शब्दार्थ—गोतम नारि = गोतम मुनि की स्त्री अहल्या। उधारि = उद्धार करके। महामुनि = विश्वामित्र।

अर्थ—विश्वामित्रजी (श्रीराम के द्वारा) गोतम मुनि की स्त्री (अहल्या) का उद्धार कर और उसे पति के स्थान (गोतमजी के पास स्वर्ग) में भेज कर, राम को जनकपुर ले गए।

४५-शब्दार्थ—राव = राजा। सचिव = मन्त्री। भूसुर = पृथ्वी के देवता, ब्राह्मण। अनुभवत = अनुभव करते हैं।

अर्थ—गाधि-सुत (विश्वामित्र) राम को (जनकपुर) ले गये। राम-लक्ष्मण जनकपुर को देखकर हृदय में अति प्रसन्न हुए। (राम-लक्ष्मण का सहित विश्वामित्र का) आना सुनकर (राजा जनक) मन्त्री गुरु और ब्राह्मणों को साथ लेकर (विश्वामित्रजी का) स्वागत करने के लिए आगे (मार्ग ही में) गए, और उनके पाँव छुए एवं आशीर्वाद पाया। (राजा जनक ने महामुनि विश्वामित्रजी का) बहुत ही आदर-सत्कार किया। राम को देख कर तो जनक ऐसा अनुभव कर रहे थे मानो (ईश्वर ने उनको) ब्रह्मानन्द से भी सौगुना बढ़ कर सुख दिया हो।

४६-शब्दार्थ—अनुरागेउ = अनुरक्त होगया। विदेह = ब्रह्म में लीन होकर अपने शरीर की भी सुधि भूल जाने वाला जनक। विराग = वैराग्य। विरागेउ = दूर हो गया।

अर्थ—(राजा जनक) श्रीरामचन्द्र की मनोहर मूर्ति देखकर मन ही मन (उनसे) प्रेम करने लगे। वे (जनक) विदेह (इतने ज्ञानी जिन्हें अपनी शरीर की सत्ता का भी बोध न हो) होकर भी प्रेम में बँध गए और उनका वैराग्य भी उनसे वैराग्य करने लगा—अर्थात् राम को देख कर जनक का सब ब्रह्मज्ञान खो गया।

४७-शब्दार्थ—भवसागर = ससार रूपी समुद्र। मानि(णि) क = लाल रग का एक रत्न। नागर = चतुर।

अर्थ—राजा जनक (राम लक्ष्मण को देख) प्रसन्न होते एव हृदय में उन (राम-लक्ष्मण) की सराहना करते हैं और कहते हैं कि, (यह) ससार सागर भी (जिसे ज्ञानी लोग असार बताते हैं) अच्छा है, जिसमें (राम-लक्ष्मण) सदृश रत्न उत्पन्न होते हैं। ब्रह्मा भी बडा चतुर है।

४८-शब्दार्थ—पुन्यपयोधि = पुण्य क समुद्र परम पुण्यात्मा। सिसु = शिशु, बालक। सुरतरु = कल्पवृक्ष। सुधा= अमृत। अमरनि = देवताओं को। वरु = भी।

अर्थ—(इन बालकों के) माता-पिता बड़े भारी पुण्यात्मा हैं और ये बालक कल्पवृक्ष समान (सुख देने वाले) हैं। (इनका) सौन्दर्यामृत देवताओं के भी नेत्रों को सुख देता है।

४६-शब्दार्थ—सुकृती = पुण्यात्मा। गौर = गोरा। धनुसा (शा) यक = धनुष बाण।

अर्थ—(राजा जनक विश्वामित्रजी से कहने लगे) हे मुनीश्वर, कहिये, धनुष बाण धारण किए हुए, शोभा के धाम (ये) गोरे और साँवले किस पुण्यात्मा के कुँवर हैं।

५०-शब्दार्थ—विषय विमुख = भोग विलास से विरक्त। सेइ = सेवन करके। परमारथ=मोक्ष। मगन = मग्न, खुश। स्वारथ = हित।

अर्थ—हे मुनीश्वर (यद्यपि) मेरा मन परमार्थ (ब्रह्म प्राप्ति के मार्ग) का सेवन करके (सांसारिक) विषयों से पराङ्मुख होगया है, तो भी वह इन राम लक्ष्मण को देख और (इनके द्वारा) अपना भारी स्वार्थ साधन होता जान कर मुग्ध होगया है।

५१-शब्दार्थ—महिपालक = महि अर्थात् पृथ्वी का पालन करने वाला राजा।

अर्थ—विश्वामित्रजी ने प्रसन्न हो प्रेम पूर्वक कहा—हे राजन्! ये बालक मुक्ति स्वरूप और शुद्ध चैतन्य मय हैं।

५२-शब्दार्थ—पूषन बस विभूषन = सूर्य वंश के श्रृङ्गार। नन्दन=पुत्र, आनन्द देने वाला। सुरारि = राक्षस। निकन्दन= जड़ खोदने वाला, नाशक।

अर्थ—(ये बालक) सूर्यवंश के भूषण और राजा दशरथ के पुत्र हैं। (इनके) नाम राम और लक्ष्मण हैं, (ये) राक्षसों के मारने वाले हैं।

५३-शब्दार्थ—परिपूर्ण = भरा हुआ। पन आपन = अपना प्रण। लाग = लगा। बिसूरन = दुःख मानना, आखों में आंसू भर लाना।

अर्थ—(राजा जनक) सौन्दर्य, शील, अवस्था और कुल (आदि) से श्रीराम को परिपूर्ण (सब प्रकार योग्य) जानकर और उधर अपनी कठिन प्रतिज्ञा का स्मरण करके पछताने लगे।

५४-शब्दार्थ—धीरज आनि के = धीरज धर कर। सुभग = सुन्दर।

अर्थ—(राजा जनक अपने) प्रण को सोच कर पछताने लगे (लेकिन) फिर मन में धैर्य लाकर (धारण करके) और (विश्वामित्रजी तथा राम-लक्ष्मण का बहु भाँति सत्कार करके उन्हें रंगशाला) दिखाने के लिए ले गये। (यज्ञशाला की) सुन्दर रचना को (देख कर) विश्वामित्र ने सराहा (जिसे) सुन कर जनक प्रसन्न हुए। इसके अनन्तर (जनक ने) राम-लक्ष्मण सहित विश्वामित्रजी को सुन्दर सिंहासन दिया।

५५-शब्दार्थ—राजत = शोभित हैं। जुगल = दो, दोनों। शरद = क्वार और कार्तिक की ऋतु। विधु = चन्द्रमा। उभय = दो। नखत = नक्षत्र। धरनी धनि = धरणी धन्य अर्थात् पृथ्वी को धन्य करने वाले राजा।

अर्थ—(रंगभूमि में उपस्थित) राजसमाज में दोनों रघु-वंशमणि (राम लक्ष्मण) ऐसे शोभित हैं मानो वे दोनों (राम और लक्ष्मण) दो शरच्चन्द्र हैं और शेष राजा लोग तारे हैं।

५६-शब्दार्थ—काकपक्ष=पटे, कौए के पर के समान मस्तक के दोनों भागों में एक प्रकार की केश रचना। बालकों की शिखा को भी काकपक्ष कहते हैं। सरोरुह=कमल। स (श) त कोटि=सौ करोड, असंख्य।

अर्थ—(राम और लक्ष्मण के) शिर पर सुन्दर काकपक्ष (पटे या जुलफें) हैं, कमल जैसे (उनके) नेत्र हैं। साँवले और गोरे (दोनों भाई) सैकडों करोड कामदेवों के भी अहंकार को दूर करने वाले हैं।

५७-शब्दार्थ—भृकुटी=भौंहें। कमानें=कमान। स्रवन=श्रवण। मनमानै=मन मुग्ध हो जाता है।

अर्थ—(राम लक्ष्मण के) माथे पर सुन्दर तिलक है और उनकी भौंहें कामदेवकी कमान की तरह तिरछी और सुन्दर हैं। कान के सुन्दर भूषणों को देखकर तो मन मुग्ध हो जाता है।

५८-शब्दार्थ—नासा=नाक। चिबुक=ठोडी। कपोल=गाल। अधर=ओंठ। रद=दाँत। बदन=मुख। सहज=स्वाभाविक।

अर्थ—(राम-लक्ष्मण के) नाक, ठोडी, गाल, होंठ और दाँत सुन्दर हैं। तथा मुख शरद्चन्द्र की निन्दा करने वाला (शरद ऋतु के चन्द्रमा से भी सुन्दर) और स्वभाव से ही मन को हरने वाला है।

५६-शब्दार्थ—उर=छाती। विशाल=बडा, चौडा। वृषकन्ध=बैल के पीठ के कुब या टीले से उभरे। उपवीत=जनेऊ। मुकुताफल=मोती।

अर्थ—राम और लक्ष्मण की छातियाँ चौडी हैं, कन्धे बैल के कन्धे की भाँति ऊँचे हैं, भुजायें अत्यन्त बलिष्ठ और सुन्दर हैं। वे दोनों पीले वस्त्र और गले में जनेऊ तथा मोतियों की माला पहने हैं।

६०-शब्दार्थ—निषग = तरकस । जोहन लायक = देखने योग्य।

अर्थ—दोनों भाई कमर में तूणीर बाँधे तथा कर कमलों में धनुष वाण लिए हुए हैं। उनके सब अङ्ग मन को लुभाने वाले और देखने योग्य हैं।

६१-शब्दार्थ—जल लोचन = सजल नेत्र, प्रेमाश्रु।

अर्थ—राम-लक्ष्मण की कान्ति देख कर नगर निवासी अति प्रसन्न हुए, जिसके कारण उनके हृदय में आनन्द नेत्रों में प्रेमाश्रु और शरीर में पुलक (रोमाञ्च) भरे थे।

६२—शब्दार्थ—दुहु = दोनों। आइन्ह = आकर।

अर्थ—दोनों भाइयों को देखकर (जनकपुरकी) स्त्रियाँ आपस में कहती है कि जन्म लेकर संसार में आई हुई हमने आज जन्म लेने का फल पा लिया।

६३-शब्दार्थ—सिवहिं = शिवजी को। साँवरो = साँवला, श्याम रामचन्द्रजी। कुलिस कठोर = कुलिश अर्थात् वज्र के समान कठोर। मराल = हंस। मंदर = मंदराचल पहाड़। अस = ऐसा।

अर्थ—हमने संसार में जन्म लेकर नेत्रों का लाभ पा लिया (इस तरह कहती हुई) सब (स्त्रियाँ) शिवजी से मनौती करती हैं कि सीताजी को (यह) साँवला (राम) वर मिलें और हम सब प्रसन्न होकर मंगल-गान गावें। (उनमें से) कोई कहती है कि (सखियो!) यह कुँवर (राम) छोटी अवस्था के हैं और शिव-धनुष वज्र के समान महा कठिन है। हंस के बच्चे (भला) मंदराचल को किस भाँति उठा लेंगे यह बात जनकजी को किसी ने नहीं समझाई।

६४-शब्दार्थ—निरास (श)=आशाहीन, नाउम्मेद। पन परिहर=प्रण छोड़ कर। वर=व्याहना।

अर्थ—राम को देखते ही (सीय स्वयंवर में आए) सब राजा लोग (सीताजी के मिलने की ओर से) निराश होगए (और सोचने लगे कि अब तो अवश्य ही) राजा जनक अपनी प्रतिज्ञा तोड़ कर सीताजी (इस) साँवले वर को दे देंगे।

६५-शब्दार्थ—भलि बात=अच्छी बात। लगि=लिए। खोइहि=खोदेगा, तोड़ देगा।

अर्थ—(आए हुए राजाओं में से) कोई कहते हैं कि, वर और दुलहिन के लिए जनक अपनी शर्त तोड़ देंगे (तो) अच्छी ही बात है। यह (राम और सीता का) विवाह (हुआ तो) अच्छा ही होगा।

६६-शब्दार्थ—सु (शु) चि=पवित्र। सुजान=जानकार, होशियार।

अर्थ—शुद्ध मन वाले सज्जन राजा कहते हैं कि हम को तो ऐसा मालूम होता है कि जहा तेज, प्रताप और सौन्दर्य हो वहीं बल भी समझना चाहिये। अर्थात् राम तेजस्वी प्रतापी और सुन्दर हैं तो बलवान भी अवश्य होंगे।

६७-शब्दार्थ—चितइ=देखना। रामतन=राम का शरीर या राम की ओर। गाल बजावहु=लम्बी चौड़ी बातें बघारते हो। लजान=शर्मा गया। बलउ= शक्ति भी।

अर्थ—(किन्हीं अहंकारी और मूर्ख राजाओं को स्वयं धनुष न उठा सकने पर भी राम के विरुद्ध बकवाद करते देख कर कोई सज्जन राजा कहने लगे कि, तुम) श्रीराम के शरीर की ओर देख भी तो सकते नहीं हो और (व्यर्थ) गाल

बजाते हो। भाग्यवश (तुम्हारा) यश तो (धनुष न उठा सकने के कारण) लज्जित हो ही गया अब (अपनी) बुद्धि को तो मत लजाओ।

६८-शब्दार्थ—अवसि = अवश्य। सरासन=शरासन, बाण का आसन, धनुष। नाक फूटिहि = नाक कट जायगी, सारी बात मिट्टी में मिल जायगी। असि = ऐसी।

अर्थ—(वही भले राजा औरों को सबोधन करके कहते हैं कि भाइयो,) राम के (धनुष उठाने के लिए) खड़े होते ही धनुष अवश्य टूट जायगा। और धनुष टूटतेही सब राजा लोग (निज निज घर) चले जायँगे, इस तरह नाक फूटेगी अर्थात् नाक कट जायगी।

६९-शब्दार्थ—कस = कैसे। कत = क्यों। नरपसु = नरपशु, मनुष्य के रूप में पशु।

अर्थ—(इसलिए हे भाइयो, रामचन्द्रजी के) सौन्दर्य रूपी अमृत-रस को नेत्र भर भर के क्यों नहीं पीते? (उनके दर्शन करके अपने) जन्म को कृतार्थ (सफल) क्यों नहीं करते? मनुष्य होकर भी पशु क्यों बनते हो?

७०-शब्दार्थ—दुहुँ दिसि = दोनों ओर। नील पीत = नीला और पीला। पाथोज = पाथ (पानी) से पैदा हुआ अर्थात् कमल। दिनकर = सूर्य।

अर्थ—विश्वामित्रजी के दोनों ओर राजकुमार (राम लक्ष्मण) विराजमान हैं, मानो नीले और पीले दो कमल पुष्पों के बीच में सूर्य विराजमान हो।

७१-शब्दार्थ—पानि (णि) = हाथ। सरोजनि=कमलों से। लालत = लाड करता है। बाल मनोजनि = कामदेव के बालकों को।

अर्थ—विश्वामित्रजी अपने कमल समान हाथों से (राम लक्ष्मण के शिरों पर सुशोभित) काक पक्षों (पटे रखे हुए बालों) को स्पर्श करते हैं (तो ऐसा मालूम होता है) मानो लाल कमल कामदेव के बालकों को प्यार करता हो।

७२-शब्दार्थ—जोवहु = देखते हो। विनकाज = अकारण, व्यर्थ। बिगोवहु = बिगोते हो, निन्दा करते हो। अनूप = अनुपम, लासानी। कैरव = कुमुद (सफेद कमल) जिसका रात्रि में चन्द्रमा के प्रकाश में खिलना बताया जाता है।

अर्थ—(भाई) कामदेव के समान मन को हरने वाली सुन्दर मूर्ति को आदरपूर्वक क्यों नहीं देखते, निष्प्रयोजन राजसमुदाय में लज्जा त्याग कर अपने आप को क्यों निन्दित करते हो। (इस भाँति) अच्छे राजा, अन्य राजाओं को शिक्षा देने और (आप श्रीरामजी की) अनुपम शोभा को देखने लगे। रघुवंश रूपी कुमुदिनी के (विकसित करने के लिए) चन्द्र समान (रामचन्द्रजी को) देख कर (राजाओं) के नेत्र चकोर की भाँति ठगे से रह गए।

७३-शब्दार्थ—निहारहिं = देखते हैं।

अर्थ—जनकपुर के नर-नारी रघुकुल के दीप समान श्री राम को देखते और प्रेम विवश हो राजा जनक को (ऐसी कठिन प्रतिज्ञा करने के कारण) दोष देते हैं।

७४-शब्दार्थ—एक = कुछ। दूषन = दोष। जनि = निषेधात्मक। वचन = प्रतिज्ञा।

अर्थ—कोई कहते हैं, भाई राजा अच्छा है, (उसे) दूषण मत लगाओ। । प्रतिज्ञा बिना तो राजा की शोभा ही नहीं है, जैसे बिना आभूषण के नाक की शोभा नहीं होती।

७५-शब्दार्थ—हमरे जान = हमारी समझ में। जनेस (श) = राजा। पनमिस = प्रण के बहाने से।

अर्थ—हमारी समझ में तो राजा ने बहुत ही अच्छा किया जो प्रतिज्ञा के बहाने से सबके नेत्रों को (रामजी के दर्शन रूपी) लाभ प्राप्त करा दिया।

७६-शब्दार्थ—जु = जो। पेज = प्रण, प्रतिज्ञा।

अर्थ—ऐसा पुण्यात्मा राजा जो कुछ भी मन में अभिलाषा करेगा, जगदीश्वर उसे अवश्य ही पूरी करेगा और उसकी पैज एव प्रतिज्ञा को रक्खेगा।

७७-शब्दाथ—जो = यदि। बोलि = बुला कर।

अर्थ—यदि राजा जनक (प्रतिज्ञा करने से पूर्व) रामचन्द्रजी के रूप और गुणों की प्रशसा सुन पाते तो (रामचन्द्र को) बुलाकर (उनके साथ) सीताजी का व्याह कर देते। (राजा ने श्रीराम को देखने तथा उनके रूप आदि की प्रशसा सुनने से पहले ही प्रतिज्ञा कर ली, इसमें) राजा को दोष नहीं है।

७८-शब्दार्थ—पंचमहँ = पचों के सामने। अजसु = अयश, निन्दा।

अर्थ—अब पञ्चों में प्रतिज्ञा करके यदि प्रण छोड़ दिया जाय तो, ब्रह्मा की गति तो जानी नहीं जाती (कि आगे क्या हो) पर ससार में अप्रतिष्ठा तो फैल ही जायगी।

७९-शब्दार्थ—अजहुँ = आज भी, अब भी।

अर्थ—अब भी श्रीरामजी अवश्य धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ा देंगे और (सीताराम) के विवाह के उत्साह में (तीनों लोकों के स्त्री-पुरुष) मगल गीत गावेंगे।

८०-शब्दार्थ—झरोखन्ह = जालीदार खिडकियों से। भामिनि=स्त्री। दामिनि=विजली। लसहिं=शोभा देते हैं।

अर्थ—रानियाँ खिडकियों से लग कर (रंगभूमि की शोभा देखने के लिए) झाँक रही हैं। (परस्पर) बातें करते हुए उन (रानियों) के दाँत ऐसे शोभित होते हैं मानो विजली चमक रही हो।

८१-शब्दार्थ—मृदु = कोमल, मीठे। निदरि = निरादर करके। ढिग = पास। अलौकिक = विचित्र, दुनिया से न्यारा।

अर्थ—(रानियों के दाँत ऐसे चमकते थे) जैसे विजली चमकती हो (और वे अपने) रूप से कामदेव की स्त्री के (उसके सर्वोत्कृष्ट सुन्दरी होने के) अहंकार को तिरस्कार करके (बडी) सुन्दरी शोभित हो रही थीं। (रानियों की) सखियों ने विश्वामित्रजी के पास (बैठे हुए) कुंवर (राम लक्ष्मण) दिखाए। (उनकी) शोभा को देख (रानियों के) मन मोहित हो गए। सीताजी की माता राम की अत्यन्त निराली सुन्दरता को देखकर (बहुत ही) प्रसन्न हुई और हृदय में कहने लगीं कि "कहाँ ये (सुकुमार) बालक और कहाँ (कमठ पृष्ठ सम कठोर) धनुष," उलटे विधाता की उलटी ही गति है।

८२-शब्दार्थ—मृदुमूरति = कोमल काय राजकुमार।

अर्थ—"कहाँ तो यह कठोर शिवजी का चाप और कहाँ यह सुकुमार (राम का) शरीर" रानी सखियों से ऐसी बातें कह-कह कर सोच करती थीं।

८३-शब्दार्थ—लोचन अतिथि = आँखों का मेहमान, दर्शन देने से अभिप्राय है। परिनामहिं=परिणाम में।

अर्थ—यदि विधाता श्रीरामजी के दर्शन न कराता, तो कोइ भी (ऐसी कड़ी प्रतिज्ञा करने के कारण) राजा जनक को दोष न देता।

८४-शब्दार्थ—असमंजस = द्विविधा, शशोपज। ससोच= चिन्तित।

अर्थ—पर अब (श्रीरामचन्द्रजी को देखकर) द्विविधा हो गई है, कुछ करते नहीं बनता। (रानी के इतना कहने पर और उसे) उदास देख कर सखियाँ समझाती हैं।

८५-शब्दार्थ—परिहरिय = छोड़ दीजिए, त्यागिए। आनिय= लाइए। फुर = सच।

अर्थ—(कि) हे देवी, चिन्ता को दूर करो और हृदय में प्रसन्नता धारण करो। श्रीरामजी धनुष को तोड़ देंगे (इस) बात को सच मानिये।

८६-शब्दार्थ—करतल = मुट्ठी में या हथेली पर। कि=क्या। आनहिं = लावेंगे।

अर्थ—(जिन) विश्वामित्रजी को (भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान) तीनों कालों का ज्ञान करतल (हाथ पर रक्खी हुई वस्तु के समान) है, वे क्या बिना बल वाले बालकों को स्वयंवर में ला सकते हैं ?

८७-शब्दार्थ—सुबाहु=राक्षस विशेष जो राम द्वारा मारा गया। सूदन = मारने वाला।

अर्थ—(इस भाँति) विश्वामित्रजी की महिमा सुन कर (जब) रानी को कुछ धैर्य हुआ, तब सखियों ने सुबाहु नामक राक्षस को मारने वाले (श्रीराम) का यश (रानी को) सुनाया।

८८-शब्दार्थ—बहुरि = फिर। हरषइ=प्रसन्न होती थी। करखइ = कंपित होता था, खिंचता था।

अर्थ--(राम जी का) यश सुन कर रानी के जी में कुछ भरोसा हुआ और हृदय में प्रसन्नता हुई। फिर श्रीराम को देख कर वात्सल्य भाव रानी के मन को हर्ष की ओर से खींच लेता है, (अर्थात् रानी का हर्ष अधिक देर तक स्थायी नहीं रहने पाता वह फिर सोच में पड़ जाती है।

८९-शब्दार्थ—मञ्जु = सुन्दर । मनोरथ कलस = वामना रूपी घड़े। रितवहिं = रीता कर देते हैं।

अर्थ—राजा, रानी और नगरनिवासी (सब) रामजी के सुन्दर शरीर को देखते हैं, तथा वे सब (अपने मनों को) अच्छे मनोरथों से भरते और खाली करते हैं। अर्थात् कभी आशा बँधती है और फिर निराशा हो जाती है।

९०-शब्दार्थ—विषाद = रञ्ज, दुःख। कुल-गुरु = शतानन्द। रूपराशि = रूप का कोश, अत्यन्त सुन्दर।

अर्थ—(सब लोग अपने मनों) को कभी सद्भावनाओं से भर लेते हैं और राम की आयु तथा धनुष की कठोरता का ध्यान करते हैं तो उन मनोरथों को मन में से निकाल देते हैं। सभी नर-नारियों के हृदय हर्ष और विषाद के वश में हो रहे हैं, और वे सभी शिवजी को सकुचाते हैं। (शिवजी को सकुचाना इस भाँति कि नर-नारि शिवजी से प्रार्थना करते हैं कि आप अपने धनुष को निर्बल बना उसे तोड़ने में राम के सहायक बनिए। इस पर शिवजी अपने हृदय में यह विचार करके कि रामचन्द्रजी तो सर्वशक्ति सम्पन्न हैं, मैं भला उनकी क्या सहायता करूँगा—सकुचा जाते हैं। इसी समय जनक की आज्ञा पाकर शतानन्दजी जानकीजी को रंग भूमि में ले आए और लोगों ने सीताजी के रूप कोष को देख कर नेत्रवान होने का लाभ उठाया।

६१-शब्दार्थ—मोहबस (श)=अज्ञान के कारण। मोहहिं=मोह लेते हैं।

अर्थ—(जानकीजी के) सुन्दर शरीर पर मांगलिक वस्त्र और आभूषण शोभायमान थे, (वस्त्राभूषणों से सुसज्जित जानकी को) देख कर अविचारशील राजा मोह के वश में होकर मुग्ध हो जाते थे।

६२-शब्दार्थ—सुभाय=स्वभाव से, साधारणत। सर= बाण। स्रेनि=श्रेणी, कतार।

अर्थ—अनुपम सुन्दरी श्रीजानकीजी स्वभाव से ही जिस ओर देखती हैं, उधर ऐसा प्रतीत होता है, मानो कामदेव नीले कमलों के बाणों की वर्षा कर रहा है।

६३-शब्दार्थ—छिनु=क्षण, पल। बिसेषहिं=विशेषता दते हैं, अच्छाइ का वर्णन करते हैं।

अर्थ—(स्वयंवर में उपस्थित नगर के स्त्री पुरुष) क्षण में सीताजी को और क्षण में रामजी को देखते तथा (उनके) रूप, शील, अवस्था और वंश की अधिकाधिक प्रशंसा करते हैं।

६४-शब्दार्थ—तकि तकि=ताक ताक कर। मयन=मदन, कामदेव। सायक=बाण।

अर्थ—श्रीराम को जब सीता दिखाइ पड़ीं और सीताजी को राम दृष्टि पड़े तो, दोनों (राम और सीता) के शरीरों को लक्ष्य कर कर के कामदेव अपने बाणों को सम्हालने लगा।

६५-शब्दार्थ—प्रमोद=विशेष आनन्द। गोपहिं=छिपातेहैं। गुनग्राम=गुणों के समूह। थूनि=थूनी, खम्भा। रोपहिं= लगाते हैं, गाड़ते हैं।

अर्थ—(परस्पर अवलोकन से उत्पन्न हुए) प्रेम के आनन्द को आपस में (एक दूसरे पर) प्रकट होने से छिपाते

हैं, मानो (पारस्परिक प्रेम से परिपूर्ण, चञ्चल) हृदयों को रोकने के लिए गुणों (शील, लज्जा आदि) के समूह रूपी अचल खम्भे लगाते हैं।

९६-शब्दार्थ—जोबन=यौवन, जवानी। पुरइ=पुर में। बय समौ=आयु का समय।

अर्थ—राम और सीताजी की अवस्था तथा (वर्तमान स्वयंवर का) समय सहज ही में सुहावने हैं। मानो तारुण्य रूपी राजा सुन्दरता रूपी नगरी में आना चाहता है।

९७-शब्दार्थ—मन मानै=मन मानता अर्थात् प्रसन्न होता है। मूक=गूंगा।

अर्थ—(राम-सीता की) वह (उस समय की) शोभा कही नहीं जासकती, (उसे तो) देख कर मन ही मानता (अनुभव करता) है। क्या गूंगा आदमी अमृतपान करके उसके स्वाद का वर्णन कर सकता है? अर्थात् नहीं कर सकता।

९८-शब्दार्थ—बन्दिन्ह=बन्दी जनों ने, भाटों या चारणों ने। आमरषि=(आमर्ष) क्रोध करके। सगुन नहिं पायउ= अच्छे सगुन नहीं पाये अथवा सगुन अर्थात् रस्सी सहित न कर पाये, प्रत्यंचा न चढ़ा सके।

अर्थ—तब (इसके पश्चात्) भाटों ने राजा जनक की प्रतिज्ञा कह सुनाई (जिसे सुनते ही अहंकारी) राजा क्रोध करके (धनुष उठाने के लिए) उठे (पर उन्होंने उठते समय कोई शुभ) शकुन न पा अर्थात् होते न देखा (इसलिए जहाँ के तहाँ बैठ गए) अथवा प्रत्यंचा न चढ़ा सके।

९९-शब्दार्थ—टकटोरि=टटोल कर, ठोक कर। नारियर= नारियल। दाप=घमण्ड। जिमि=तरह। नृप नहुष=प्रतिष्ठान पुर का राजा।

अर्थ—(जो राजा धनुष उठाने की इच्छा से उठे उनमें से कुछ तो) उठते समय शुभ शकुन न होने का बहाना करके वहां के वहीं बैठ रहे, कोई धनुष को देखने गए और जिस तरह बन्दर नारियल को तोड़ने के लिए ठोक पीट करता है और न टूटने पर छोड़ बैठता है, उसी भाँति धनुष को टकटका-कर छोड़ दिया और सिर झुकाकर बैठ गए। कोई राजा (बड़ा) अहंकार करते थे परन्तु धनुष सत्पुरुषों की प्रतिज्ञा की भाँति लेशमात्र भी नहीं टलता और (सप्त ऋषियों के श्राप से सर्प योनि प्राप्त हुए) राजा नहुष की भाँति सब राजाओं के बल बुद्धि की जाँच करता और बल पूर्वक हरण कर लेता है।

१००–शब्दार्थ—हारेउ = हार गया, दुखित हुआ। तुहिन = पाला। बनज = कमल।

अर्थ—(राजाओं को इस भाँति धनुष उठाने में असमर्थ) देख कर पुरजनों और परिजनों सहित राजा जनक हृदय में (अति) हताश हुए, और राजा लोग तो पाले के मारे हुए कमल वन की भाँति हतप्रभ होगए।

१०१–शब्दार्थ—अनुसासन = आज्ञा। इसानु = महादेव।

अर्थ—(तब) विश्वामित्रजी ने राजा जनक से कहा कि (अब) सूर्यवंश के सूर्य (श्रीराम) को आज्ञा दीजिये कि (वे भी) महादेव के धनुष को देखें।

१०२–शब्दार्थ—मेरु = सुमेरु पर्वत। महि = पृथ्वी। आचरत = करते हुए।

अर्थ—(यह सुनकर राजा जनक ने कहा) हे मुनीश्वर आपके वचन से (आज्ञा से) पृथिवी और सुमेरु पर्वत भी चलायमान हो सकते हैं। परन्तु फिर भी उचित कार्य करने पर ही पंच लोग (उसे) अच्छा कहते हैं।

अर्थात् जनक विश्वामित्रजी से कहते हैं कि आपकी आज्ञा से असम्भव भी सम्भव हो सकता है, और इस दृष्टि से रामचन्द्रजी को धनुष दिखाने की अनुमति देना अनुचित नहीं है परन्तु उनकी सुकुमारता को देखकर कठोर धनुष उठाने की आज्ञा देने के कार्य को पञ्च लोग अच्छा न कहेंगे।

१०३-शब्दार्थ—बानु=बाणासुर। बानु जिमि गयउ=बाण के समान गया अर्थात् जिस तरह तीर तेज़ी से जाता है, उस प्रकार गया। गवहिं=जाता है, गमन करता है। दसकन्धर=दस कन्धों वाला, रावण। अवनीतल=भूमण्डल। धुरन्धर=धुरी धारण करने वाला, परम शक्तिशाली।

अर्थ—(भला जिस धनुष को देखकर) बाणासुर तीर की भांति (सीधा अपने घर को भाग गया) तथा रावण भी (चुपके ही) खिसक गया। (मेरी अल्प मति के अनुसार) इन (बाणासुर व रावण) दोनों योधाओं के बराबर धुरन्धर वीर पृथिवी भर में कौन है?

१०४-शब्दार्थ—धनुचालक=धनुष चलाने वाला।

अर्थ—(हाँ) पार्वती के मन के समान निश्चल इस धनुष को चलाने वाले (एक) महादेवजी हैं, (पर) वे एक नारि व्रत पालक (केवल एक पार्वतीजी में ही भार्या भाव रखने वाले) हैं (इसलिए उन्हें धनुष उठाने या तोडने की आवश्यकता नहीं)

१०५-शब्दार्थ—किसोरहि=लडके को। सिरिस=सिरस प्रसिद्ध है, इस वृक्ष का फूल बडा कोमल होता है। कन (कण)=किनका, टुकडा।

अर्थ—सो ऐसे धनुष को राजकुमार (श्रीराम) को देखने के लिए (आप) कहते हैं। क्या सिरस के फूल की पखडी कठोर वज्र के टुकडे को छेद सकती है?

१०६-शब्दार्थ—सोम = चन्द्रमा । मनोजनि = कामदेव । मलिन = मैली ।

अर्थ—(जिन राम के) रोम-रोम की शोभा चन्द्रमा तथा कामदेव को भी लज्जित कर रही है, (उनकी) मूर्ति को तो, हे मुनीश्वर, देखते ही रहिये (दर्शन करते रहिये) उसे (धनुष से स्पर्श करा के) मैली मत कीजिए ।

१०७-शब्दार्थ—हइ = है । सकृत = एक बार । बिछोहइ = अलग कर देता है, छुड़ाता है ।

अर्थ—(जनक की उपर्युक्त बातें सुनकर) विश्वामित्र जी हँस कर बोले 'हे जनक यह वह मूर्ति है जिसका एक बारही स्मरण करने से सम्पूर्ण मोह और पाप छूट जाते हैं ।'

१०८-शब्दार्थ—कुंभज = घड़े से उत्पन्न अगस्त्य मुनि । लेखहु = जानो । सकुचि = सकुचाकर ।

अर्थ—(विश्वामित्र ने जनक से कहा) इस मूर्ति (श्रीराम को) को पापों के दूर करने वाली जान कर (इसका) खेल देखिये । धनुषरूपी समुद्र में जो राजाओं का बल रूपी जल बढ़ गया है (उसे सुखाने के लिए) रामचन्द्रजी को अगस्त्य मुनि समझिये । (इस प्रकार विश्वामित्रजी के वचन) सुन जनक सकुचाकर सोच करने लगे (उधर) श्रीरामजी गुरु चरणों की वन्दना करके (धनुष उठाने के लिए) चले । (उस समय राम के) मन में न तो कुछ प्रसन्नता थी, न दुःख था । (राम जी के चलते समय) शुभ मंगलदायक शकुन हुए ।

१०९-शब्दार्थ—दुंदुभि = नगाड़ा । पुर परिजन = नगर निवासी लोग तथा कुटुम्बीजन ।

अर्थ—(उस समय) देवता फूल बरसाने लगे तथा नगाड़े बजने लगे । जनक तथा उनके पुर और परिवार के लोग प्रसन्न हुए (पर) अहंकारी राजा लोग लज्जित हुए ।

११०-शब्दार्थ—महि = पृथ्वी । महिधरन = शेषजी, कच्छप, दिग्गज। चपरि = शीघ्र। चढ़ावन = चढ़ाना, खींचना।

अर्थ—लक्ष्मणजी ने पृथ्वी तथा पृथ्वी को धारण करने वाले शेष, कच्छप, दिग्गज आदि से अपना बल बढ़ाने (अर्थात् पूर्ण शक्ति से स्थिर रहने) के लिए कहा, (क्योंकि) अब राम शीघ्र ही धनुष को तानना चाहते थे।

१११-शब्दार्थ—सुभाय = साधारणरीति से। चाप = धनुष।

अर्थ—राम जब सहज ही धनुष के समीप गए तब विदेह राजा को परिवार सहित चिन्ता हो रही थी।

११२-शब्दार्थ—सुमिरि = याद कर के।

अर्थ—(उस समय) सकोच के कारण सीताजी कुछ कह तो सकती न थीं (केवल) हृदय में सोच करती थीं और पार्वती, गणेश, महेश आदि को स्मरण करके सकुचाती थीं।

११३-शब्दार्थ—फरकि = फड़क कर। वामभुज = बाईं भुजा। देहिं जनु हाथहिं = मानो हाथ देते हैं, सहारा लगाते हैं।

अर्थ—जानकीजी श्रीराम को देखकर विरह-सर में डूबने लगती हैं,(पर उनके) बाए नेत्र, भुजा आदि अंग फड़क कर मानो सहारा देते हैं।

११४-शब्दार्थ—घोर = कठिन। दइउ = दैव। दाहिन = अनुकूल।

अर्थ—सीताजी शुभ शकुनों को देख कर कुछ धैर्य धारण करती हैं पर वह धैर्य ठहरता नहीं है, क्योंकि वर (श्रीरामजी) छोटी अवस्था के हैं और धनुष कठोर है। (जान पड़ता है) दैव सीधे नहीं हैं।

११५-शब्दार्थ—अन्तर्जामी = अन्तर्यामी, भीतरी भेद जानने वाला। मरम = मर्म, भेद। कान लगि तानेउ = कान तक तान लिया।

अर्थ—अन्तर्यामी श्रीराम ने (सीताजी के मन का) सब गुप्त हाल जान लिया और धनुष को खेल समझ उठा कर कान तक तान दिया।

११६-शब्दार्थ—परखि = परीक्षा करके। भजेउ = तोड़ा। मृगराज = सिंह। गज = हाथी। गजेउ = तोड़ना, मारना।

अर्थ—श्रीराम ने (जानकी जी के) प्रेम की परीक्षा करके धनुष को तोड़ दिया। मानो सिंह के बच्चे ने बड़े हाथी को मार दिया हो।

११७-शब्दार्थ—भूधर = पहाड़। लरखरे = लड़खड़ाने लगे, काँप गये। मुक्ता = मोती। विपुल = बहुत। पटु = सुन्दर, चतुर। पेटक = पिटारे। हितू = हितैषी। रुदित = रोता हुआ। जाग = यज्ञ। भोर = प्रात काल। कैरव = कुमुद। सघन = घना। तडाग = तालाब।

अर्थ—जब भगवान रामचन्द्रजी ने धनुष तोड़ा तो उसके टूटने से भारी शब्द हुआ जिसकी घोर ध्वनि सुन कर पृथिवी और पहाड़ भी हिलने लगे और रघुनाथजी के असीम यश रूपी मोतियों से चौदहो भुवन रूपी सुन्दर सन्दूक भर गए। (धनुष को टूटा देख कर जनक के) शुभचिन्तक लोग प्रसन्न हुए और अशुभचिन्तकों के मुख मलीन होगये। कवि (तुलसीदासजी) धनुषयज्ञ की शोभा वर्णन करते हैं कि (वहाँ की अवस्था ऐसी थी जैसे प्रात. सूर्योदय होने पर) चकई और चकोर की अथवा कमल और कुमुदिनी से भरे तालाब की होती है, अर्थात् जिस भाँति सूर्य उदय होने पर चकई और कमल प्रसन्न होते और चकोर तथा कुमुदिनी उदास होजाते हैं।

११८-शब्दार्थ—गहगहे = जोर से बजने लगे। ललित = सुन्दर। लहालहे = लहलहे होगये, हरे-भरे होगये।

अर्थ—(अपने) मनोरथ रूपी कल्पवृक्ष को भली भाँति लहलहाते देखकर (सफल होते देख कर) आकाश और जनकपुर में मंगलगान होने लगे तथा जोर से नगाड़े बजने लगे।

११६-शब्दार्थ—उपरोहित = पुरोहित, कर्मकाण्डी। मन भावत = जैसे जी चाहे।

अर्थ—इसके अनन्तर पुरोहित (शतानन्दजी) ने कहा और सब सखियाँ गाती हुई जानकीजी को (रंगभूमि में) लिवा चलीं। (सब लोगों का) मन चाहता हो गया।

१२०-शब्दार्थ—जयमाल = स्वयम्बर के समय जिस माला को वधू वर के गले में डालती थी। यह माला दूब और महुआ पुष्पों की बनती थी।

अर्थ—जानकीजी के कमल जैसे हाथों में जयमाला जिस भाँति सुशोभित होरही थी, उस अनुपम शोभा का वर्णन कर सके ऐसा कौनसा कवि है? अर्थात् कोइ भी नहीं है।

१२१-शब्दार्थ—प्रियतन = प्यारे की ओर। हेरइ = देखती है। फेरइ = घुमाता है। रुख = तरफ।

अर्थ—सीताजी प्रेम और सकोच के वश होकर पति (श्रीरामजी) के शरीर को देखती हैं, मानो वायु वेग सुरबल्ली को कल्पवृक्ष की ओर झुकाता है।

१२२-शब्दार्थ—लसत = शोभित होती है। बनज=कमल। कामफन्द = कामदेव का जाल। फँदावत = फँसाता है, फन्दा डालता है।

अर्थ—श्रीरघुनाथजी के कण्ठ में जयमाला पहनाते हुए (जानकी के) कर-कमल कैसे सुशोभित होते हैं मानो कमल-पुष्प चन्द्रमा के ऊपर काम का फन्दा डालते हों।

१२३-शब्दार्थ—निरूपम = जिसकी किसी से उपमा न दी जा सके। छिनु छिनु = घड़ी घड़ी।

अर्थ—राम और सीताजी की शोभा अनुपम है, तथा वह (स्वयंवर का) दिन भी अनुपम है। उस समय का सुख-समाज देखकर रानियों को क्षण क्षण आनन्द हो रहा है।

१२४-शब्दार्थ—'मनहुँ बिधु उदय मुदित कैरव कली' जिस प्रकार चन्द्रमा के उदय होने पर कुमुद कलिका खिल जाती है।

अर्थ—रघुनाथजी को जयमाला पहना चुकने पर सखियाँ सीताजी को लौटा कर ले चलीं। (उस समय) वे ऐसी प्रसन्न थीं जैसे चन्द्रोदय होने पर कुमुदिनी खिल उठती है।

१२५-शब्दार्थ—बिबुध = देवता। गय = गये।

अर्थ—(उस समय) देवता लोग प्रसन्न होकर जय जयकार करते हुए फूल बरसाने लगे, (तथा) चौदहों भुवन सुख और स्नेह से भर गए और श्रीरामजी विश्वामित्रजी के पास लौट गए।

१२६-शब्दार्थ—तृषित = प्यासा। करि = हाथी। करिनी = हथिनी। निकर = झुण्ड।

अर्थ—श्रीरामजी गुरु के समीप चले गए, राजा-रानी तथा अन्य नगर के नर-नारी आनन्द में इस तरह मग्न हो गए जैसे प्यासे हाथी हथिनियों के समुदाय शीतल अमृत के तालाब में घुस पड़े हों। जनक ने विश्वामित्रजी की पूजा एवं प्रशंसा करके अत्यन्त सुख पाया तथा उनकी आज्ञा पाकर पुरजन परिजनों को इकट्ठा कर लग्न और टीका (लेकर) कुलगुरु (शतानन्द जी) को अयोध्यापुरी भेजा।

१२७-शब्दार्थ—माडव = मडवा, मण्डप। सुवासिन = सौभाग्यवती स्त्रिया। छावन = छाने के लिए। वधावन = वधाई के वाजे।

अर्थ—राजा जनक ने चतुर मनुष्यों को बुला कर विवाह मण्डप बनाने की आज्ञा दी। सौभाग्यवती स्त्रियाँ मगल गीत गाने लगीं और वधाए वजने लगे।

१२८-शब्दार्थ—हित = लिए। प्रमोद = प्रसन्नता।

अर्थ—राजा जनक को परिवार के तथा नगर के नर-नारियों सहित बड़ी ही प्रसन्नता थी। (वे) सीताजी और रामचन्द्रजी की हित कामना से पार्वती और गणेशजी की पूजा करते थे।

१२९-शब्दार्थ—हरिद = हरिद्रा, हल्दी। वेदन = चन्दन। 'हाथ लगवाने' = थापे लगवाने या 'हरद हाथ' की विवाह से पूर्व एक रस्म होती है। कलसथापि = कलस स्थापित करके। विवाह के समय पवित्र जल से भरे हुए जो घडे रक्खे जाते हैं, वही कलश कहलाते हैं। तेल चढावहि = तेल चढ़ना की प्रथा प्रसिद्ध है।

अर्थ—(रनवास में स्त्रियाँ) पहले हरिद्रावन्दन (एक वैवाहिक रीति) करके मगल गाती थीं, और कुलाचार करके मगल-कलश स्थापित करतीं तथा (जानकीजी पर) तेल चढ़ाती थीं। विवाह से पूर्व वर-कन्या के शरीरों से तेल मर्दन करके वेसन आदि से उवटन करने की प्रथा है।

१३०-शब्दार्थ—मुनि = शतानन्द। सुसरित = अच्छी नदी, सरयू से अभिप्राय है। नाम = रामनाम।

अर्थ—उधर मुनि (शतानन्दजी), अयोध्या गए और अयोध्यापुरी के दर्शन करके अच्छी नदी (सरयू) में न्हाए (जिससे उन्होंने) सैकड़ों करोड़ ईश्वर नाम स्मरण का फल पाया।

१३१-शब्दार्थ—हरषानेउ = प्रसन्न हुआ।

अर्थ—(जनकपुरी से श्री शतानन्दजी पधारे हैं) ऐसा सुनकर राजा दशरथ ने आगे (मार्ग में) आकर उनका पूजन और सम्मान किया और शतानन्दजी ने कुशल समाचार सुना कर लग्नपत्रिका दी। राजा दशरथ बहुत प्रसन्न हुए।

१३२-शब्दार्थ—वितान = मण्डप, चँदोवा।

अर्थ—(राम के विवाह का शुभ समाचार) सुनकर नगर में बड़ा हर्ष हुआ और लोग आनन्द के बधाये बजाने और मंगल-कलश सजाने तथा मंडप बनाने लगे।

१३३-शब्दार्थ—छाँडि = छोड़ कर। साज = सामग्री। साजहिं = सजाते हैं। बनाइ = बनाकर, सजाकर। पूजि = पूजकर।

अर्थ—राजा दशरथ अन्य सब कामों को छोड़, विवाह के सब साज सजा, बारात इकट्ठी कर, श्रीगणेशजी का पूजन कर, जनकपुर को चल दिए।

१३४-शब्दार्थ—सगुन सुभ = शुभ शकुन, अच्छे शकुन। नैहर = पीहर, पिता का घर। जनकौर = जनकपुर। नियराइन्ह = निकट पहुँचे।

अर्थ—बारात में ढोल और नगाड़े बजते जाते तथा मार्ग में शुभ शकुन मिलते जाते थे। इस भाँति बारात सीताजी के पीहर जनकनगर के समीप पहुँच गई।

१३५-शब्दार्थ—अगवानी = आगौनी, बारात का आगे बढ़कर स्वागत करना। नूतन = नया।

अर्थ—जनकपुर के समीप पहुँच कर बारात प्रसन्न हुई। (उधर राजा जनक ससमाज सहित) अगवानी करने के लिए गए। (वर और कन्या दोनों पक्ष के लोग) आपस में (एक

दूसरे को) देखते और मिलते तथा आदर करते हुए प्रेम में मग्न हो गए। (उस समय) जनकपुर में जो आनन्द, तमाशा और शोर गुल था वह भला कैसे वर्णन किया जा सकता है। (राजा जनक ने बारात के लिए) वहाँ जनवासा दिया (ठहराया) जहाँ नित्य नए (समयानुकूल) सब भाँति के सुभीते थे।

१३६-शब्दार्थ—कौसिक = विश्वामित्र। निरखि = देखकर।

अर्थ—(उधर से) विश्वामित्रजी भी राम लक्ष्मण को लेकर जनवासे में पहुँच गए और बारात को देखकर प्रसन्न हुए एवं उनका हृदय प्रेम से गदुगद् होगया।

१३७-शब्दार्थ—हृदय लाइ = हृदय से लगाकर।

अर्थ—(जिस समय राम-लक्ष्मण बारात में पहुँचे उस समय) राजा दशरथ को बड़ी ही प्रसन्नता हुई और उन्होंने (राम लक्ष्मण को) गोद में लेकर छाती से लगाया। (उस समय के) अनुपम आनन्द को सैकड़ों शेष भी वर्णन नहीं कर सकते।

१३८-शब्दार्थ—राय = राजा। हेतु = लिए।

अर्थ—राजा दशरथ ने श्री विश्वामित्रजी का पूजन करके ब्राह्मणों को दान दिए और श्रीराम की मंगल कामना से सब तरह के मंगल मनाए।

१३६-शब्दार्थ—भूषित = पहने हुए, सुशोभित। भूषन-भूषन = जेवरों के भी जेवर। विश्व विलोचन = संसार की आँखें। वनज विकासक पूषन = कमलों को खिलाने वाले सूर्य।

अर्थ—वैवाहिक अलंकारों से अलंकृत, आभूषणों को भूषित करने वाले, संसार के नेत्ररूपी कमलों को खिलाने वाले सूर्य (श्रीरामचन्द्रजी)।

१४०-शब्दार्थ—अनुकूलेउ=प्रसन्न होकर। आराम=बाग।

अर्थ—बीच बारात में बैठे हुए बहुत ही भले लगते थे, मानो कामदेव के बगीचे में कल्पवृक्ष फूल रहा हो।

१४१-शब्दार्थ—पठई = भेजी। सिहाहिं = प्रसन्न होते हैं।

अर्थ—(बारात के ठहर चुकने पर) राजा जनक ने भाँति भाँति की बहुत सी भेंट भेजीं, जिन्हें देख कर देवता खुश होते थे और बरातियों को बड़ा आनन्द होता था।

१४२-शब्दार्थ—विहित = अनुसार, कहा हुआ। दुहुँ कुल-गुरु = दोनों कुलों के गुरु, अर्थात् वसिष्ठ और शतानन्द। पठई बोलि = बुला भेजी।

अर्थ—(फिर) दोनों ओर के कुल गुरुओं (विश्वामित्रजी और शतानन्दजी) ने वैदिक विधियाँ तथा कुल रीतियाँ कीं, और जनक ने हृदय में प्रसन्न होकर बारात बुला भेजी।

१४३-शब्दार्थ—पगुधारिय=पैर धरिये, पधारिये, चलिए। मुनि = शतानन्द।

अर्थ—मुनि (शतानन्दजी) ने राजा दशरथ से आकर कहा कि, (महाराज) पधारिये, यह सुन कर (दशरथजी) गुरु (वशिष्ठजी) पार्वतीजी और गणेशजी का स्मरण करके चले।

१४४-शब्दार्थ—पाँवडे = पायन्दाज, पैरों के नीचे बिछाने का कपड़ा। कनावड़े = अहसानमन्द।

अर्थ—(जिस समय दशरथ) गुरु (वशिष्ठजी) स्मरण करके चले (उस समय) देवता फूल बरसाने लगे। (राजा दशरथ के चलने के लिए मार्ग में) बहुत प्रकार के पाँवड़े (बिछौने) पड़े थे (बिछाए गए थे)। राजा जनक ने सब प्रकार से दशरथजी का सम्मान करके उन्हें प्रेम से

कृतार्थ बना दिया। सब गुणों में एक से समधियों (वर तथा कन्या के पिता–दशरथ और जनक) ने (परस्पर) मिलने में बड़ा आनंद पाया तथा सब देवों, मुनियों और मनुष्यों ने धन्यवाद दिया तथा जय मनाई।

१४५–शब्दार्थ—अवलोकहिं = देखते हैं।

अर्थ—तीनों लोकों में (जनक और दशरथ) दोनों की उपमा नहीं दिखाई पड़ती, जनक और दशरथ दोनों के समान तो केवल जनक और दशरथ ही दोनों हैं।

१४६–शब्दार्थ—रनिवास = महल। रहस = हर्ष। पिक बैन = कोयल के से मीठे वचन बोलने वाली। परिहास = हँसी।

अर्थ—अन्त पुर में कोयल के समान (मधुर) बोलने वाली स्त्रियाँ मांगलिक सामग्रियाँ (कलश, आरती आदि) सजा रहीं (तथा परस्पर) हास्य-विनोद पूर्वक गान कर रही थीं।

१४७–शब्दार्थ—उमा = पार्वती। रमा = लक्ष्मी। सुरतिय= देवताओं की स्त्रिया। विरचि – बनाकर।

अर्थ—पार्वती और लक्ष्मी आदिक देव-स्त्रियाँ भी (राम के विवाह की चर्चा) सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई और बनावटी नारियों का सा बढ़िया वेष बनाकर (राम-जानकी के विवाह) मण्डप में पहुँचीं।

१४८–शब्दार्थ—परिछन = वर के द्वार पर आने पर आरती आदि उतारने की प्रथा।। विगसीं=विकसीं अर्थात् खिल गई। कनक=सोना। पंकज=कमल।

अर्थ—(रनिवास में उपस्थित स्त्रिया) मंगल आरती सजाकर वर (रामचन्द्रजी) को परछने चलीं। (उस समय

वे स्त्रियाँ ऐसी जान पड़ती थीं) मानो सूर्योदय होने पर सुवर्ण के कमलों की कलियाँ खिली हों।

१४६-शब्दार्थ—नख-सिख=नोह से लेकर चोटी तक अर्थात् सारे शरीर का। विलोचन=नेत्र।

अर्थ—(स्त्रियाँ) जब नख से लेकर शिखा तक सुन्दर रामजी के रूप को देखती हैं तो अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों में इन्द्र के नेत्रों की भाति नेत्र अनुभव करती हैं। अथवा "अभिलाषा करती हैं कि हमारे समस्त शरीर में इन्द्र की भाँति हजार नेत्रों से देखने में बड़ा आनन्द आता।"

इन पंक्तियों का यह भी अर्थ किया जाता है कि इन्द्र ने जब रामचन्द्रजी की सर्वाङ्गीन सुन्दरता को देखा तो उनके सारे शरीर में नेत्र ही नेत्र होगये। नेत्र होजाने की कथा इस प्रकार कही जाती है कि—इन्द्र ने गौतम-पत्नी अहल्या के साथ व्यभिचार किया था। परिणाम स्वरूप गौतम मुनि के श्राप से इन्द्र के शरीर में सहस्र योनियाँ हो गइ । पीछे इन्द्र के बहुत अनुनय विनय करने पर मुनि ने कहा—अच्छा, जब तुम राम विवाह देखोगे तो ये योनियाँ नेत्रों के रूप में परिणत हो जायँगी।

१५०-शब्दार्थ—गजगामिनि=हाथी की तरह झूम-झूम कर चलने वाली। अघाहिं=तृप्त होती हैं, अघाती हैं। भागभरि=भाग्य से भरी हुई, सौभाग्यशालिनी। भामिनि=स्त्रिया।

अर्थ—मस्त हाथी के समान चलने वाली तथा सौभाग्य से परिपूर्ण नारियाँ बड़े प्रेम से कुल की रीतियाँ करती हैं और (रामचन्द्रजी के) प्रेम से तृप्त नहीं होतीं ।

१५१-शब्दार्थ—नेगचार=नेगचार बधान, दस्तूर, रस्म। नागरि=चतुर स्त्रिया। गहरु=देर।

अर्थ—चतुर स्त्रियाँ नेगचार करने में खूब देर लगाती हैं (जिससे अधिक समय तक श्रीराम के सान्निध्य में रह सकें) वे सुन्दर आँखों वाली (श्रीरामजी को) देख देख कर बड़ा आनन्द अनुभव करती हैं।

१५२-शब्दार्थ—प्रमदागन = स्त्रिया । निछावरि = न्यौछावर, सिर के चारों ओर घुमाकर दिया हुआ दान ।

अर्थ—आरती और न्यौछावर करके वर (श्रीराम) को देखती हैं। प्रेमोन्मत्त स्त्रियां अपने शरीरों को भी नहीं सम्हालतीं अर्थात् उन्हें अपने शरीरों की भी सुधि नहीं है।

१५३-शब्दार्थ—निमिष = पलकों के राजा। "निमिष रिपु जनु रन जए" = मानो निमेष रूपी शत्रु को रण में जीत लिया है अर्थात् निमि का अधिकार पलकों पर से हट गया है। चक्कवै = चक्रवर्ती सम्राट्। सुराज = अच्छा राज्य। रुचिरासन = सुन्दर आसन। अम्बर = वस्त्र।

अर्थ—स्त्रियाँ अपने शरीरों को भी नहीं सम्हालतीं और ऐसी टकटकी लगाकर रघुनाथजी को देखती हैं मानो उन्होंने निमेष रूपी शत्रु को रण में जीत लिया हो अर्थात् पलकों के राजा निमि का अधिकार (पलकों से) उठ गया हो। नेत्ररूपी चक्रवर्ती राजा राम के सौन्दर्य रूपी अच्छे राज्य के सुखों को भोगने वाले बन गए। इसके पश्चात् जनक ने साथियों सहित राजा दशरथ को सुन्दर सिंहासनों पर बिठाया और विश्वामित्र तथा वशिष्ठजी का पूजन करके नूतन वस्त्र देकर राजा की पूजा की।

१५४-शब्दार्थ—अरघ = (अर्घ) स्वागत में जल छोड़ना या मेहमान को पाँव धोने को जल देना। उमँगि = उमड़कर, प्रसन्न होकर। अलि = सखिया।

अर्थ—सखियाँ अर्घ देती हुई रामचन्द्रजी को विवाह-मण्डप में लिवा ले चलीं और आनन्द से उत्साहित होकर मंगल-गान करती हैं।

१५५-शब्दार्थ—बिस्व (श्व)=संसार । बिमोहइ=मोहित करता है। मदन=कामदेव।

अर्थ—मण्डप में बैठे हुए वर (रामजी) संसार को मोहित कर रहे थे और वे ऐसे शोभित थे मानो वसन्त ऋतु में (पुष्पित और पल्लवित) वन में कामदेव बैठे हों।

१५६-शब्दार्थ—जस=जैसा । उपरोहित=पुरोहित, कर्मकाण्डी।

अर्थ—दोनों आचार्य जहाँ जैसी लौकिक अथवा वैदिक रीति होनी चाहिये वहाँ वे प्रसन्नता पूर्वक वैसी ही कराते थे।

१५७-शब्दार्थ—सुभग=सुन्दर। अनुसासन=आज्ञा।

अर्थ—राजा जनक ने वर (राम) का पूजन करके (उनको) अच्छा सिंहासन (बैठने के लिए) दिया, और उधर उन्हीं की (जनकजी की) आज्ञा पाकर (सखियाँ) सीताजी को (मण्डप में) लिवा चलीं।

१५८-शब्दार्थ—जूथ=यूथ, झुण्ड । बिराजइ=अच्छी मालूम देती है। भारती=सरस्वती। भाजइ=भागती है।

अर्थ—युवतियों के समूह में सीताजी स्वभाव से ही विशेष शोभित थीं। उस समय की उपमा देते हुए तो सरस्वती भी लज्जित होकर भाग जातीं।

१५९-शब्दार्थ—निसान=बाजा, नगाड़ा।

अर्थ—दूल्हा और दुलहिन को देखकर स्त्री पुरुष प्रसन्न होते थे और देवता लोग थोड़ी-थोड़ी देर में गाते, नगाड़े, बजाते और फूल बरसाते थे।

१६०-शब्दार्थ—लै लै नाउँ = नाम लेले कर।

अर्थ—सौभाग्यवती स्त्रियाँ नाम लेले कर गीत गाती थीं और राम-जानकी के हित के लिए गणेश और गौरी का पूजन कराती थीं।

१६१-शब्दार्थ—अगिनि थापि = यज्ञ के लिए अग्नि स्थापित करके, अग्न्याधान करके। कुसो (शो) दक = कुश + उदक, कुश एक प्रकार की घास और उदक जल। सकल्प के समय एक हाथ में कुशोदक लेने का नियम है। सकलप = सकल्प, दान या दान करने के निश्चय का वर्णन करने वाले वाक्य विशेष।

अर्थ—राजा जनक ने अग्निस्थापन कर हाथों में कुश तथा जल लेकर कन्यादान की विधि और सकल्प किए।

१६२-शब्दार्थ—समर्पी = समर्पित कर दी, सौंप दी। शोभामयी=सुहावनी। सिन्दूर वन्दन = वधू की माग में सिन्दूर भरने की विधि। लावा सिल पोहनी=विवाह की एक प्रथा विशेष, इसमें वर-वधू अपने को कपडे से ढक कर सिलपर मागलिक द्रव्य पीसते हैं।

अर्थ—(जिस भाति) हिमालय ने पार्वतीजी शकर को और समुद्र ने लक्ष्मीजी विष्णु भगवान को दीं थीं (उसी भाति) राजा जनक ने सकल्प करके शील-सुख और शोभा से युक्त जानकीजी राम को सौंप दी। (पश्चात्) सिन्दूर वन्दन, लावा, होम तथा परिक्रमा आदि अन्य वैवाहिक विधिया होने लगीं। शिलारोहण की विधि करके (तो) सब को मोहित करने वाली साँवली मूर्ति (श्रीरामजी) ने (सब का) मन हर लिया।

१६३-शब्दार्थ—उछाह = उत्साह, आनन्द।

अर्थ—इस प्रकार श्रीराम और जानकी के विवाह का आनन्द तीनों लोकों में मनाया गया मुनीश्वर लोग आशीर्वाद देने और देवता फूल बरसाने लगे।

१६४-शब्दार्थ—कोहवर = वह स्थान जहा विवाह के बाद वर-वधू जाते हैं और स्त्रियां वर से हसी मजाक करती हैं।

अर्थ—विधाता ने मनचाहता कर दिया (इसलिए) स्त्रियाँ बड़ी प्रसन्न हुई और सखियाँ राम और सीताजी को कौतुकागार में लिवा ले गईं।

१६५-शब्दार्थ—वसन = वस्त्र।

अर्थ—(वहाँ) वर वरनी को देख कर (स्त्रियाँ) बार बार बहुमूल्य वस्त्र तथा रत्न निछावर करने लगीं। वह दिन जिस प्रसन्नता एवं आनन्द का था उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

१६६-शब्दार्थ—भौम = मगल, भूमि से उत्पन्न हुआ, सीता का भाई, क्योंकि सीताजी भी पृथ्वी से ही उत्पन्न हुई थीं। दुरीदुरा = छिप छिप करके। नेगु = रीति। सुनात जनायउ = अच्छा नाता या सम्बन्ध प्रकट हो गया।

अर्थ—(सीताजी के विवाह मे) वरनी के भाइ के कामों के समय भूमि-सुत (मगल) वहाँ आया था, (उसने) अपने नेग (कर्त्तव्य कार्य) लुक छिप कर किए तब भी (उसका जानकीजी के साथ) अच्छा नाता (भ्रातृभाव) प्रकट हो ही गया। जानकीजी भूमि सुता और मगल भूमि का पुत्र है, अतएव दोनों में भाइ-बहिन का सम्बन्ध हुआ।

१६७-शब्दार्थ—कुँवरिहि = कुमारी या पुत्री को। लहकौर = कोहवर में वर-वधू को दही-चीनी खिलाने की प्रथा। समो = समय।

अर्थ--समझदार स्त्रियां दूलह और दुलहिन को लोक व्यवहारों की शिक्षा देती थीं, और लहकौर के समय स्त्रियाँ गाली देकर सुख मानती थीं।

१६८-शब्दार्थ—कौतुक=हँसी, खेल-तमाशा। सयानिन्ह=चतुर, सखिया। दुहूँ रानिन्ह=दोनों रानियों को अर्थात् जनक और दशरथ दोनों की रानियों को।

अर्थ—चतुर स्त्रियों ने राम और सीता को जूआ (यह भी एक लोकाचार है) खिलाते समय हास्य किया। (अर्थात् वे) जूआ खेलने में जीतने या हारने के बहाने दोनों रानियों (राम की माता और जानकी की माता) को गालियाँ देती थीं।

१६९-शब्दार्थ--आरति=आरती। भारति=सरस्वती।

अर्थ--सीताजी की माता (उस समय) मन में प्रसन्न होती हुई (वर-वरनी की) आरती करती थीं। (उस समय के) आनन्द का वर्णन कौन कर सकता है, (क्योंकि उस आनन्द को अनुभव करके) सरस्वती (वाणी की अधिष्ठातृ देवता) भी मग्न हो गई।

१७०-शब्दार्थ—जुवतिजूथ = युवतियों (नौजवान) स्त्रियों का झुण्ड। रहस बस=विनोद या कौतुक से, आनन्द से।

अर्थ—इस भाँति अंतपुर में युवतियों का समूह सब प्रकार के सुखों के खजाने राम और सीताजी को देख देख कर आनन्द में मग्न हो गया।

१७१-शब्दार्थ—निधान=खजाना। लोयन लाह=आँखों (लोचन) का सुख। नागरी=सभ्य या चतुर स्त्रिया। सुरधेनु=कामधेनु। सुरमनि=चिन्तामणि।

अर्थ—बुद्धिमती नारियाँ, आनन्द के समुद्र श्रीरामजी के दर्शन कर कर नेत्रों के लाभ को लूटती थीं, (और जब उन्होंने यह) सुना कि राजा जनक ने अन्य तीन कुमारियों का भी (जिनमें एक जनक की तथा दो उनके भाई कुशध्वज की थीं) भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मण के साथ विवाह कर दिया तो और भी आनन्द में विभोर हो गईं। मगल में और भी मगल होने से (वहाँ के) मण्डपों की शोभा मन को लुभा रही थी। ऐसा ज्ञात होता था मानों वहाँ साक्षात् कल्पवृक्ष, कामधेनु, चन्द्रमा और सुरमणि सहित विराजमान हो।

१७२-शब्दार्थ—जनक अनुज=राजा जनक का छोटा भाइ कुशध्वज। तनया=लड़की। जेठि=ज्येष्ठ, बड़ी माण्डवी। सय=शत, सौ।

अर्थ—जनक के छोटे भाइ की परम सुन्दरी दो कन्याएं थीं, (उनमें से) बड़ी (माडवी जो) सैकड़ों रतिया के समान रुपवती थी भरत को ब्याह दी।

१७३-शब्दार्थ—सिय लघु भगिनि=सीता की छोटी बहिन ऊर्मिला। उजागर=प्रसिद्ध, रोशन, प्रकाशित। लखन अनुज=लक्ष्मण के छोटे भाइ, शत्रुघ्न। गुन आगरि=चतुर।

अर्थ—(और) अत्यन्त रूपशालिनी सीताजी की छोटी बहिन (ऊर्मिला) लक्ष्मण को तथा सब गुणों की खानि श्रुतकीर्ति (जनक के भाई की कन्या) लक्ष्मणअनुज (शत्रुघ्न) को विवाह दी।

१७४-शब्दार्थ—विधि=ब्रह्मा।

अर्थ—रामजी के विवाह की भाँति ही अन्य तीनों भाइयों के विवाह भी हुए (जिन्हें देखने के द्वारा) मानो ब्रह्मा ने मनुष्य शरीर धारण करने और नेत्र पाने का फल सब को दिया।

१७५-शब्दार्थ—दाइज=दहेज। गनि=गिना। बाजि=घोड़ा। हेम=सोना।

अर्थ—सेवक, सेविका, घोड़े, हाथी, सोना, वस्त्र और रत्न आदि अनेक प्रकार की वस्तुएँ जो (राजा जनक ने) दहेज में दीं उनकी गणना नहीं की जा सकती।

१७६-शब्दार्थ—परमान=हद दरजे तक, जिससे अधिक कोई न दे। पूरन किया=पूर्ण किया। विनय=नम्रता।

अर्थ—राजा जनक ने यथेष्ट दहेज देकर तथा आदर-सत्कार करके प्रेम को पूरा कर दिखाया और बारात सहित समधी (दशरथजी) को विनय करके वश में कर लिया।

१७७-शब्दार्थ—सुतवधू=पुत्र वधू। फल चारि=चार-फल अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

अर्थ—(विवाह संस्कार समाप्त हो जाने पर) राजा दशरथ पुत्रों तथा पुत्र-वधुओं सहित जनवासे गए, (उस समय ऐसा मालूम होता था) मानो राजा दशरथ ने चारों साधनाओं (चारों पुत्र चार फल हैं, और चारों वधुओं से अभिप्राय चारों साधनाओं से है अर्थात् श्रद्धा, अधीनता, भक्ति और कर्त्तव्य-पालन) सहित चारों फलों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) को पा लिया है।

१७८-शब्दार्थ—अवधपति=दशरथ।

अर्थ—(विवाहोपरान्त) बहुत प्रकार से चारों (चर्व्य, चोष्य, लेह्य और पेय) तरह के पदार्थों से ज्योनार होने लगी। राजा दशरथ बरातियों सहित भोजन करने लगे।

१७९-शब्दार्थ—देहिं गारि=गारी गाती हैं। बरनारि=श्रेष्ठ स्त्रियां।

अर्थ—चतुर स्त्रियां (वर और कन्या) पक्षों के मनुष्यों के नाम ले ले कर गालियां गाती हैं, (जिन्हें सुन कर) भोजन

करते हुए और भी आनन्द बढता है। वह रात्रि बडी ही सुहावनी थी।

१८०-शब्दार्थ—मागध=राजाओं के आगे आगे उनकी प्रशंसा करते हुए चलने वाली जाति विशेष। सूत=पौराणिक कथा कहने वाले। जाचक=याचक, मंगता। मन करषै नहीं= हृदय संकुचित नहीं होता, मन में उदारता बनी रहती है।

अर्थ—वह रात्रि बडी ही सुहावनी थी, क्योंकि मनोहर गाने गाए जा रहे थे तथा अच्छे अच्छे बाजे बज रहे थे। राजा दशरथ खान-पान करके तथा बडा आनन्द पाकर जनवासे को चले। नट, भाट, मागध, सूत और मँगते राजा के यश और प्रताप का वर्णन करने लगे और राजा भी बिना संकोच आनन्द पूर्वक ब्राह्मणों को गज और रत्नादि देने लगे।

१८१-शब्दार्थ—पहुनाई=अतिथि, सत्कार, मेहमानदारी। अगनित=अगणित।

अर्थ—राजा जनक ने बडी विनय करके कुछ दिन बरातियों को रोका और अनेक प्रकार से उनका आतिथ्य किया।

१८२-शब्दार्थ—भूपति-भामिनि=राजा की स्त्री। परि न बिरह बस नींद=वियोग होने के कारण नींद न आई। जामिनि=यामिनि, रात।

अर्थ—जिस दिन अन्त पुर की रानियों ने सुना कि कल बरात जायगी तो उस रात उन्हें राम-वियोग की चिन्ता में नींद न पडी और यों ही रात्रि बीत गई।

१८३-शब्दार्थ—खरभर=खलबली, हलचल। ससुरारि= सुसराल।

अर्थ—बारात की बिदा का समाचार सुन कर नगर में खलबली मच गई और नर-नारी ब्रह्माजी से विनती करने लगे

कि (भगवन् ऐसा करना) जिससे श्रीरामजी बार बार ससुराल में आते रहें।

१८४-शब्दार्थ—चलन=प्रस्थान। भवन=घर।

अर्थ—राजा जनक ने विदा की सब तयारियाँ करली तब श्रीरामजी भाइयों समेत राजमहल में गए।

१८५-शब्दार्थ—मूरति साँवरि=साँवली मूर्ति (राम से अभिप्राय है)

अर्थ—(वहाँ) सास (जानकी की माता) चारों भाइयों की आरती करके न्यौछावर करने लगीं और साँवली-सलोनी मूर्ति को देख देख हृदय में हर्षित होने लगीं।

१८६-शब्दार्थ—मागेउ विदा=विदा माँगी। करुना=करुणा, दया। परिहरि=छोड़ कर। पुलकि=प्रेम से गद्गद होकर।

अर्थ—(जब) रामचन्द्रजी ने विदा मागी तब रानी करुणा से परिपूर्ण होगई और सकोच छोडकर पुलकित होती हुई राम के पैरों में गिर पड़ीं।

१८७-शब्दार्थ—निहोरहिं=प्रार्थना करती हैं।

अर्थ—रानियाँ सीताजी समेत सब पुत्रियों को सौंप कर हाथ जोड रहीं हैं और बार-बार रघुनाथजी को देख कर प्रार्थना करती हैं।

१८८-शब्दार्थ—तात=वत्स, प्यारे। छोह=प्रेम। मया=ममता। राखब=रखियेगा। अनुचर=सेवक।

अर्थ—हे प्यारे, प्रेम मत छोड देना, मन में ममता रखना, और राजा को नगर के तथा कुटुम्ब के मनुष्यों सहित अपना सेवक समझना।

१८६-शब्दार्थ--जन=दास। बलि=बलैया लेना। उर=छाती। मृग=जंगल में घूमने वाले चौपाये, हिरन। प्रबोधि=तसल्ली देकर, समझा कर। हय-गय=घोड़े-हाथी।

अर्थ--हे प्यारे, अपना ही सेवक जान कर प्रेम करना, हम बलिहारी जाती हैं, इस भाँति रानियाँ दीन वचन कहती हैं और अत्यन्त प्रेम से बार-बार राजकुमारों को छाती से लगाती हैं। सीताजी के (विदा होकर चलते ही जनकपुर के) मनुष्य, स्त्री, हाथी, घोड़े, पक्षी, तथा अन्य जानवर व्याकुल हो उठे। सासुओं की विनय सुन कर और उन्हें समझा कर रघुनाथजी पिता के पास गए।

१९०-शब्दार्थ--परेउ निसानहिं घाउ=नगाड़ों पर चोट पड़ी। पावहिं=पाते हैं।

अर्थ--(जब राजा दशरथजी विदा हो कर) अयोध्या को चले तो नगाड़ों पर चोट पड़ी अर्थात् नगाड़े बजाये जाने लगे तथा देवता फूल बरसाने लगे और यात्रा आरम्भ करने के लिए शुभ शकुन होने लगे।

१९१-शब्दार्थ--सिखावन=शिक्षा। सचिव=मन्त्री।

अर्थ--राजा जनक सीताजी से मिलकर तथा उन्हें अच्छी शिक्षा देकर, मन्त्री, गुरु तथा भाई-बन्धुओं सहित बारात को पहुँचाने चले।

१९२-शब्दार्थ--विनय=स्तुति। भाजन=पात्र।

अर्थ--(बारात के जनकपुर से कुछ दूर निकल जाने पर) राजा दशरथ ने पुलकित होकर (जनकजी से) कहा--राजन, अब लौट आइये। सर्व गुणसम्पन्न दोनों राजा एक दूसरे से विनय करते हैं।

१९३-शब्दार्थ--उथपन थापन=उखड़ने वालों की जड़ जमाने वाले, अथवा निराश्रितों के आश्रय।

अर्थ—राजा जनक हाथ जोड कर दशरथजी से कहने लगे-महाराज, आपने मुझे अपना लिया है। हे रघुवश मणि, आप सदा (गिरे हुओं को) उठाने वाले हैं और (उखड़े हुओं को) स्थापित करने वाले हैं।

१६४-शब्दार्थ—विलग न मानव = बुरा न मानना। बोल पठायउँ = बुलवा भेजा। प्रसाद = कृपा।

अर्थ—हे महाराज, आपको जो मैंने यहा पधारने का कष्ट दिया है, इसके लिए बुरा न मानना। हे स्वामी, मुझे आपकी प्रसन्नता से उत्पन्न यश और सब सुख मिल गए।

१६५-शब्दार्थ—गहि = पकड कर।

अर्थ—फिर राजा जनक ने वशिष्ठ आदिक मुनियों की वन्दना की तथा विश्वामित्रजी के पैर पकड कर बहुत कुछ विनय की।

१६६-शब्दार्थ—गद्गदकण्ठ=प्रसन्नता से रुँधा हुआ गला।

अर्थ—इसके अनन्तर गद्गद कंठ हो, नेत्रों में जल भर और हृदय में धीरज धर के भाइयों सहित रघुनाथजी की बहुत विनती करके (कहा)—

१६७-शब्दार्थ—सुजानशिरोमणि = चतुर चूड़ामणि। जनि = मत, न, निषेधात्मक।

अर्थ—हे कृपासिन्धु, हे सुख के समुद्र, हे सज्जन शिरोमणि, हे प्यारे, जब तब (हमारी) याद कर लेना, प्रेम मत छोड देना।

१६८-शब्दार्थ—समौ = समय, अवसर। पयान = प्रयाण, प्रस्थान। गहगहे = जोर से।

अर्थ—(उक्त प्रकार राजा जनक द्वारा की गई) विनय को सुन कर रघुनाथजी ने (जनकजी की) बहुत कुछ विनती की।

तदनन्तर राजा जनक सबसे मिल भेंट तथा मन में धीरज धर कर लौट गए। वह समय कुछ कहते नहीं बनता। उस समय चौदहों भुवन करुणा से भर रहे थे। तभी अयोध्या-नरेश दशरथजी ने प्रस्थान किया और जोर से बाजे बजने लगे।

१९९-शब्दार्थ—पथ = मार्ग। भृगुनाथ = भृगु कुल के स्वामी परशुराम। दारुण = कठोर आख देखाइ = क्रुद्ध हो कर।

अर्थ—रास्ते में हाथ में फरसा लिए हुए श्रीपरशुरामजी मिले। वे श्रीरामजी को आखें दिखा दिखा कर डाटने और भारी क्रोध करने लगे।

२००-शब्दार्थ—परितोष = सन्तोष। रोष = क्रोध। रिस = क्रोध। सारंग = धनुष।

अर्थ—रामचन्द्रजी ने परशुरामजी को शान्त कर दिया (जिससे) वह क्रोध तथा रिस को त्याग कर और रामचन्द्रजी को विष्णु का धनुष देकर तथा (राम के दर्शनों द्वारा) अपने नेत्र सफल कर चल दिये।

२०१-शब्दार्थ—लखि सम्मुख विधि = विधाता को अनुकूल देख कर।

अर्थ—रघुनाथजी के बाहुबल को देख कर बारातियों में बड़ा उत्साह था और राजा दशरथ विधाता को सब प्रकार अनुकूल समझ कर बड़े प्रसन्न थे।

२०२-शब्दार्थ—मगलोगनि = रास्ते में मिलने वाले लोगों को।

अर्थ—इस प्रकार चारों पुत्रों का विवाह सस्कार हो जाने पर दशरथजी की कीर्त्ति सारे ससार में फैल गई और वे मार्ग के लोगों को सुख देते हुए अयोध्यापुरी में आगये।

बच्चे के से नेत्र वाली । मत्त = मतवाला । कुञ्जर = हाथी । गामिनी = चलने वाली ।

अर्थ—हरिण के बच्चे के सदृश नेत्र वाली स्त्रियां सुन्दर मांगलिक चूर्णों को लगाकर और बहुत से दही, दूध, चावल, रोली आदि से थाल भर कर आरती सजाती हैं। मस्त हाथी के समान चलने वाली कौशल्या, सुमित्रा आदि रानियाँ सब सामग्री ठीक करके रामचन्द्रजी का 'परिछन' करने चलीं।

२०८-शब्दार्थ—बधुन्ह = बधुओं या बहुओं के।

अर्थ—मातायें बहुओं सहित चारों पुत्रों को देखती थीं तथा बार-बार प्रसन्न होकर आरती उतारती थीं।

२०९-शब्दार्थ—प्रेम पयनिधि = प्रेम सागर ।

अर्थ—मगन और प्रसन्नता से भरी हुई रानियां क्षण-क्षण में न्यौछावर करतीं हैं तथा दूल्हे-दुलहिनों को देखकर प्रेम के समुद्र में डूब रही हैं।

२१०-शब्दार्थ—भुइँ = भूमि । बादर = बादल, आकाश।

अर्थ—रानिया बहुओं को पावडे डालती और अर्घ देती हुई आदरपूर्वक ले चलीं तो आकाश, पाताल, पृथ्वी सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छा गया ।

२११-शब्दार्थ—उघार = परदा, गिलाफ । उघाडि = खोल कर या हटाकर।

अर्थ—स्त्रिया परदा उघार उघार कर बहुओं को देखतीं और नेत्रों का लाभ प्राप्त करके जन्म सफल समझती थीं।

२१२-शब्दार्थ—आनि = लाकर। कनक = सोना ।

अर्थ—रानियों ने पुत्र बधुओं को महलों में ले जाकर बहुत प्रकार से सम्मान करके सब मंगल किए और वस्त्र, सोना, रत्न, गाय आदि दान करके ब्राह्मणों को दिए।

२०३-शब्दार्थ—सुमन = फूल । कोलाहल = धूमधाम, शोरशार ।

अर्थ—(अयोध्या में प्रवेश करते समय) अनेक प्रकार के शुभ शकुन हो रहे थे तथा देवता पुष्प वरसा रहे थे । नगर में बडा भारी हल्ला गुल्ला हुआ एवम् (नगर के सभी) नर नारी प्रसन्न हुए ।

२०४-शब्दार्थ—घाट = किनारे । बाट = रास्ता । पुरद्वार = नगर में घुसने का दरवाजा । वीथी = गली ।

अर्थ—(स्वागतार्थ नगर के लोग) घाटों, रास्तों, नगरद्वारों और बाजारों को सजा कर गलियों में सुगन्धित जल छिडक कर मगल-गान कर रहे थे ।

२०५-शब्दार्थ—चौकैं पूरैं = चौक काढ़ते हैं । चारु = सुन्दर । ध्वज = झण्डा ।

अर्थ—अयोध्या नगरी में लोग चौक पूर रहे थे (उन्हें सुन्दर कलश और ध्वजा से सुसज्जित करते थ) और अनेक भाँति के घनघोर बाजे बज रहे थे ।

२०६-शब्दार्थ—पताका = झण्डा । रोपैं = आरोपित करते हैं । सफल सपल्लव = फलों और पत्तों सहित । मगल तरुवर = आम, अशोक, पीपल आदि मागलिक वृक्ष ।

अर्थ—घर-घर में वन्दनवार चँदोवे और पताके बनाए गये हैं । लोग फलों और पत्तों युक्त मागलिक वृक्ष लगा रहे हैं ।

२०७-शब्दार्थ—मञ्जुल = सुन्दर । विपुल = अधिक । दधि = दही । दुब = एक प्रकार की पवित्र घास, विवाहादि अवसरों पर दुब से पानी छिडका जाता है, यह घास कान में भी उरसी जाती है । अच्छत (अक्षत) = चावल । रोचना = रोली । सारग-सावक लोचनी = (शारग-शावक) हिरन के

बच्चे के से नेत्र वाली । मत्त = मतवाला । कुञ्जर = हाथी । गामिनी = चलने वाली ।

अर्थ—हरिण के बच्चे के सदृश नेत्र वाली स्त्रियां सुन्दर मांगलिक वृक्षों को लगाकर और बहुत से दही, दूध, चावल, रोली आदि से थाल भर कर आरती सजाती हैं। मस्त हाथी के समान चलने वाली कौशल्या, सुमित्रा आदि रानियाँ सब सामग्री ठीक करके रामचन्द्रजी का 'परिछन' करने चलीं।

२०८-शब्दार्थ—बधुन्ह = बधुओं या बहुओं के।

अर्थ—मातायें बहुओं सहित चारों पुत्रों को देखती थीं तथा बार बार प्रसन्न होकर आरती उतारती थीं।

२०९-शब्दार्थ—प्रेम पयनिधि = प्रेम-सागर ।

अर्थ—मंगल और प्रसन्नता से भरी हुई रानियां क्षण-क्षण में न्यौछावर करती हैं तथा दूल्हे-दुलहिनों को देखकर प्रेम के समुद्र में डूब रही हैं।

२१०-शब्दार्थ—भुइँ = भूमि । बादर = बादल, आकाश।

अर्थ—रानियां बहुओं को पावडे डालती और अर्घ देती हुई आदरपूर्वक ले चलीं तो आकाश, पाताल, पृथ्वी सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छा गया ।

२११-शब्दार्थ—उहार = परदा, गिलाफ । उघाडि = खोल कर या हटाकर।

अर्थ—स्त्रियां परदा उघार उघार कर बहुओं को देखतीं और नेत्रों का लाभ प्राप्त करके जन्म सफल समझती थीं।

२१२-शब्दार्थ—आनि = लाकर । कनक = सोना ।

अर्थ—रानियों ने पुत्र वधुओं को महलों में ले जाकर बहुत प्रकार से सम्मान करके सब मंगल किए और वस्त्र, सोना, रत्न, गाय आदि दान करके ब्राह्मणों को दिए।

२१३-शब्दार्थ—निहाल=कृतकृत्य, तृप्त। पितर=पूर्वज, पुरखा लोग। उदय=बढ़ती, उन्नति।

अर्थ—राजा दशरथ ने याचकों को निहाल या तृप्त कर दिया जो जहा-तहा आशीर्वाद देते हैं और रामजी के अभ्युदय के लिए सब देवता और पितरों की पूजा की।

२१४-शब्दार्थ—पहिरावनि=पोशाक, सिले सिलाए कपड़े। पावनि=पवित्र।

अर्थ—रानियों ने सब नेगचार करके सम्बन्धियों, घर की बहिन-बेटियों, गुरुपत्नियों तथा टहलनियों को पहरावनी दी अर्थात् वस्त्र भूषण पहनाए।

२१५-शब्दार्थ—जोरी चारि=चारों राजकुमारों की जोडियाँ। निकसहिं=निकलती हैं।

अर्थ—सब स्त्रियाँ चारों दम्पतियों को देख आशीर्वाद देती निकलती है। (और ऐसी खुश हैं) जैसे चन्द्रोदय होने पर कुमुदिनी प्रसन्न होकर खिल उठती है।

२१६-शब्दार्थ—विकसहिं=खिलती हैं। कुमुद=कुई का फूल। विधु=चन्द्रमा। एहि जुगुति=इस युक्ति से, इस प्रकार। उपवीत=जनेऊ। अनुदिन=रोज-रोज, नित्यप्रति।

अर्थ—(सब स्त्रिया) चन्द्रमा को देख कर कुमुदिनी की भाति प्रफुल्ल हो जाती हैं। (उस समय) अयोध्यापुरी सुख और शोभा से युक्त हो रही थी। तुलसीदासजी कहते हैं कि इस भाति राम विवाह की नूतन कीर्ति को सभी कवि गाते हैं। जनेऊ तथा विवाह उत्सव समय जो स्त्री पुरुष सिय राम मगल अर्थात् जानकी-मगल गायेंगे उनका दिन दिन सब प्रकार से कल्याण होगा।
